ज्ञान शांति मैत्री

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)

Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya

(A Center University Established by Parliament by Act No. 3 of 1997)

एम.बी.ए. पाठ्यक्रम

पाठ्यक्रम कोड : MBA - 001

तृतीय सेमेस्टर

पाठ्यचर्या कोड : एमएस – 424

पाठ्यचर्या का शीर्षक : बिक्री प्रबंधन

दूर शिक्षा निदेशालय

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा - 442001 (महाराष्ट्र)

तृतीय सेमेस्टर - एमएस 424 बिक्री प्रबंधन

मार्ग निर्देशन समिति

प्रो. गिरीश्वर मिश्र
कुलपति, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा

प्रो. आनंद वर्धन शर्मा
समकुलपति, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा

संपादक

प्रो. कृष्ण कुमार सिंह
प्रभारी, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा

मनोज कुमार चौधरी
पाठ्यक्रम संयोजक: एमबीए, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा

संपादक मंडल

डॉ. रवीन्द्र टी. बोरकर
सह प्रोफेसर एवं क्षेत्रीय निदेशक
दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा

डॉ. ए. के. जे. मंसूरी
जी. एस. कॉलेज ऑफ कॉमर्स, वर्धा

डॉ. राम ओ. पंचारिया
बी. डी. कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग, सेवाग्राम

मनोज कुमार चौधरी
सहायक प्रोफेसर, प्रबंधन विद्यापीठ, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा

डॉ. विनय चतुर्वेदी
सहायक प्रोफेसर, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा

प्रकाशक

कुलसचिव, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
पोस्ट: हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा, महाराष्ट्र - 442001

पाठ्यक्रम परिकल्पना, संरचना एवं संयोजन

मनोज कुमार चौधरी
पाठ्यक्रम संयोजक: एमबीए, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा

इकाई लेखन

डॉ. विनय चतुर्वेदी
सहायक प्रोफेसर,
दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा

कार्यालयीन एवं मुद्रण सहयोग

श्री विनोद वैद्य
सहायक कुलसचिव, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा

सुश्री राधा ठाकरे
टंकक, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)

Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya

(A Central University Established by Parliament by Act No. 3 of1997)

विषय कोड: MS 424 **क्रेडिट्स:** 2 क्रेडिट

विषय का नाम: बिक्री प्रबंधन (Sales Management)

पाठ्यक्रम के उद्देश्य:

- बिक्री की एक ठोस समझ प्रदान करना जिसमें इसकी योजना, नियुक्तिकरण, संरचना तथा मूल्यांकन का विवरण हो।
- एक बिक्री प्रबंधक तथ विपणन प्रबंधन के दृष्टिकोण से यह समझना की बिक्री बल (कर्मियों) को कैसे प्रबंधित एवं प्रेरित किया जाय।

मूल्यांकन के मानदंड:

1. सत्रांत परीक्षा : 70 %
2. सत्रीय कार्य : 30 %

पाठ्यक्रम सामग्री:

इकाई – I: बिक्री प्रबंधन का परिचय (Introduction to Sales Management)

- बिक्री प्रबंधन एवं व्यवसाय उपक्रम (Sales Management and the Business Enterprise)
- बिक्री से संबंधित विपणन नीतियों का निर्धारण (Determining Sales-Related Marketing Policies)
- बिक्री प्रबंधन, व्यक्तिगत बिक्री और बेचने का कार्य (Sales Management, Personal Selling and Salesmanship)
- व्यक्तिगत बिक्री की रणनीति तैयार करना (Formulating Personal-Selling Strategy)

इकाई – II: बिक्री प्रयास का आयोजन (Organizing the Sales Effort)

- प्रभावी बिक्री कर्मचारी (The Effective Sales Executive)
- बिक्री संगठन (The Sales Organization)
- बिक्री विभाग के संबंध (Sales Department Relations)
- वितरण नेटवर्क संबंध (Distributive-Network Relations)

इकाई – III: बिक्री बल प्रबंधन (Sales Force Management)

- बिक्री क्षेत्र में कार्मिक प्रबंधन (Personnel Management in the Selling Field)
- बिक्री कर्मियों का भर्ती और चयन (Recruiting and Selecting Sales Personnel)
- बिक्री बल विकास (Sales Force Development)
- बिक्री बल अभिप्रेरण (Sales Force Motivation)
- बिक्री बल का मुआवजा (Compensating the Sales Force)
- बिक्री कर्मियों का नियंत्रण (Controlling Sales Personnel)

इकाई – IV: बिक्री के प्रयास को नियंत्रित करना (Controlling the Sales Effort)

- बिक्री बजट (The Sales Budget)
- बिक्री कोटा (Sales Quotas)

- बिक्री इलाका (Sales Territories)
- बिक्री नियंत्रण एवं लागत विश्लेषण (Sales Control and Cost Analysis)

इकाई – V: अंतरराष्ट्रीय बिक्री प्रबंधन (International Sales Management)

- अंतरराष्ट्रीय बिक्री प्रबंधन (International Sales Management)

सम्बन्धित पुस्तकें:

- Still R. Richard, Cundiff W. Edward, Govono P. A. Norman, 2011, Sales Management: Decision, Strategy and Cases, 5th Edition, Pearson Publication, Delhi.
- Havaldar K. Krishna, Cavale M. Vasant, 2011, Sales and Distribution Management: Text and Cases, 2nd Edition, Tata McGraw Hill Publishing Ltd., New Delhi.
- Cron L. William, Decarlo E. Thomas, 2011, Sales Management: Concepts and Cases, 10th Edition, Wiley India (P.) Ltd., New Delhi.

अनुक्रम

क्र. सं.	इकाईयों के नाम	पृष्ठ संख्या
1.	इकाई – I बिक्री प्रबंधन का परिचय	6-35
2.	इकाई – II बिक्री प्रयास का आयोजन	36-59
3.	इकाई – III बिक्री बल प्रबंधन	60-89
4.	इकाई – IV बिक्री के प्रयास को नियंत्रित करना	90-113
5.	इकाई – V अंतरराष्ट्रीय बिक्री प्रबंधन	114-131

इकाई – 1 बिक्री प्रबंधन का परिचय

इकाई की रूपरेखा

1.1. उद्देश्य
1.2. विक्रय प्रबन्ध का अर्थ
1.3. विक्रय प्रबन्ध की विशेषताएं या लक्षण
1.4. विक्रय प्रबन्ध के कार्य
1.5. विपणन प्रबन्ध एवं विक्रय प्रबन्ध में अन्तर
1.6. बिक्री से संबंधित विपणन नीतियों का निर्धारण
1.7. व्यक्तिगत बिक्री की रणनीति तैयार करना
1.8. सारांश
1.9. अभ्यासार्थ प्रश्न
1.10. संदर्भ ग्रंथ सूची

1.1. उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात –

1. विक्रय प्रबंध का अर्थ, विशेषताओं, उद्देश्य एवं उसके कार्यों को समझ सकेंगे।
2. विक्रय प्रबंध एवं विपणन प्रबंध में अन्तर को समझ सकेंगे।
3. विक्रय प्रबंध के महत्व तथा विक्रय प्रबंधक के कर्त्तव्यों एवं दायित्वों को समझ सकेंगे।
4. वैयक्तिक विक्रय के अर्थ, विशेषताएँ तथा उसके महत्व से अवगत हो सकेंगे।
5. वैयक्तिक विक्रय के अर्थ, महत्व, कार्य तथा वैयक्तिक विक्रय रणनीति से अवगत हो सकेंगे।
6. वैयक्तिक विक्रय की विशेषताएँ, लाभ-हानि तथा प्रक्रिया की जानकारी हो सकेंगी।

1.2. विक्रय प्रबन्ध का अर्थ

विक्रय प्रबन्ध दो शब्दो से मिलकर बना है विक्रय+प्रबन्ध। 'विक्रय' से अर्थ वस्तु को प्रतिफल के बदले में हस्तान्तरित करने से है जबकि 'प्रबन्ध' से अर्थ उस कला और विज्ञान से है जो पूर्व निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए उत्पादन के विभिन्न घटकों में समन्वय स्थापित करता है और विभिन्न व्यक्तियों के व्यक्तिगत एवं सामूहिक प्रयासों के नियोजन, संगठन, निर्देशन, समन्वय एवं नियन्त्रण से सम्बन्धित है।

विक्रय प्रबन्ध की परिभाषा

विक्रय प्रबन्ध के सम्बन्ध में प्रमुख परिभाषाएँ इस प्रकार हैं –

1. **फ्रेड एम. जोन्स के मत में** – "विक्रय प्रबन्ध का अर्थ उत्पादित वस्तु या सेवा को उपभोक्ता तक पहुँचाने से सम्बन्धित सभी कार्यों को कुशलतापूर्वक एवं वैज्ञानिक तरीके से नियोजित संगठित और

कार्यान्वित करने से है जिससे की न्यमूनतम लागत पर अधिकतम बिक्री और लाभ अर्जित किया जा सके।"

1. **अमरीकन विपणन संघ की परिभाषा समीति के अनुसार** - "विक्रय प्रबन्ध से अर्थ एक व्यवसायिक इकाई के वैयक्तिक विक्रय के नियोजन, निर्देशन एवं नियन्त्रण से है जिसमें विक्रय शक्ति की भर्ती, चयन प्रशिक्षण, साज सज्जा, कार्य वितरण, मार्ग निर्धारण, पर्यवेक्षण, पारितोषण एवं अभिप्रेरणा शामिल है।''
2. इससे यह स्पष्ट है कि विक्रय प्रबन्ध सामान्य प्रबन्ध शाखा है जिसका सम्बन्ध विक्रय प्रयासों के नियोजन, निर्देशन एवं नियन्त्रण करने एवं विक्रय शक्ति का विकास एवं प्रबन्ध करने से है जिससे कि बिक्री और लाभ अधिकतम हो सके, परन्तु व्यय न्यूनतम हों।

1.3. विक्रय प्रबन्ध की विशेषताएं या लक्षण –

2. **विक्रय प्रधान** – बिक्री प्रबन्ध में विक्रय अर्थात् बिक्री प्रधान है। इसमें उन सभी क्रियाओं का निर्देशन, नियन्त्रण एवं समन्वय किया जाता है जिसका सम्बन्ध विक्रय से है। ऐसा करने का उद्देश्य बिक्री में वृद्धि करना, व्ययो में कमी करना एवं लाभो को अधिकतम करना है।
3. **विक्रय शक्ति का प्रबन्ध** - विक्रय प्रबन्ध कर्मचारियों की भर्ती, चयन व प्रशिक्षण का कार्य करता है और कर्मचारियों को सुसज्जित करता है। उनके मार्ग निर्धारण व पर्यवेक्षण की व्यवस्था करता है तथा उसका पारितोषण तय करता है। कर्मचारी उचित रूप में कार्य करते रहें इसके लिए उनके कार्यों का समय समय पर मूल्यांकन व अभिप्रेरण करता है।
4. **उद्देश्य** – विक्रय प्रबन्ध उद्देश्यात्मक होता है। यह उद्देश्य है – पर्याप्त मात्रा में बिक्री करना, लाभों में वृद्धि करना व संस्था का नियमित विकास।
5. **निरन्तर प्रक्रिया** – विक्रय प्रबन्ध एक लगातार चलने वाली प्रक्रिया है अर्थात इसमें समय-समय पर आवश्यक परिवर्तन व संशोधन होते रहते है जिससे की वह संस्था की दृष्टि में न्याय संगत बना रहे।
6. **विपणन प्रबन्ध का भाग** – विक्रय प्रबन्ध विपणन प्रबन्ध का एक भाग है। विपणन प्रबन्ध में वस्तु के बनाने के विचार से लेकर उत्पादन व उसके बाद की क्रियायें भी आती है जबकि विक्रय प्रबन्ध में केवल बिक्री से सम्बन्धित क्रियाओं का ही समावेश होता है। इस प्रकार विक्रय प्रबन्ध का क्षेत्र विपणन प्रबन्ध के क्षेत्र से संकुचित है।

विक्रय प्रबन्ध के उद्देश्य

विक्रय प्रबन्ध के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार हैं –

1. **उपभोक्ता सन्तुष्टि** – उपभोक्ता सन्तुष्टि विक्रय प्रबन्ध का सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य है। इसका कारण यह है कि बिना उपभोक्ता को संतुष्ट किये न तो बिक्री की जा सकती है और न लाभ कमाया जा सकता है। इसलिए निर्माता और विक्रेता को केवल वे ही वस्तुयें एवं सेवायें प्रदान करने का प्रयास करना चाहिए जिन्हें उपभोक्ता चाहता है।

2. **बिक्री बजट** – व्यवसाय का पूरा ढाँचा बिक्री पर खड़ा है इसलिए विक्रय प्रबन्ध का उद्देश्य होता है कि व्यवसाय की पुरानी बिक्री व खर्चे आदि को ध्यान में रखकर भावी बिक्री का अनुमान लगावे। इसके लिए बजट बनाये जा सकते हैं जिनमें भावी बिक्री व लागत को ठीक प्रकार से आंका जाना चाहिए जिससे कि बिक्री व लाभ के लक्ष्यों को सही प्रकार से प्राप्त किया जा सके।
3. **समन्वय** – विक्रय प्रबन्ध का उद्देश्य संस्था के सभी प्रयासों में समन्वय करना जिससे कि बिक्रय लक्ष्य प्राप्त कर समुचित लाभ कमाया जा सकें। यदि समन्वय का अभाव रहेगा तो संस्था के व्ययों में वृद्धि होगी और संस्था हानि में चली जायेगी। जैसे – संस्था के उत्पादन विभाग, विक्रय विभाग एवं विज्ञापन व विक्रय संवर्द्ध विभागों में पूर्व समन्वय होना चाहिए। यदि इनमें समन्वय का अभाव रहा तो बिक्री और लाभ प्रभावित होंगे।
4. **विक्रय कर्मचारियों का विकास** – विक्रय प्रबन्ध का उद्देश्य विक्रय कर्मचारियों का विकास करना है जिससे की आवश्यकता के समय उचित मात्रा में विक्रयकर्ता मिल सकें। इसके लिए भर्ती चयन व प्रशिक्षण आदि की व्यवस्था पूर्वानुमान के आधार पर पहले से ही की जाती है।
5. **विक्रय शक्ति का प्रबन्ध** – विक्रय कर्मचारियों का नियोजन, निर्देशन एवं नियंत्रण करना भी विक्रय प्रबन्ध का उद्देश्य माना जाता है।
6. **विक्रय क्रियाओं पर नियन्त्रण** – विक्रय प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य विक्रय क्रियाओं पर नियन्त्रण रखना है। इसके लिए कोटे निर्धारित कर विक्रेता या विक्रयकर्ता को उत्तरदायी बनाया जा सकता है। व्यापारिक क्रियाओं को क्षेत्रों में बाँट कर नियन्त्रण किया जाता है।
7. **वस्तु परिचय** – यदि वस्तु नई है तो मांग उत्पन्न करने के लिए विज्ञापन क्रियाओं का सहारा लेकर वस्तु का परिचय कराना भी विक्रय प्रबन्ध का उद्देश्य है।
8. **क्रेताओं को आकर्षित करना** – विक्रय प्रबन्ध का एक उद्देश्य सम्भावित ग्राहको को वस्तु के प्रति आकर्षित करना है। इसके लिए विक्रय प्रबन्ध उपभोक्ताओं का पता लगाने के लिए बाजार सर्वेक्षण करता है फिर विक्रय संवर्द्धन क्रियायों द्वारा विक्रय करने का प्रयास करता है।
9. **बाजार सर्वेक्षण** – विक्रय प्रबन्ध का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य बाजार सर्वेक्षण या अनुसंधान करना है जिससे कि -

1. नये बाजारो व क्रेताओं का पता लगाया जा सके।
2. विक्रय पूर्वानुमान का सही-सही अनुमान लगाया जा सके।
3. वितरण स्रोतों का पता लगाया जा सकें।

संक्षेप में विक्रय प्रबन्ध का उद्देश्य बिक्री की समुचित व्यवस्था करना है जिससे कि बिक्री अनुमान के अनुसार होती रहे और व्यवसाय लाभ पर चलता रहे।

1.4. विक्रय प्रबन्ध के कार्य

विक्रय प्रबन्ध के अनेक कार्य है जिन्हें निम्नलिखित तीन भागो में बाँटा जा सकता है –

1. सामान्य प्रबन्ध एवं प्रशासन के कार्य
2. विक्रय शक्ति के प्रबन्ध से सम्बन्धित कार्य
3. अन्य कार्य।

1. सामान्य प्रबंध एवं प्रशासन के कार्य

एक संस्था में विक्रय प्रबन्ध एवं प्रशासन सम्बन्धी कार्य निम्नलिखित होते हैं।

1. **विक्रय नीति एवं शर्तो का निर्धारण** – विक्रय प्रबन्ध व्यवसाय के लिए सामान्य विक्रय नीति का निर्धारण करता है जिसे बाजारू परिस्थितियों, प्रतिस्पर्धा, भावी विकास आदि को ध्यान में रखकर बनाया जाता है। इसमें साख, माल की डिलीवरी, मूल्य का भुगतान, माल की वापसी, बट्टा कटौती व रास्ते की जोखिम, आदि के बारे में निर्णय लेने होती है।
2. **विक्रय बजट बनाना** – विक्रय बजट विपणन बजट का एक भाग होता है लेकिन विक्रय प्रबन्ध का यह उत्तरदायित्व होता है कि वह अपने विभाग का बजट तैयार करें। विक्रय बजट में किसी विशेष समय में सम्भावित बिक्री, विक्रयकर्ता व उस सम्भावित बिक्री पर होने वाले व्ययों का अनुमान होता है। यह बजट विक्रय विभाग को अपनी सीमा में ही रहने के लिए बाध्य करता है। इससे व्ययों पर नियन्त्रण बना रहता है।
3. **विक्रय योजना तैयार करना** – विक्रय प्रबन्ध विक्रय पूर्वानुमान के बाद विक्रय योजना तैयार करता है जिसमें वस्तुओं के मूल्य, विक्रय क्षेत्र, विक्रयकर्ताओं की आवश्यकता व अन्य विक्रय साधनों का निर्धारण किया जाता है।
4. **विक्रय पूर्वानुमान लगाना** – यह विक्रय प्रबन्ध का एक महत्वपूर्ण कार्य है। इसमें भावी बिक्री का अनुमान लगाया जाता है कि भविष्य में एक निश्चित अवधि में संस्था कितनी बिक्री कर सकती है। इस पूर्वानुमान को लगाते समय वस्तु की मांग, प्रतिस्पर्धा, बाजारू परिस्थितियों, प्रतियोगी वस्तु के मूल्य व गुणवत्ता, ग्राहक का रुझान, ग्राहक की क्रयशक्ति, जैसी अनेक बातों को ध्यान में रखना पड़ता है वास्तव में इस पूर्वानुमान के आधार पर ही विक्रय योजना व विक्रय बजट बनाएं जाते है।
5. **विक्रय लक्ष्य निर्धारित करना** – विक्रय पूर्वानुमान व विक्रय योजना के साथ-साथ विक्रय विभाग बिक्रय के लक्ष्य निर्धारित करता है। इसमें बाजार का भाग, विक्रय, संवर्द्धन, विक्रय मात्रा आदि के बारे में लक्ष्य निर्धारित किया जाता है।
6. **विक्रय क्रियाओं पर नियन्त्रण करना** – विक्रय विभाग का एक कार्य विक्रय क्रियाओं पर नियन्त्रण रखना है। इन विक्रय क्रियाओं में विक्रयकर्ताओं पर नियन्त्रण, कोटों का निर्धारण, क्षेत्रों का निर्धारण, विक्रय व्ययो पर नियन्त्रण, विक्रय लागत में कमी, ग्राहकों से भेट वार्ता आदि भी शामिल हैं।

7. **अभिप्रेरित करना** – विक्रय प्रबन्ध का काम अपने कर्मचारियों व विक्रेताओं को अभिप्रेरित करना भी है। अभिप्रेरणा से अर्थ उन्हें अधिक कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करना। इसके लिए उन्हें सुविधाएं दी जाती है। ये सुविधा दो प्रकार की होती है – वित्तीय सुविधा जिसमें धन मिलता है जबकि अवित्तीय सुविधा जिसमें कर्मचारियों की प्रशंसा व पदोन्नति आदि सम्मिलित है।

2. **विक्रय शक्ति के प्रबन्ध से सम्बन्धित कार्य** – विक्रय शक्ति विभाग की आत्मा है। अत: विक्रय विभाग को इस सम्बन्ध में निम्नलिखित कार्य करने पड़ते हैं –
    1. **भर्ती करना** – विक्रय विभाग को अपने कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए कुशल एवं योग्य व्यक्तियों को विक्रयकर्ता के रूप में भर्ती करना पड़ता है। इसके लिए विज्ञापन दिया जाता है। अन्य संस्थाओं से उनके विक्रयकर्ताओं को अपनी संस्था में आकर्षित किया जाता है। लेकिन भर्ती करने से पूर्व कार्य विश्लेषण व कार्य विशिष्ट विवरण तैयार किये जाते है और फिर भर्ती के स्रोतों का निर्धारण किया जाता है।
    2. **चयन एवं नियुक्ति करना** – जब भर्ती के स्रोत रूप तय कर लिए जाते है तो फिर विक्रय विभाग का कार्य चयन पद्धति तय करना होता है। इसके लिए शैक्षणिक मापदण्ड तय किये जाते है; शैक्षिक योग्यता व तकनीकि योग्यता तय की जाती है; लिखित परीक्षा ली जाती है उसके बाद साक्षात्कार किया जाता है। जब सभी प्रकार से प्रार्थी को उपयुक्त पाया जाता है तब उसका चयन किया जाता है।
    3. **विक्रय कोटा निर्धारित करना** – विक्रय विभाग ब्रिकी को बनाये रखने व उसमें वृद्धि करने के लिए विक्रयकर्ताओं व डीलरों आदि का कोटा निर्धारित करता है जो उन्हें अधिक से अधिक कार्य करने के लिए बाध्य करता है। यह कोटा मासिक, तिमाही या वार्षिक हो सकता है।
    4. **प्रशिक्षण देना** – विक्रय विभाग अपने लिए विक्रयकर्ताओं का चयन कर उन्हें प्रशिक्षण देने का काम भी करता है। जिससे वे संस्था के लिए उपयुक्त बन सके।
    5. **कार्यों का निर्धारण करना** – विक्रयकर्ताओं को कार्यक्षेत्र में भेजने से पूर्व उनके कार्यों का निर्धारण भी विक्रय प्रबन्ध विभाग करता है। विक्रयकर्ता का मुख्य कार्य विक्रय करना है परन्तु उन्हें विक्रय के अतिरिक्त अन्य गैर विक्रय कार्य भी सौंपे जाते हैं, जैसे – उधार वसूल करना, पुराने छुटे हुए ग्राहकों से सम्पर्क कर उन्हें खरीदने के लिए प्रेरित करना, बाजार का सर्वेक्षण करना आदि। ऐसा करने से विक्रयकर्ताओं पर नियन्त्रण आसान हो जाता है।
    6. **पारिश्रमिक तय करना** – विक्रय विभाग अपने विक्रयकर्ताओं व अन्य डीलरो व वितरको का पारिश्रमिक भी तय करता है। पारिश्रमिक तय करने के कई तरीके है जैसे – वेतन-विधि, कमीशन विधि, वेतन व कमीशन विधि, आहरण लेखा एवं कमीशन विधि, लाभ विभाजन विधि, कोटा विधि, विशेष कार्य विधि व अन्य विधियाँ। पारिश्रमिक न्यायपूर्ण व प्रेरणात्मक होना चाहिए।

7. **सुसज्जित करना** – विक्रय विभाग का कार्य यह भी है कि विक्रयकर्ताओं को कार्यक्षेत्र में भेजने से पूर्व सुसज्जित भी करना चाहिए इसके लिए उन्हें वस्तुओं की सूची, विक्रय साहित्य, वस्तु के नमूने, आदेश पुस्तक, परिचय-पत्र, आदि दिया जाना चाहिए। ऐसा करने से विक्रय वार्तालाप करने में सुविधा रहती है।
8. **मार्ग निर्धारण करना** – विक्रय प्रबन्ध का कार्य विक्रयकर्ता के मार्गों का निर्धारण करना भी है। यहाँ मार्ग निर्धारण का अर्थ उनके लिए यात्रा का विस्तृत विवरण तैयार करना जिससे कि वे निर्धारित मार्ग से व निर्धारित तिथि पर वहाँ पहुँच सके। उन्हें अपनी इच्छा से मार्ग तय करने या अधिक समय तक रूकने की अनुमति नही होती।
9. **सर्वेक्षण करना** – विक्रय विभाग विक्रेताओं के सर्वेक्षण का कार्य भी करता है जिसके लिए सर्वेक्षक नियुक्त किये जाते हैं जो समय-समय पर विक्रेताओं से पत्र व्यवहार करते है; प्रतिवेदन मांगते है तथा व्यक्तिगत निरीक्षण भी मौके पर पहुँचकर करते है।
10. **निर्देशन करना** – विक्रय शक्ति का निर्देशन एवं नियन्त्रण विक्रय प्रबन्ध का एक बहुत महत्वपूर्ण कार्य है। इससे विक्रयकर्ता को लक्ष्य प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया जाता है। इससे कर्मचारियों में चातुर्य का विकास होता है व ग्राहक सन्तुष्टि में वृद्धि होती है। साथ ही इससे मनोबल बढ़ता है।
11. **निष्पादन मूल्यांकन करना** – विक्रय प्रबन्ध का एक दायित्व यह भी है कि वह विक्रय कर्ताओं के कार्यों का मूल्यांकन करे जिससे की अच्छे विक्रयकर्ताओं को पारितोषित किया जा सके और असफल विक्रयकर्ताओं को अधिक कार्य करने के लिए प्रेरित किया जा सके। इस कार्य के लिए विक्रय विभाग निष्पादन प्रमापो का निर्धारण करता है।

3. **अन्य कार्य** – विक्रय विभाग के कुछ कार्य और भी है जिनमें से ये निम्न हैं –
    1. **आकड़ों का संकलन करना** – विक्रय विभाग विभिन्न प्रकार के आकड़े भी एकत्रित करता है; जैसे – अपनी वस्तु की बिक्री व प्रतियोगी संस्था की वस्तु की बिक्री से सम्बन्धित आकड़ें, बाजार विस्तार या संकुचन के आकड़े, भावी अनुमान के आकड़े, आदि एकत्रित करना।
    2. **उधार वसूल करना** – विक्रय विभाग अपनी उधार राशि को भी वसूलने का कार्य करता है। इसके लिए विक्रयकर्ताओं को अतिरिक्त पारिश्रमिक दिया जाना चाहिए। जिससे कि वे इस कार्य में रुचि ले और उधार की राशि वसूल कर सकें।
    3. **आर्थिक स्थिति का पता लगाना** – विक्रय विभाग डीलरों व वितरकों की आर्थिक स्थिति के बारे में भी पता लगाने का कार्य करता है जिससे उनको साख की सुविधा दी जा सके। विक्रय विभाग को इस प्रकार की सूचनाएँ गोपनीय रखनी चाहिए।
    4. **विक्रय अनुसंधान करना** – आजकल के प्रगतिशील युग में विक्रय अनुसंधान भी आवश्यक है। यदि विक्रय विभाग इसकी अनदेखी करता है तो ऐसी संस्था अधिक दिनो तक नही चल सकती है। इसलिए आजकल विक्रय की नई तकनीकों, क्रेता व्यवहार, विक्रय लागत व

क्रेता मनोविज्ञान, आदि पर अनुसंधान होता रहता है। इस प्रकार विक्रय विभाग का कार्य अनुसंधान करना है।

1.6. विपणन प्रबन्ध एवं विक्रय प्रबन्ध में अन्तर

अन्तर का आधार	विपणन प्रबन्ध	विक्रय प्रबन्ध
1. परिभाषा	इसमें ग्राहकों की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिये विपणन कार्यक्रम का नियोजन एवं क्रियान्वयन किया जाता है।	विक्रय प्रबन्ध में व्यक्तिगत विक्रय एवं विक्रय कर्मचारियों के नियोजन, संगठन, अभिप्रेरण एवं नियन्त्रण की क्रियाएँ शामिल हैं।
2. क्षेत्र	विपणन प्रबन्ध का क्षेत्र विस्तृत है जिसमें विक्रय प्रबन्ध भी शामिल है।	विक्रय प्रबन्ध विपणन प्रबन्ध का एक अंग है।
3. कार्य	विपणन प्रबन्ध का कार्य वस्तुओं के निर्माण के पूर्व ही ग्राहकों की आवश्यकताओं के निर्धारण के साथ प्रारम्भ हो जाता है।	विक्रय प्रबन्ध का कार्य वस्तुओं के उत्पादन के बाद प्रारम्भ होता है।
4. अस्तित्व	विपणन प्रबन्ध का पृथक् अस्तित्व होता है।	यह विपणन प्रबन्ध के एक विभाग के रूप में कार्य करता है।
5. उद्देश्य	विपणन प्रबन्ध का उद्देश्य ग्राहकों की आवश्यकताओं के अनुरूप वस्तुओं का निर्माण करवाना तथा उनकी सन्तुष्टि के अनुसार उचित समय, स्थान एवं मूल्य पर उपलब्ध करना है।	विक्रय प्रबन्ध का उद्देश्य ग्राहकों को क्रय के लिए प्रोत्साहित करके लाभप्रद विक्रय करना है।
6. नियंत्रण	विपणन प्रबन्धक संस्था के महा-प्रबन्धक के अधीन कार्य करता है।	विक्रय प्रबन्धक विपणन प्रबन्धक के अधीन कार्य करता है।
7. बल	विपणन प्रबन्ध में 'ग्राहक सन्तुष्टि' पर बल दिया जाता है।	विक्रय प्रबन्ध में 'बिक्री एवं लाभ' पर जोर दिया जाता है।
8. आवश्यकताओं	यह ग्राहकों की भावी आवश्यकताओं	विक्रय प्रबन्ध ग्राहकों की

	की पूर्ति पर अधिक ध्यान केन्द्रित करता है।	तात्कालिक आवश्यकताओं पर ध्यान देता है।
9. विक्रेता व क्रेता प्रधान	यह क्रेता-प्रधान होता है।	यह विक्रेता प्रधान अधिक होता है।
10. उत्पादों की उपलब्धता	यह भावी आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर माल प्राप्त/निर्माण कर विक्रय का प्रयास करता है।	यह उपलब्ध उत्पादों के विक्रय हेतु प्रयास करता है।
11. लाभ	इससे दीर्घकाल में लाभ प्राप्त होता है।	इसमें तात्कालिक लाभ प्राप्त होता है।

विक्रय प्रबन्ध की विशेषताएं या लक्षण

'विक्रय' व्यवसाय की न केवल सारगर्भित क्रिया है वरन् यह इसका उद्देश्य भी है। यह सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को गति प्रदान करता है। प्रत्येक व्यावसायिक संस्था की सफलता एक बड़ी सीमा तक इसके प्रभावशाली विक्रय प्रबन्ध पर निर्भर करती है। विक्रय प्रबन्ध न केवल व्यावसायिक संस्थाओं के लिए ही महत्त्वपूर्ण होता है वरन् इसके द्वारा उत्पन्न प्रभावों से ग्राहक, समाज व राष्ट्र सभी लाभान्वित होते हैं। संक्षेप में, विक्रय प्रबन्ध के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं :

1. **संस्था के लक्ष्यों की प्राप्ति में योगदान** – प्रत्येक व्यावसायिक उपक्रम की सफलता अथवा असफलता का सीधा सम्बन्ध उसके विक्रय विभाग व विक्रय कर्मचारियों से होता है। व्यवसाय के प्रमुख लक्ष्यों- लाभ, विकास व विस्तार की प्राप्ति विक्रय क्रियाओं व कर्मचारियों के कुशल प्रबन्धव द्वारा ही सम्भलव है।
2. **विक्रय शक्ति का निर्देशन** – विक्रय प्रबन्ध के द्वारा विक्रय शक्ति का प्रभावी उपयोग व कुशल निर्देशन किया जा सकता है। विक्रय प्रबन्धक अपने कर्मचारियों को वित्तीय एवं अवित्तीय प्रेरणायें प्रदान करके, उचित नेतृत्व, योग्य निर्देशन व कुशल पर्यवेक्षण उपलब्ध करवाकर विक्रेताओं के विक्रय लक्ष्यों की प्राप्ति में सहयोग करता है। 'विक्रय शक्ति' संस्था की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण शक्ति होती है जो विक्रय प्रबन्ध के द्वारा विकास एवं सृजन की ओर अग्रसर होती है।
3. **सुदृढ़ व्यावसायिक नियोजन** – व्यवसाय की सुदृढ़ योजनाओं, ठोस निर्णयों व लाभकारी नीतियों के निर्माण में विक्रय प्रबन्ध का बहुत सहयोग होता है। विक्रय प्रबन्धक ही उच्च प्रबन्धकों को विक्रय, बाजार, उत्पाद, प्रतिस्पर्धा, लाभ सम्भावना, वितरक-सम्बन्ध व ग्राहक प्रवृत्तियों आदि के बारे में आवश्यक सूचनाएँ व तथ्य उपलब्ध करवाता है। इन उपयोगी सांख्यिकीय आँकड़ों के आधार पर ही व्यावसाय की समग्र योजना का निर्माण किया जाता है।
4. **व्यावसायिक एवं सामाजिक लक्ष्यों का एकीकरण** – विक्रय प्रबन्ध व्यवसाय के लाभ एवं सेवा लक्ष्यों में एक उचित सन्तुलन स्थापित करने में सहायक होता है। एक ओर वह विक्रय विभाग के

द्वारा फर्म की बिक्री व लाभों में वृद्धि करता हे, तो दूसरी ओर ग्राहक व समाज को उत्पाद द्वारा अधिकतम सन्तुष्टि प्रदान करके सामाजिक लक्ष्य की पूर्ति करता है। विक्रय प्रबन्ध संस्था एवं समाज के मध्य एक सम्पर्क सूत्र की भाँति होता है जो व्यवसाय को अधिकतम लाभ व समाज को अधिकतम सन्तुष्टि प्रदान करता है।

5. **समन्वयकर्ता** – सम्पूर्ण विपणन कार्यक्रम की सफलता विभिन्न तत्त्वों के प्रभावी समन्वय पर निर्भर करती है। विक्रय प्रबन्ध संस्था के उत्पाद, नियोजन, वितरण श्रृंखलाओं, कीमत, प्रवर्तन तथा विपणन कार्यक्रम के अन्य सभी तत्त्वों के बीच एक श्रेष्ठ समन्वय की व्यवस्था निर्मित करता है। विक्रय प्रबन्ध बाजार में भी विभिन्न वर्गों– ग्राहक, वितरक, समाज व सरकार के हितों में एक उचित सामंजस्य उत्पकन्नव करता है।
6. **विक्रय संगठन का निर्माण** – विक्रय प्रबन्ध ही विक्रय विभाग के लिए एक सुदृढ़ संगठन संरचना का निर्माण करता है। यह कर्मचारियों के मध्य उचित आधार पर कार्यों, दायित्वों व अधिकारों का बँटवारा करता है। इसी से विक्रय लक्ष्यों की प्राप्ति सम्भव होती है।
7. **प्रतिस्पर्धा में विजय** – आधुनिक विक्रय प्रतिस्पर्धात्मक हो गया है। इसके लिए कुशल व योग्य विक्रेताओं की आवश्यकता होती है जो कि विक्रय प्रबन्ध के द्वारा ही उपलब्ध हो पाते हैं। विक्रय प्रबन्ध के द्वारा प्रभावी विक्रय व्यूहरचना का निर्माण करके प्रतिस्पर्धा में विजय प्राप्त की जा सकती है।
8. **ग्राहकों को सन्तुष्टि** – विक्रय प्रबन्ध अपनी श्रेष्ठ विक्रय सेवाओं व श्रेष्ठ उत्पादों के द्वारा ग्राहकों को अधिकतम सन्तुष्टि प्रदान करता है। विक्रय प्रबन्ध के माध्यम से ग्राहकों की क्रय समस्याओं का समाधान करके, उन्हें उचित मूल्य पर सही किस्म की वस्तु उपलब्ध कराके तथा उन्हें उत्पाद के बारे में विविध जानकारी प्रदान करके सन्तुष्टि प्रदान की जाती है।
9. **व्यवसाय का विस्तार** – विक्रय कार्य से व्यवसाय का विकास सम्भव होता है। कुशल विक्रय प्रबन्ध के द्वारा बाजारों व माँग का विस्तार करके, क्रय व्यवहार का सृजन करके, संस्था के उत्पादों के प्रति अनुकूल प्रवृत्तियों को विकसित करके तथा संस्था को श्रेष्ठ छवि निर्मित करके व्यवसाय में लाभप्रद सम्भावनायें उत्पन्न की जा सकती है।
10. **अधिक विक्रय** – विक्रय प्रबन्ध योग्य विक्रताओं की नियुक्ति करके उन्हें प्रभावी विक्रय प्रस्तुति के लिए तैयार करता है। इससे विक्रय वृद्धि सम्भव हो जाती है।
11. **अधिक लाभ** – विक्रय की मात्रा, ग्राहक, बाजार भाग आदि में वृद्धि हो जाने से लाभों में वृद्धि होती है, क्योंकि इससे प्रति इकाई खर्चों में कमी हो जाती है।
12. **ख्याति का निर्माण** – विक्रय प्रबन्धक के द्वारा संस्था की छवि, ख्याति व प्रतिष्ठा में वृद्धि सम्भव होती है। इससे सन्तुष्ट ग्राहकों, निष्ठावान मध्यस्थों एवं समर्पित वितरकों का निर्माण किया जा सकता है।
13. **अर्थव्यवस्था को गति एंव ऊर्जा** – विक्रय प्रबन्धक अपने कार्यों से सम्पूर्ण राष्ट्र में प्रभावी माँग को उत्पन्न करके अर्थव्यवस्था को प्रगति के मार्ग पर अग्रसर करता है। वह किस्म सुधार, नवप्रवर्तन-,

नयेखोज नये बाजारों की-, बाजार अनुसन्धान आदि को प्रोत्साहित करके राष्ट्रीय उत्पादन, विनियोग व रोजगार में वृद्धि करता है।

14. **विदेशी व्यापार में वृद्धि** – विदेशी बाजारों में उत्पादों को स्थापित कर पाना केवल विक्रय प्रबन्धक की योग्यता व दूरदर्शिता पर ही निर्भर करता है। विक्रय प्रबन्ध के द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देकर विदेशी मुद्रा कमाई जा सकती है तथा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाया जा सकता है।

विक्रय प्रबन्धक के कर्तव्य

एक विक्रय प्रबन्धक के कर्तव्य उसकी संस्था के प्रारूप, विक्रय की जाने वाली वस्तुएँ, विवरण के माध्यम, विक्रय प्रबन्धकों की सीमायें आदि के अनुरूप भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। **रिसो तथा आस्पले** के अनुसार एक सामान्य आकार वाल संस्था के विक्रय प्रबन्धक के कर्तव्य निम्न प्रकार हो सकते हैं :

1. विक्रय संगठन का निर्माण करना एवं उसे नेतृत्व एवं निर्देश प्रदान करना।
2. विक्रय नीतियों, योजनाओं एवं कार्यक्रमों का निर्धारण करना।
3. विक्रय बजट का निर्माण करना।
4. निर्धारित नीतियों एवं बजट के अनुसार विक्रय कार्यक्रमों को कार्यान्वित करना।
5. शाखाओं विक्रय विभाग एवं उप-विभागों के विक्रय उद्देश्य निर्धारित करना एवं इनकी पूर्ति हेतु आवश्यक कदम उठाना।
6. विक्रय से सम्बन्धित प्रशासनिक कार्य पद्धतियों का निर्माण करना।
7. उच्च प्रबन्धकों एवं विपणन प्रबन्धक को विक्रय प्रबन्ध के मामलों में परामर्श देना।
8. विक्रय योजनाओं एवं उपलब्धियों को निश्चित समयावधि में प्राप्त करने के प्रयास करना।
9. विक्रय कर्मचारियों की भर्ती, प्रशिक्षण आदि कार्यक्रमों का निर्धारण एवं निरीक्षण करना।
10. शाखाओं एवं उप-शाखाओं के विक्रय खर्चों, यात्रा बिलों आदि की स्वीकृति देना।
11. संस्था को प्रभावित करने वाले विक्रय घटकों से उच्च प्रबन्धकों को अवगत कराना।
12. विभिन्न विक्रय लागतों का निर्धारण करना तथा उनकी पूर्व-अनुमति लेकर ही आवश्यक व्यय करना।
13. नई वस्तुओं के निर्माण तथा पुरानी वस्तुओं में सुधार के लिए सिफारिश करना।
14. विज्ञापन एवं विक्रय संवर्द्धन कार्यक्रमों के निर्धारण में परामर्श एवं सहायता देना तथा इन कार्यों का निरीक्षण करना।
15. विक्रय कार्यों में सुधार हेतु दूसरी कम्पनियों की विक्रय नीतियों का अध्ययन करना तथा उनके कर्मचारियों एवं ग्राहकों से सम्पर्क करना।
16. विक्रय क्षेत्रों का भ्रमण करना। भावी ग्राहकों से सम्पर्क करना तथा शाखा प्रबन्धकों से भेट करना।
17. विक्रय सम्मेलन आयोजित करना।
18. विक्रय समस्याओं के निराकरण में विपणन प्रबन्धक को सहायता देना।
19. संस्था की विक्रय नीतियों एवं कार्यक्रमों का विश्लेषण एवं मूल्यांकन करना।

20. शाखा एवं उप-शाखा प्रबन्धकों को आवश्यक निर्देशन देना एवं उनके कार्यों का निरीक्षण करना।
21. संस्था के अन्य प्रबन्धकों के साथ समन्वय बनाये रखना एवं सहयोग का व्यवहार करना।

विक्रय प्रबन्धक के दायित्व

विक्रय प्रबन्धक का निम्नलिखित के प्रति उत्तरदायित्व होता है :

1. स्वयं के प्रति
2. संगठन के प्रति
3. ग्राहकों के प्रति तथा
4. विक्रयकर्ताओं के प्रति

1. स्वयं के प्रति दायित्व –

विक्रय प्रबन्धक का प्रथम दायित्व उसके स्वयं के प्रति होता है। उसके स्वयं के प्रति दायित्व निम्नानुसार हो सकते हैं :

1. विक्रय योग्यता एवं चातुर्य में वृद्धि करना।
2. प्रबन्धीय कौशल का विकास करना।
3. स्वयं को विक्रय परिवर्तनों एवं विकास के अनुरूप सिद्ध करना।
4. वस्तुओं, विक्रय नीतियों, कार्यप्रणालियों आदि का अध्ययन करके नवीनतम जानकारी प्राप्त करना।
5. माल, विक्रय व बाजार के सम्बन्ध में नवीन विचारों के प्रति जागरूक रहना।
6. आत्म-विकास करना ताकि चुनौतियों का पूरी क्षमता के साथ सामना किया जा सके।
7. स्वयं को एक अच्छे विक्रय प्रबन्धक के रूप में सिद्ध एवं प्रदर्शित करना।
8. मानवीय चेतना बनाये रखना।
9. अपनी कमजोरियों एवं क्षमताओं का विश्लेषण करके उनमें सुधार करते रहना।

2. संस्था के प्रति

एक विक्रय प्रबन्धक का अपनी संस्था के प्रति भी उत्तरदायित्व होता है। ये उत्तरदायित्व निम्न प्रकार हो सकते हैं :

1. संस्था के प्रति गर्व अनुभव करना।
2. सभी ग्राहकों में संस्था के प्रति निष्ठा बनाये रखना।
3. विक्रय के क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों तथा विकास की उच्च अधिकारियों को जानकारी देना।
4. वस्तुओं की माँग एवं प्रवाह को नियन्त्रित करना।
5. विक्रय लागतों में कमी लाने के प्रयास करना।
6. सभी अभिलेखों व रिपोर्टों पर शीघ्र ध्यान देना।
7. विक्रय लक्ष्यों की प्राप्ति के प्रयास करना।
8. विक्रय नीतियों के निर्माण में उच्च अधिकारियों के साथ सहयोग करना।
9. प्रतिस्पर्धी संस्थाओं की क्रियाओं की उच्च अधिकारियों को जानकारी देना।
10. संस्था के अन्य विभागों के साथ सहयोग करना।

3. ग्राहकों के दायित्व

ग्राहकों की सन्तुष्टि ही विक्रय प्रबन्ध का आधार है। अत: विक्रय प्रबन्धक के ग्राहकों के प्रति अनेक उत्तरदायित्व होते हैं। कुछ प्रमुख दायित्व निम्न हैं :

1. ग्राहकों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध बनाना।
2. ग्राहकों को अपनी संस्था के साथ सम्बन्ध बनाये रखने के लाभ बताना।
3. ग्राहकों को विक्रय क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों की जानकारी देना।
4. विज्ञापन एवं विक्रय संवर्द्धन साधनों के द्वारा उत्पाद के बारे में विविध जानकारी देना।
5. ग्राहकों को उत्पाद के नये मॉडलों व नवीन परिवर्तनों की जानकारी देना।
6. उनकी शिकायतों को कुशलतापूर्वक दूर करना।
7. विक्रय की नवीन तकनीकों को प्रयोग में लाना ताकि ग्राहकों की सन्तुष्टि में वृद्धि की जा सके।
8. अपनी वस्तुओं के लिए ग्राहकों को प्रेरित करना तथा उनकी रुचि बनाये रखना।
9. ग्राहकों के लिए प्रभावकारी विक्रय प्रदर्शन करवाना।
10. ग्राहकों की अधिकतम सन्तुष्टि के लिए उत्पाद के प्रस्तुतीकरण की नवीन विधि बताना।
11. ग्राहक नीतियों में उचित परिवर्तन करना।
12. ग्राहकों में संस्था के प्रति गर्व की भावना प्रेरित करना।

4. विक्रयकर्ताओं के प्रति दायित्व

विक्रयकर्ताओं के सहयोग से ही विक्रय विभाग का संचालन सम्भव होता है। अत: उनके प्रति विक्रय प्रबन्ध के प्रमुख उत्तरदायित्व निम्नानुसार हैं :

1. विक्रयकर्ताओं को विक्रय नीतियों एवं कार्यक्रमों की पर्याप्त जानकारी देना।
2. विक्रयकर्ताओं के लिए प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था करना तथा प्रशिक्षण की नवीन तकनीकों को प्रयोग में लाना।
3. उत्पाद के प्रस्तुतीकरण के लिए आवश्यक साधन एवं उपकरण उपलब्ध करना।
4. विक्रय आदेशों की तत्काल पूर्ति करने की व्यवस्था करना।
5. ग्राहकों की शिकायतों को दूर करने में सहयोग करना।
6. उत्पाद के विक्रय में आने वाली समस्याओं के निराकरण में सहायता करना।
7. विक्रय नीतियों में होने वाले परिवर्तनों की जानकारी देना।
8. पारिश्रमिक की दरों में समयानुसार संशोधन करना।
9. विक्रय कमीशन, भत्तों व बोनस के भुगतान की व्यवस्था करना।
10. विक्रयकर्ताओं के लिए पदोन्नति नीति बनाना तथा पदोन्नति के उचित अवसर प्रदान करना।
11. उत्पाद की आपूर्ति को नियमित बनाये रखना।
12. विक्रयकर्ताओं की मानसिक व सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति में योगदान देना।
13. उनकी पारिवारिक समस्याओं के समाधान में सहायता देना।

14. संस्था की ख्याति के निर्माण में सहयोग देना।
15. विक्रयकर्ताओं के कार्यों का सही ढंग से मूल्यांकन करके उन्हें उसका लाभ देना।
16. विक्रयकर्ताओं के भ्रमण काल में आने वाली समस्याओं का निराकरण करना।

विक्रयकला का अर्थ एवं परिभाषाएँ

विक्रयकला दो शब्दों से मिलकर बना है, विक्रय+कला। विक्रय का अर्थ है मुद्रा के बदले उत्पाद एवं सेवा के स्वामित्व का हस्तांतरण जबकि कला का तात्पर्य चातुर्य के प्रयोग से इच्छित परिणामों की प्राप्ति से है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि विक्रयकला चातुर्यपूर्ण ढंग से उत्पाद एवं सेवा का स्वामित्व हस्तांतरण है। प्रबंधन के प्रसिद्ध विशेषज्ञों ने विक्रयकला के अर्थ को विभिन्न रूप में परिभाषित किया है जो निम्नलिखित है –

1. **अमेरिकन मार्केटिंग एसोसिएशन के अनुसार,** "एक व्यक्ति या अव्यक्तिगत प्रक्रिया जो भावी ग्राहक को उत्पाद का सेवा क्रय करने में सहायता प्रदान करती है तथा विक्रेता के लिये व्यापारिक महत्व रखने वाले विचार का समर्थन करती है, उसे विक्रयकला की संज्ञा दी जाती है।"
2. **जे. एस. नॉक्स के शब्दों में,** "विक्रयकला मानवीय भावनाओं को मानवीय जरूरतों में बदलाव करने की क्षमता है।"
3. **किर्कपोट्रिक के शब्दों में,** "विक्रयकला संभावित ग्राहक को यह बताता है कि वह अपने व्यय किये गये द्रव्य से कैसे अधिकतम संतुष्टि प्राप्त कर सकता है तथा विवेकपूर्ण क्रय निर्णयन में यह ग्राहक की सहायता करता है।
4. **डी. डी. कौच के अनुसार,** "विक्रयकला एक कला के साथ-साथ एक विज्ञान भी है जिसके द्वारा संभावित ग्राहक के मस्तिष्क में यह विचार पैदा किया जाता है कि आपका उत्पाद क्रय करने से ही उसे संतुष्टि मिलेगी।"

विक्रयकला की प्रमुख विशेषताएँ

विक्रयकला की कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित है –

1. **ग्राहकों की क्रय समस्याओं का समाधान करने की कला** – विक्रयकला ग्राहकों की क्रय समस्याओं का समाधान करने की एक योग्यता है। इसके माध्यम से एक कुशल विक्रेता अपने कौशल, अनुभव एवं दूरदर्शिता से ग्राहकों की उत्पाद से सम्बन्धित समस्याओं का निपटारा करता है। इसके अन्तर्गत बाजार में उपलब्ध वैकल्पिक उत्पादों के गुणों के आधार पर व्यापक विश्लेषण के द्वारा उपयुक्त उत्पाद के चयन का मार्ग प्रशस्त किया जाता है।
2. **भावनाओं एवं विचारों का विक्रय** – विक्रयकला मत, विचार या दृष्टिकोण का विक्रय है। इस कला के प्रभाव से ग्राहक विक्रेता के विचारों के अनुसार ही उत्पाद क्रय का निर्णय लेता है। इसके कला के अन्तर्गत विक्रेता अपने तार्किक कौशल द्वारा ग्राहक की मस्तिष्क को प्रभावित करता है जिसके परिणामस्वरूप खरीद क्रिया सम्पन्न होती है।

3. **संभावित ग्राहकों को प्रोत्साहित करना** – विक्रयकला विद्यमान ग्राहकों पर ही ध्यान नही देती बल्कि संभावित ग्राहक तैयार करने पर भी लगातार बल देती है जिससे ग्राहकों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती रहें।
4. **वैयक्तिक गुण एवं योग्यता** – विक्रयकला एक ऐसा गुण है जो उत्पाद के प्रति चेतना तथा ग्राहक के मस्तिष्क में उसे क्रय करने की प्रेरणा को उजागर कर देता है।
5. **विक्रयकला विज्ञान एवं कला दोनों है** – विक्रयकला में विज्ञान एवं कला दोनों के रूप में देखा जा सकता है। कला के माध्यम से ग्राहकों के मस्तिष्क में यह भावना पैदा की जाती है कि वस्तु खरीदने मात्र से ही उसे संतुष्टि मिलेगी। विज्ञान के रूप में यह कहा जा सकता है कि विक्रयकला के कुछ आधारभूत सिद्धान्त है जिसके प्रयोग के द्वारा विक्रेता अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।
6. **ग्राहकों की भावनाओं को जरूरतों में परिवर्तित करना** – विक्रयकला के माध्यम से एक विक्रेता अपने उत्पाद की विशेषता एवं लाभदायकता के बारे में क्रेता को जानकारी देकर उनकी दबी इच्छाओं को आवश्यकताओं में बदलकर क्रय के लिये प्रेरित करता है।
7. **क्रय अभिप्रेरणा** – विक्रयकला के द्वारा ग्राहकों के क्रय करने के लिये अभिप्रेरित किया जा सकता है। इसके द्वारा ग्राहकों की इच्छा को जागृत करके आवश्यक बना दिया जाता है।
8. **पारस्परिक हितों एवं लाभों में अभिवृद्धि** – यह ग्राहक एवं विक्रेता दोनों को लाभ पहुँचाता है। विक्रेता ग्राहक हित को ध्यान में रखकर अपने विक्रय को पूर्ण करता है। इससे ग्राहक विश्वास तथा ब्रांड प्रतिष्ठा में वृद्धि होती है जो ग्राहक संतुष्टि को जन्म देती है। ग्राहक संतुष्टि विक्रेता के लाभों का आधार बनती है।
9. **ग्राहक संदेह का निर्वारण** – आधुनिक विक्रयकला "विश्वास करो संदेह नही'' पर आधारित है। इसें मोलभाव का कोई स्थान नहीं क्योंकि मोलभाव की प्रवृत्ति अनेक संदेहों को जन्म देती है। आधुनिक विक्रयकला एक मूल्य की नीति को अपनाकर ग्राहक का विश्वास कायम रखती है।
10. **ग्राहकों को आकर्षित करने की कला** – एक विक्रकता में कई आधारभूत गुणों का होना आवश्यक है जिससे कि वह अपने उत्पाद को ऐसे आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करें कि ग्राहक उत्पाद क्रय किये बिना नहीं रह पायें। अपने मोहक व्यक्तित्व के द्वारा विक्रेता अपने उत्पाद को ग्राहकों के लिये आवश्यक बना देता है।

विक्रयकला का महत्व

विक्रयकला के महत्व को निम्नलिखित शीर्षको के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है –

I. **व्यवसाय के दृष्टिकोण से विक्रयकला का महत्व** – विक्रयकला सम्पूर्ण व्यावसायिक क्रियाओं का आधार स्तम्भ है। इसके बिना व्यवसाय एवं उद्योग का विकास नही हो सकता है। इसके महत्व को निम्न बिन्दुओं से समझा जा सकता है –

(i) **लाभ में वृद्धि** – विक्रय के द्वारा ही लाभ में बढ़ोतरी होती है। विक्रय कार्य में सलंग्न प्रत्येक व्यवसायी, निर्माण-संस्था, मध्यस्थ आदि सभी ग्राहक संतुष्टि द्वारा विक्रय लक्ष्य को पूरा करके लाभ में बढ़ोतरी करते है।

(ii) **प्रबंध कौशल का विकास** – ग्राहकों के साथ विक्रय व्यवहार सिखाने का कार्य विक्रयकला करती है क्योंकि व्यावसायिक सफलता नये ग्राहकों के सृजन एवं पुराने ग्राहकों को बनाये रखने पर निर्भर करती है। किसी भी व्यावसायिक संस्था का विक्रय-कार्य सबसे अधिक गतिशील कार्य होता है इसीलिये विक्रय विभाग के अधिकारी एवं कर्मचारी अन्य विभागों के अधिकारी एवं कर्मचारी की तुलना में अधिक प्रगति करते है। विक्रय विभाग संस्था के लक्ष्यों एवं परिणामों को सर्वाधिक प्रभावित करते है।

(iii) **बाजार सूचनाओं का संकलन** – बाजार तथा ग्राहकों की सम्पूर्ण सूचना एकत्रित करने के लिये विक्रयकला का सहारा लेना पड़ता है। विक्रयकला के माध्यम से ग्राहकों की पसंद, उनके सुझाव एवं शिकायतें आदि की जानकारी संभव हो पाती है। इन्हीं जानकारियों के आधार पर उत्पाद में सुधार तथा मांग के अनुसार उत्पादन किया जाता है।

(iv)**व्यावसायिक संगठन की सफलता** – किसी भी व्यावसायिक संस्था का महत्वपूर्ण लक्ष्य अपने उत्पादों का विक्रय करना होता है। एक व्यावसायिक संगठन की सफलता ग्राहक संतुष्टि के द्वारा विक्रय को पूर्ण करने से है। जब तक विक्रय कार्य पूर्ण नही होता व्यवसाय संगठन सफलतापूर्वक नहीं चल सकता। अत: विक्रयकला के द्वारा ही किसी व्यवसाय के उद्देश्यों एवं लाभों को प्राप्त किया जा सकता है।

(v) **प्रभावी मांग का सृजन** – विक्रयकला एक सृजनात्मक प्रक्रिया है जो एक प्रभावशाली ग्राहक मांग का निर्माण करती है। उत्पाद एवं सेवाओं के प्रति ग्राहकों की इच्छा जागृत करके इच्छाओं को आवश्यकताओं में बदलने का कार्य विक्रयकला करती है। इसी प्रकार विक्रयकला के माध्यम से उत्पाद एवं सेवा की उपयोगिकताओं का सृजन करती है जिससे ग्राहक लाभाविन्त होते है तथा दोबारा क्रय करने को प्रोत्साहित करना।

(vi)**तकनीकी उत्पादों हेतु महत्वपूर्ण** – बहुत से उत्पादों के लिये अलग विक्रय तकनीक की आवश्यकता होती है क्योंकि इन उत्पादों की उपयोगिता तथा तकनीकी जटिलता को बिना समझाये विक्रय संभव नहीं है।

(vii)**लागत में कमी** – प्रभावी मांग के सृजन द्वारा अधिक उत्पादन को संभव बनाया जाता है जिससे उत्पादन संबंधी बड़े पैमाने की मितव्ययिताएँ प्राप्त होती है। उत्पादन के संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग होता है तथा पूर्ण क्षमता पर उत्पादन किया जाता है जिससे लागत में कमी आती है।

(viii) **नये बाजारों की खोज करना** – शोध एवं विकास के द्वारा विक्रयकला नये बाजारों की खोज करता है ताकि विद्यमान ग्राहकों के साथ-साथ नये ग्राहक एवं बाजार बनाने का कार्य जारी रह सकें। ग्रामीण बाजारों में संभावनाएँ बढ़ती जा रही है जिसकी वजह से बड़े-औद्योगिक कम्पनियों ने अपना ध्यान इन बाजार की केन्द्रित किया है। विक्रयकला के वजह से ही आज गांव में रहने वाला व्यक्ति भी इलेक्ट्रानिक उत्पादों की उपयोगिता तथा इसके उपयोग के तरीकों से पूर्णतया परिचित हो गया है।

II. **ग्राहकों के दृष्टिकोण से विक्रयकला का महत्व** – ग्राहकों के दृष्टिकोण से विक्रयकला का सबसे अधिक महत्व है। ग्राहकों की रूचि, आदतें, फैशन आदि का आकलन करके उसके अनुसार उत्पाद एवं सेवाओं

को उपलब्ध कराने का कार्य विक्रयकला का ही है। विक्रयकला के द्वारा ग्राहकों को निम्नलिखित लाभ होते है –

i. **ग्राहकों के ज्ञान में बढ़ोतरी** - विक्रयकला के माध्यम से नये उत्पाद के बारे में जानकारी ग्राहकों को करायी जाती है। इसमें उत्पाद के प्रयोग, प्रयुक्त सामग्री, निर्माण तकनीक, गुणवत्ता, कीमत तथा प्रतिस्पर्द्धी उत्पादों से तुलना आदि के बारे में जानकारी ग्राहकों को उपलब्ध करायी जाती है। इस तरह विक्रयकला के माध्यम से ग्राहकों को शिक्षित किया जाता है जिससे उन्हें क्रय निर्णय लेने में सुविधा हो सकें।

ii. **नये उत्पादों का विक्रय** – विक्रयकला के द्वारा नये उत्पादों को बेचना संभव हो पाता है। ग्राहकों की मांग एवं रुचि के परिणामस्वरूप पुराने उत्पाद जल्दी ही चलन से बाहर हो जाते है तथा उनका स्थान नये उत्पाद ले लेते है।

iii. **उच्च स्तर का जीवन-व्यापन** – विक्रयकला के माध्यम से आज गुणवत्तायुक्त उत्पाद एवं सेवाएँ आमजन तक पहुँचाया जा रहा है जिससे लोगों के जीवन-व्यापन का स्तर काफी ऊँचा हुआ है। विक्रयकला का कार्य केवल विक्रय ही नही है, बल्कि ग्राहकों की आवश्यकताओं की पहचान करके उसकी पूर्ति को सुनिश्चित करना भी है। आज कम कीमत पर उत्तम किस्म के उत्पाद बनाये जा रहे हैं जिसका उपभोग अधिकांश ग्राहक कर रहे है। इससे उनका जीवन-स्तर काफी ऊँचा उठा है।

iv. **उचित मूल्य पर उत्पाद की प्राप्ति** – विक्रयकला की वजह से उत्पादन में वृद्धि होती है जिसके परिणामस्वरूप प्रति इकाई लागत कम हो जाती है तथा इससे ग्राहकों को कम मूल्य पर उत्पाद उपलब्ध हो जाता है।

v. **ग्राहक संतुष्टि में वृद्धि** – विक्रयकला ग्राहक संतुष्टि द्वारा लाभार्जन पर बल देती है। इसके द्वारा ग्राहकों की आवश्यकताओं एवं पसंद का सही आकलन करके उपयुक्त उत्पाद एवं सेवा उपलब्ध कराने पर सदैव बल दिया जाता है।

vi. **वारंटी एवं परामर्श सुविधा** – आज के प्रतिस्पर्द्धी दौर में ग्राहकों को वसतु एवं सेवा की पूरी वारंटी एवं सलाह की व्यवस्था प्रदान की जाती है। उत्पाद को बेचने के साथ-साथ एक विक्रेता कुशल परामर्शदाता की भी भूमिका का निर्वाह करता है। वह ग्राहकों को गलत उत्पाद एवं सेवा के चयन में मार्गदर्शन करता है।

वैयक्तिक विक्रय

वैयक्तिक विक्रय से अर्थ – व्यवसाय में वैयक्तिक विक्रय का बहुत अधिक महत्व है। इसमें वस्तुओं के विक्रय के लिए ग्राहक एवं विक्रयकर्ता में आमने-सामने बातचीत होती है और विक्रयकर्ता ग्राहक को प्रभावित कर विक्रय करने की चेष्टा करता है।

इस सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों की परिभाषायें निम्नलिखित है -

1. **कण्डिक एवं स्टिल के अनुसार** – "वैयक्तिक विक्रय मूल रूप से संचार का एक तरीका है। इसमें व्यक्तिगत ही नही अपितु सामाजिक व्यवहार भी शामिल है। प्रत्येक व्यक्ति आमने-सामने के अन्तर में प्रभावित करता है।"
2. **डब्लू.जे. स्टैन्टन के अनुसार** – "वैयक्तिक विक्रय में अकेला व्यक्तिगत संदेश शामिल होता है जो अव्यक्तिगत सन्देश, विज्ञापन विक्रय संवर्द्धन व अन्य संवर्द्धन उपकरणों के विपरीत है।"

रिचर्ड बसकिर्क के अनुसार – "वैयक्तिक विक्रय वह विक्रय है जिसमें किसी वस्तु के सम्भावित क्रेताओं से व्यक्तिगत सम्पर्क किया जाता है।"

इस प्रकार वैयक्तिक विक्रय में –

1. विकयकर्ता व ग्राहक दोनों का एक दूसरे से प्रत्यक्ष व्यक्तिगत सम्पर्क होता है इन दोनों के बीच कोई अन्तर नही होता है।
2. इसके द्वारा वस्तुओं का विक्रय किया जाता है।
3. इसमें मौखिक रूप में प्रस्तुती किया जाता है।
4. यह संचार का एक तरीका है।
5. इसमें दोनों व्यक्तिगत और सामाजिक व्यवहार शामिल है। जब कभी विक्रय होता है तो एक ओर विक्रयकर्ता और दूसरी ओर क्रेता होता है। दोनो एक दूसरे को प्रभावित करते है जब ग्राहक विक्रयकर्ता से सहमत हो जाता है तो वह खरीद लेता है इस प्रकार की प्रत्यक्ष बिक्री को ही वैयक्तिक विक्रय कहते हैं।

वैयक्तिक विक्रय का महत्व

व्यवसाय जगत में जब से अदल-बदल प्रथा आरम्भ हुई है तभी से वैयक्तिक विक्रय सामने आया। आज भी वैयक्तिक विक्रय का बड़ा महत्व है। यही कारण है कि अमेरिका में कुल श्रमिक शक्ति का 10 प्रतिशत विक्रय कार्यो में लगा हुआ है। वैयक्तिक विक्रय का महत्व निम्नलिखित है-

1. **ग्राहको को अधिकतम संतुष्टि -** प्रत्येक विपणन प्रयत्न का उद्देश्य ग्राहको को अधिकतम संतुष्टि देकर लाभो में वृद्धि करना है। वैयक्तिक विक्रय इस उद्देश्य की प्राप्ति में भरपूर सहयोग देता है। इतना सहयोग विज्ञापन, विक्रय संवर्द्धन व अन्य साधनो से भी नही हो सकता है।
2. **बिक्री का प्रभावशाली अस्त्र -** वैयक्तिक विक्रय बिक्री करने का सबसे अधिक प्रभावशाली अस्त्र है। इसके द्वारा ग्राहको में आवश्यकता उत्पन्न कर उन्हें क्रय करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है और क्रेता के हाव भाव के अनुसार विक्रयकर्ता अपने व्यवहार में उचित समायोजन कर सकता है।
3. **प्रबन्ध के लिए महत्वपूर्ण -** वैयक्तिक विक्रय के माध्यम से प्रबन्ध द्वारा विभिन्न प्रकार की सूचनायें एकत्रित की जा सकती है व वस्तुओं में उसी के अनुरूप परिवर्तन कर ग्राहको को और अधिक संतुष्ट किया जा सकता है।
4. **ग्राहको के लिए महत्वपूर्ण -** ग्राहको के लिए वैयक्तिक विक्रय महत्वपूर्ण है। इसका कारण यह है कि -(i) वस्तु की कार्य प्रणाली का प्रदर्शन भी वैयक्तिक विक्रय में किया जाता है। जिससे ग्राहक उसकी कार्य

पद्धति से परिचित हो जाता है। कभी - कभी स्वयं विक्रयकर्ता ग्राहक से उसको चलाने को आग्रह करते है।

(ii) वैयक्तिक विक्रय ग्राहकों की शंकाओं एवं आपत्तियों का समाधान करता है और उसके लिए उस वस्तु की उपयोगिता को बताता है।

(iii) वैयक्तिक विक्रय ग्राहको को जानकारी देता है।

1.6. बिक्री से संबंधित विपणन नीतियों का निर्धारण

एक वैयक्तिक विक्रय कार्य करने वाले को विक्रय कार्य के अतिरिक्त बहुत से कार्य करने पड़ते है। बिक्री का रिकार्ड रखना, नये विक्रय कर्ताओं को प्रशिक्षण देना तथा प्रबन्धक को सुझाव देने पड़ते है और संस्था को ख्याति को बढ़ाना और बनाना पड़ता है। एक फुटकर विक्रेता को साधारणतया निम्न कार्य करने पड़ते है-

1. **बिक्री करना -** वैयक्तिक विक्रय का यह मुख्य कार्य है जिसको एक विक्रयकर्ता को करना पड़ता है। विक्रय नये व पुराने दोनो प्रकार के ग्राहको को किया जाता है। नये ग्राहको के आदेश नये आदेश व पुराने ग्राहको के आदेश पुन: आदेश कहलाते है।
2. **ग्राहको की सेवा करना -** वैयक्तिक विक्रय का दूसरा कार्य ग्राहको की सेवा करना है इसके लिए वह वस्तु का प्रदर्शन करता है व ग्राहको को उचित सलाह देता है तथा इस बात को बताता है कि वस्तुओ से सर्वाधिक संतुष्टि किस प्रकार की जा सकती है।
3. **अपनी एवं संस्था की ख्याति में वृद्धि करना -** विक्रयकर्ता ऐसे बहुत से कार्य करता है जिससे उसकी व संस्था की ख्याति बढ़ती है। जैसे फुटकर विक्रेताओं की माल को प्रदर्शित कर में सहायता करना, उसकी लगातार सेवा करते रहना आदि।
4. **बिक्री का रिकार्ड रखना** – यह बिक्री किसको किस मात्रा में तथा कब की गयी है इसका लेखा रखता है। विक्रयकर्ता द्वारा कितनी मुलाकाते की गयी तथा इसका क्या परिणाम रहा इसका भी लेखा-जोखा इसी के द्वारा रखा जाता है।
5. **प्रशासनिक कार्य** – इसकी अपने अल्पकालिक एवं दीर्घ कालिक कार्यक्रम बनाने पड़ते है। यह अपने नये साथी विक्रयकर्ता को अपने साथ रखकर प्रशिक्षण देता है। यह बाजार परिस्थिति का अध्ययन का प्रबन्ध को अपने सुझाव देता है व अपने साधियों एवं निरीक्षको से मिलकर विपणन सम्बन्धी कठिनाइयों को सुलझाता है।

वैयक्तिक विक्रयकर्ताओं के प्रकार

विक्रयकर्ताओं के कार्य भिन्न-भिन्न प्रकार के होने के कारण विक्रयकर्ता भिन्न–भिन्न प्रकार के होते है। इसके साथ-साथ एक कारण यह भी है कि विक्रयकर्ताओं के कार्य व्यवसायिक उन्नति के कारण बदलते रहते है। इन्ही सभी बातो को ध्यान में रखते हुए विक्रयकर्ताओं को उनके कार्य के अनुसार निम्न तीन प्रकार में बाँट सकते है-

1. **आदेश प्राप्त करने वाले विक्रयकर्ता** – ये वे विक्रयकर्ता है जो सम्भावित ग्राहको को नयी वस्तु, नयी सेवा या नये विचार के लिए ढूँढ़ते है, उनको प्रभावित करते है और वस्तु के आदेश प्राप्त करते है। इन्ही विक्रयकर्ताओं को सृजनशील विक्रयकर्ता भी कहते है। इसका कारण यह है कि यह माँग का सृजन करते हैं।

एक अच्छा आदेश प्राप्त करने वाला विक्रयकर्ता चातुर्यपूर्ण, स्वामिभक्त, परिश्रमी, ईमानदार, प्रभावशाली व्यक्तित्व वाला, साहसी, नम्र, हृष्ट-पुष्ट व अपने क्षेत्र को पूर्ण रूप से समझने वाला होना चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो वह एक ही निर्माता को माल बेचने वाला होना चाहिए। उसे अपने आप में पूर्ण विश्वास होना चाहिए तथा आशावादी दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। आदेश प्राप्त करने वाले विक्रयकर्ता भी तीन प्रकार के होते है।

(i) **निर्माता के लिए आदेश प्राप्त करने वाले** – यह औद्योगिक वस्तुओं व औद्योगिक कच्चे माल के सम्बन्ध मे पाये जाते है। इनका काम औद्योगिक क्रेता के माल की पूर्ति करनी वाली फर्मो की लिस्ट में अपने संस्था का नाम जुड़वाना है। ऐसे क्रेता बचत एवं लाभों में अपनी रुचि रखने वाले होते है। ऐसे विक्रयकर्ता में तान्त्रिक ज्ञान होना भी अनिवार्य है।

(ii) **थोक विक्रेता के लिए आदेश प्राप्त करने वाले विक्रयकर्ता** – कुछ थोक विक्रेता अपने फुटकर विक्रेताओं की सुविधा के लिए ऐसे विक्रयकर्ता नियुक्त करते हैं। इन विक्रयकर्ताओं का काम थोक विक्रेताओं के लिए फुटकर विक्रेताओं से आदेश प्राप्त करना है।

(iii) **फुटकर विक्रेताओं के लिए आदेश प्राप्त करने वाले विक्रयकर्ता** – यह विक्रयकर्ता फुटकर विक्रेताओं के लिए आदेश प्राप्त करता है। जब वस्तु नयी होती है तो उपभोक्ताओं को समझाकर आदेश प्राप्त किया जा सकता है। इसी प्रकार यदि वस्तु स्टाँक में बहुत इकट्ठी हो गयी है तो ग्राहको को उस वस्तु की उपयोगिता समझाकर यही विक्रयकर्ता आदेश लाते हैं।

2. **आदेश लेने वाले विक्रयकर्ता** – जब किसी वस्तु की मांग विज्ञापन, विक्रय संवर्द्धन या अन्य किसी प्रकार से बन गयी है तथा उस वस्तु के आदेश लेने वाले यही विक्रयकर्ता होते है। वैयक्तिक विक्रय का अधिकांश विक्रय यही लोग करते है। कभी कभी यही लोग माल की तुरन्त सुपुर्दगी करके उसका भुगतान भी लेते है। यह तीन प्रकार के होते है – 1. निर्माता के 2. थोक व्यापारी के 3. फुटकर विक्रेता के।

3. **सहारा देने वाले विक्रयकर्ता** – यह विक्रयकर्ता आमतौर पर निर्माता के लिए कार्य करते है और इनका कार्य वस्तु की बिक्री के लिए सहारा देना है। इसके लिए वह वस्तु की तकनीकी व अन्य अच्छी बातों को सम्भावित क्रेताओं को बताते है और संस्था की ख्याति बनाने का प्रयास करते हैं। वे स्वयं न आदेश लेते है और न बिक्री करते है। आदेश का कार्य आदेश लेने वाले विक्रयकर्ता बाद में करता है। सहारा देने वाले विक्रयकर्ता भी दो प्रकार के होते हैं।

   - एक वे जो संस्था की ख्याति की वृद्धि करते है और माँग उत्पन्न करते है तथा थोक विक्रेता के विक्रयकर्ता को प्रशिक्षण भी देते है। इनका मुख्य कार्य निर्माता एवं थोक व फुटकर विक्रेताओ के बीच संचार माध्यम के रूप में करना है।

- दूसरे प्रकार के विक्रयकर्ता तान्त्रिक विशेषज्ञ (Technical Specialists) होते है। यह वैज्ञानिक इन्जिनियर होते है। इनमें वस्तु की तान्त्रिक बातो व उसके लाभो को बताने की क्षमता होती है। साधारणतया आदेश प्राप्त करने वाला विक्रयकर्ता अपनी संस्था को क्रेताओं की कठिनाइयों बताता है तब इस प्रकार का तान्त्रिक विशेषज्ञ वहाँ भेजा जाता है जो उनकी कठिनाइयों व सन्देहो को दूर करता है। तीनो प्रकार के विक्रयकर्ता तीन अलग तरह के कार्य करते है। लेकिन यह सम्भव है कि यह तीनो या उनमें से कोई दो कार्य एक ही विक्रयकर्ता को दे दिये जाए।

वैयक्तिक विक्रय रणनीति

वैयक्तिक विक्रय का प्रबन्धन कार्य विक्रय-प्रबन्धन के द्वारा किया जाता है और वही विक्रय शक्ति के नियोजन प्रशिक्षण एवं उनके उपयोग के लिए उत्तरदायी होता है। इन उत्तरदायित्वों को पूरा करने क लिए उनको निम्न चार कार्य करने पड़ते है जो कि वैयक्तिक रणनीति के निर्धारण सम्बन्धी घटक कहलाते है –

1. **वैयक्तिक विक्रय व्यय** – वैयक्तिक विक्रय रणनीति में पहले वैयक्तिक विक्रय-व्ययो को निर्धारित किया जाता है। इन व्ययो को निर्धारित का आधार विपणन उद्देश्य लक्षित बिक्री होते है जिसका निर्धारण आने वाले समय के लिए प्रबन्ध द्वारा पहले से ही कर लिया जाता है। यदि प्रबन्ध का लक्षित बिक्री उद्देश्य पिछली बिक्री से अधिक है तो इसका अर्थ यह हो सकता है कि अधिक विक्रय कताओं को नियुक्त करने की आवश्यकता प्रतीत हो और उनके निरीक्षण के लिए निरिक्षको की इन निरीक्षकों व विक्रयकर्ताओं को उनके पारिश्रमिक अतिरिक्त कुछ अन्य व्यय भी देने पड़ते है। अत: वैयक्तिक विक्रय-व्यय को निर्धारित करते समय प्रबन्ध को दो कार्य करने पड़ते है।

   - प्रत्येक क्रिया द्वारा सम्पादित किये जाने वाले कार्यो का अनुमान उन अनुमानो को रुपयो के अनुमानो में बदलना। वैयक्तिक विक्रय-व्ययो में विक्रयकर्ताओं की भर्ती व चुनाव के व्यय, उनको प्रशिक्षित करने के व्यय, उनको प्रेरणा देने व निरीक्षण के व्यय व उनके प्रबन्ध के व्यय आते है। अत: वैयक्तिक विक्रय-व्ययो का निर्धरण करते समय इस बात का ध्यान अवश्य ही रखा जाना चाहिए कि वे इतने अवश्य हो कि उपयुक्त व्ययो को पूरा किया जा सके।

2. **कार्य विवरण** – ‘‘कार्य-विवरण एक विशिष्ट कार्य के उद्देश्य, कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों का व्यापक कथन है।’’ इसमे मुख्य रूप से 1. कार्य सारांश – कर्तव्यो और दायित्वो का विवरण 2. प्रशिक्षण 3. कार्य की दशायें 4. कार्य के लिए वांछित उपकरणों मशीनो एवं सामिग्रयो का विवरण 5. शारीरिक एवं मानसिक गुण 6. वेतन एवं भत्ते आदि बाते लिखित रूप से आती है विक्रय-प्रबन्ध का प्रथम व सबसे महत्वपूर्ण कार्य कार्य-विवरण तैयार करना है। यह कार्य-विवरण बिलकुल स्पष्ट, पूर्वा एवं उचित होना चाहिए। वैयक्तिक विक्रय-रणनीति का यह महत्वपूर्ण अंग है। इसी के आधार पर प्रबन्ध के द्वारा इन गुणों एवं योग्यताओं का निर्धारण किया जाता है जिनका एक विक्रयकर्ता में होना अनिवार्य है। इसी के आधार पर पारिश्रमिक एवं निरीक्षण योजनाये बनायी जाती है और यही कार्य-विवरण प्रबन्ध के लिए मार्ग-प्रदर्शन का कार्य करता है।

कुछ अच्छी कम्पनियाँ कार्य-विवरण के साथ-साथ एक प्रभावकार्य का विवरण भी तैयार करती है जिससे की आगे चलकर एक विक्रयकर्ता के कार्य की तुलना उन प्रमाप-कार्य के विवरण में करके उसके कार्य का मूल्यांकन किया जा सके।

3. **विक्रय शक्ति को बदलने की दर** – साधारणतया प्रत्येक संस्था में प्रतिवर्ष कुछ विक्रयकर्ता इस्तीफा दे जाते है या रिटायर हो जाते है या कुछ को किसी कारणो से अलग कर दिया जाता है वैयक्तिक विक्रय के नियोजन में इस बात का भी ध्यान रखना पड़ता है कि प्रतिवर्ष इन उपर्युक्त वर्णित कारणों से कितने प्रतिशत 'विक्रयकर्ता' संस्था से निवृत्त होगें। जिससे की उनके स्थान पर नये विक्रयकर्ता नियुक्त करने के लिए पहले से ही उचित प्रबन्ध कर लिया जाए। जिस दर से विक्रयकर्ता निवृत होते है उसी पर को विक्रय शक्ति के बदलने की दर कहते हैं। इस दर को प्रतिशत में निकालने के लिए निम्नलिखित सूत्र काम में लाया जाता है।

$$\text{विक्रय शक्ति के बदलने की प्रतिशत दर} = \frac{\text{अलग होने वाले विक्रयकर्ता की संख्या}}{\text{विक्रय शक्ति का औसत आकार}} \times 100$$

विपणन से सम्बन्धित सभी व्यक्ति जानते है कि नये-नये विक्रयकर्ताओं को प्रशिक्षित करने में व्यय होता है। अत: विपणन प्रबन्धक को इस विक्रय शक्ति के बदलने की दर निम्न से निम्न रखनी चाहिए। यदि पर बढ़ती है तो विक्रय-शक्ति के प्रबन्ध व्यय भी बढ़ते है। इसके साथ-साथ जितना व्यवसाय पुराने विक्रयकर्ता दे पाते है उतना नये विक्रयकर्ता नही दे पाते हैं। विक्रय कार्य में जितनी विक्रय शक्ति लगी हुई है उसका निर्धारित बिक्री अवश्य करनी चाहिए। यदि बिक्री उससे कम होती है तो ऐसे विक्रयकर्ता को हटाने की व्यवस्था अवश्य ही की जानी चाहिए। साथ ही जो विक्रयकर्ता निर्धारित बिक्री से अधिक बिक्री करते है उन्हें उन्नति के अवसर दिये जाने चाहिए। इसका अर्थ यह है कि अकुशल विक्रयकर्ताओं को हटाया जाना चाहए तथा कुशल को उन्नति का अवसर दिया जाना चाहिए।

4. **विक्रय शक्ति का आकार** – विक्रय शक्ति का आकार कितना बड़ा हो यह संस्था की अनुमानित बिक्री व उसके लाभ सम्बन्धी उद्देश्यों पर निर्भर हे। इसके साथ-साथ एक विक्रयकर्ता का कार्य-विवरण भी आवश्यक है जिससे की यह तय किया जा सके कि एक विक्रयकर्ता कितने रुपये की बिक्री कर सकता है। यदि कुल अनुमादित बिक्री मे एक विक्रयकर्ता की बिक्री का भाग दे दें तो यह निकाला जा सकता है कि कितना विक्रयकर्ताओं की आवश्यकता है, लेकिन ऐसा करते समय विक्रय शक्ति के बदलने की दर का ध्यान रखना चाहिए विक्रय शक्ति को निकालने के लिए निम्न सूत्र प्रयोग में लाया जा सकता है।

   $N = \frac{S}{P}(1 + T)$

   N = विक्रयकर्ताओं की संख्या

   S = बिक्री का पूर्वानुमान

   P = एक विक्रयकर्ता की विक्रय क्षमता

   T = विक्रय शक्ति बदलने की दर

वैयक्तिक विक्रय के लाभ

वस्तुओ का विक्रय दो प्रकार से होता है – एक वैयक्तिक व दूसरा अवैयक्तिक। वैयक्तिक विक्रय में वस्तुओं के क्रेता व विक्रेता आमने-सामने होते है लेकिन अवैयक्तिक विक्रय पत्र व्यवहार व टेलीफोन आदि से होता है। वैयक्तिक विक्रय में अवैयक्तिक विक्रय की तुलना में कुछ लाभ है जो इस प्रकार है –

1. **भावी ग्राहको का पता लगाता है** – वैयक्तिक विक्रय का सबसे पहला लाभ यह है कि इस तरीके से पूरे ग्राहको का पता लग जाता है जो या तो उनकी वस्तु के ग्राहक है या वे ग्राहक बन सकते है। इससे विक्रयकर्ता अपना ध्यान उस ओर एकाग्र होकर लगा सकता है। विज्ञापन व विक्रय संवर्द्धन इन बातो का पता नही लगा सकते है।
2. **शंकाओ का समाधान करता है** – वैयक्तिक विक्रय में क्रेताओं की शंकाओं का समाधान उचित रूप से किया जा सकता है। उनकी आपत्तियों का निवारण कर क्रय के लिए उचित वातावरण बना सकते है। ऐसा करने से आदेश मिलने की सम्भावनाएँ बढ़ जाती है।
3. **वस्तु का प्रदर्शन करता है** – ग्राहक को वस्तु की लाभ प्रदत्ता व उसकी वाछनीयता का विश्वास दिलाने के लिए आवश्यक है कि उसको वस्तु का प्रयोग करने का उचित अवसर देते हुए उसका वास्तविक प्रदर्शन किया जाए। वैयक्तिक विक्रय वस्तुओं का प्रत्यक्ष प्रदर्शन करके यह अवसर प्रदान करता है।
4. **विक्रय समाप्ति में सहायता देता है** – वैयक्तिक विक्रय का एक लाभ यह भी है कि विक्रय समाप्ति में सहायता देता है यह शंकाओ का समाधान कर विक्रय के लिए दबाब डालता है। विज्ञापन व विक्रय संवर्द्धन तो क्रेता क्रय करने के लिए प्रेरित करते है लेकिन वे इतने प्रभावशाली नही होते जितना की व्यक्तित्व विक्रय।
5. **समय समान्जस्य** – इसमें विक्रयकर्ता ऐसी व्यवस्था कर लेता है कि जब कभी भी क्रेता वस्तु को क्रय करने के लिए तैयार होता है विक्रयकर्ता उसी समय उपस्थित हो जाता है और उसको तुरन्त सेवा दे देता है।
6. **संचार सुविधा प्रदान करता है** – वैयक्तिक विक्रय निर्माताओं के लिए संचार सुविधाएं प्रदान करता है। विक्रयकर्ता को वस्तुओ के विक्रय के संबंध में बहुत सी सूचनाएं प्राप्त होती है, जैसे – बाजार दशाएं , प्रतियोगी क्रियायें, संस्था की नीतियों के बारे में ग्राहक की प्रतिक्रियायें आदि। विक्रयकर्ता इन सभी बातो को निर्माता तक पहुँचाता है जिससे की निर्माता अपनी नीतियों व वस्तुओं में आवश्यक परिवर्तन कर अपने आपको जीवित ही नही बल्कि उनको बढ़ाने में भी सहायता मिलती है।
7. **गैर-विक्रय कार्य करता है** – एक विक्रयकर्ता का मुख्य कार्य विक्रय करता है लेकिन यह अपने विक्रय कार्य के अतिरिक्त अन्य गैर-विक्रय कार्य भी करता है जो निर्माता के लिए लाभकारी होते है; जैसे – बाजार अनुसंधान करना मरम्मत सेवा प्रदान करना, ग्राहको की शिकायतो का निवारण करना आदि।

8. **सामाजिक प्रेरणा प्रदान करता है** – वैयक्तिक विक्रय ग्राहक व विक्रयकर्ता के बीच एक भिन्नता जैसा सामाजिक संबंध बना देता है जिसका परिणाम यह होता है कि उसको आदेश मिलते रहते हैं और वह अपनी वस्तु बेचने में सफल हो जाता है।

वैयक्तिक विक्रय के दोष या सीमाएं

वैयक्तिक विक्रय के दोष वास्तव में दोष नही है। ये तो सापेक्षिक है। इसका अर्थ यह है कि कुछ दशाओ में दोष हो सकते है जबकि अन्य दशाओं में नही। इन्दी दोषो को वैयक्तिक विक्रय की सीमाएं भी कहते हैं।

1. **लागतें** – वैयक्तिक विक्रय का सबसे बड़ा दोष लागत का है। वैयक्तिक विक्रय में विक्रयकर्ता को पारिश्रमिक यात्रा, व्यय, भत्ते व अन्य सुविधाएं देनी होती है जिसका कुल योग काफी होता है जो वस्तु की विक्रय लागत को बढ़ा देता है, लेकिन यदि व्यक्तिगत सम्पर्क टेलीफोन व पत्र व्यवहार से किया जाता है तो लागत बहुत कम पड़ती है।
   वैयक्तिक विक्रय की अधिक लागत निर्माता के लिए लाभप्रद ही रहती है। इसका कारण यह है कि इसमें क्रेता से व्यक्तिगत सम्पर्क होता है जो धीरे-धीरे सामाजिक प्रेरणा में परिवर्तित हो जाता है जिससे आदेश अपने आप या थोड़े प्रयास से मिलते रहते हैं। साथ ही उसकी आपत्तियाँ, व बाजारु स्थिति तथा स्थान की प्रतियोगिता का भी पता लगता रहता है।
2. **सही समय में उपस्थित होने में कठिनाई** – वैयक्तिक विक्रय की दूसरी कठिनाई यह है कि इसमें विक्रयकर्ता ग्राहक के पास उस समय नही पहुँच पाता जबकि ग्राहक क्रय सम्बन्धी निर्णय लेने की स्थिति में हो। साथ ही क्रय आदेश लेने के लिए विक्रयकर्ता को कई बार सम्भावित ग्राहक से मुलाकात करनी पड़ती है। वास्तव में इस दोष में कुछ सत्यता दिखाई देती है, लेकिन इसके लिए यह सुझाव दिया जाता है कि निर्माता को विभिन्न साधनों से विज्ञापन इस प्रकार करना चाहिए कि उसका विज्ञापन सदा ही उसके सामने रहे और आदेश देते समय उसकी याद बनी रहें।
3. **अच्छे विक्रयकर्ता का अभाव** – वैयक्तिक विक्रय का एक दोष यह भी है कि अच्छे विक्रेताओं का प्रत्येक देश में अभाव है, इस बात में सत्यता दिखायी नही देती है। वास्तव में अच्छे विक्रेता जन्मजात पैदा नही होते बल्कि उचित प्रशिक्षण देकर उन्हें तैयार किया जाता है।

वैयक्तिक विक्रय की विशेषताएँ

वैयक्तिक विक्रय के प्रमुख लक्षण एवं विशेषताएँ निम्नलिखित हैं -

1. **वैयक्तिक सम्बन्ध** – वैयक्तिक विक्रय क्रेता एवं विक्रेता के मध्य एक प्रत्यक्ष, सजीव एवं सामने-सामने रहकर किया जाने वाला अन्तर्व्यवहार है। इसमें विक्रयकर्ता व्यक्तिगत रूप से विशिष्ट ग्राहक की क्रय आवश्यकताओं का अध्ययन करके उन्हें सन्तुष्ट करने का प्रयास करता है। यह व्यक्तिगत सेवा के सिद्धान्त पर आधारित है। इसमें प्रत्येक सम्भावित ग्राहक के विशिष्ट क्रय-लक्ष्यों, आकांक्षाओं, हितों, माँगों व इच्छाओं को ध्यान में रखकर व्यवहार किया जाता है। निजी अनुरोध एवं वैयक्तिक भेंट इसका सार तत्त्व है। बर्नार्ड लेस्टर के अनुसार, 'यह एक

मस्तिष्क से दूसरे मस्तिष्क तक सम्पर्क ’’ है। इसमें समस्त विक्रय व्यवहार वैयक्तिक आधार पर सम्पादित होता है।

2. **दीर्घकालीन सम्बन्ध** - वैयक्तिक विक्रय निजी सम्बन्धों पर आधारित होने के कारण दीर्घजीवी होता है। विक्रेता एवं ग्राहक के मध्य धीरे-धीरे मैत्रीपूर्ण, सामाजिक एवं अन्तवैयक्तिक सम्बन्ध विकसित हो जाते हैं। वैयक्तिक विक्रय के द्वारा विक्रेता एवं ग्राहक के 'विक्रय सम्बन्ध ’ शीघ्र ही गहन मैत्री में परिवर्तित होने लगते हैं। फलत: विक्रेता अपने नियमित ग्राहकों के हितों एवं इच्छाओं पर ध्यान देने लगता है। एडमंड स्पेन्सर के अनुसार, ‘वैयक्तिक विक्रय सामाजिक प्रवर्धन एवं विकास का साधन है। यह विक्रय के वास्तविक दर्शको परिलक्षित करता है। साइमन मजारो के अनुसार ‘विक्रय का आशय ग्राहक के साथ जुड़ जाना है और वैयक्तिक विक्रय में सदा अपने ग्राहकों के साथ दीर्घकालीन सम्बन्ध बनाने पर जोर दिया जाता है। ’’
3. **द्वि-मार्गीय सम्प्रेषण** – वैयक्तिक विक्रय एक द्वि-मार्गीय सम्प्रेषण अन्तर्व्यवहार है। यह विक्रेता एवं क्रेता के मध्य उनकी भावनाओं, प्रतिक्रियाओं, इच्छाओं, सूचनाओं व विभिन्न तथ्यों का पारस्परिक विनियम है। विक्रेता ग्राहक की आवश्यकताओं, अभिवृत्तियों, आदतों, दृष्टिकोण, इच्छाओं को ध्यान में रखकर विक्रय व्यवहार करता है। वह ग्राहक की सन्तुष्टि के लिए विभिन्न प्रकार की वस्तुओं व उनके सम्बन्ध में अपने विचारों की अभिव्यक्ति करता है। किन्तु ग्राहक भी वस्तु एवं उसके विभिन्न पहलुओं के सम्बन्ध में अपनी आपत्तियाँ, शंकायें, सन्देह, प्रश्न आदि अभिव्यक्त कर सकता है जिनका समाधान विक्रेता द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।
4. **सृजनात्मक कला** – वैयक्तिक विक्रय विक्रय-लक्ष्यों की पूर्ति के लिए नये ग्राहकों, नयी माँग, नये बाजारों व नये विक्रय-व्यवहारों के सृजन की कला है। विक्रेता नई-नई आवश्यकताओं व माँग को विकसित करता है। वह अपने विक्रय कौशल के द्वारा विक्रय क्षेत्र में नयी सम्भावनाओं का पता लगाता है तथा नई-नई वस्तुओं के उत्पादन के लिए तकनीकी विशेषज्ञों को परामर्श देता है। वैयक्तिक विक्रय के द्वारा माँग में वृद्धि करके रोजगार, आय, बचत आदि का सृजन किया जा सकता है।
5. **प्रोत्साहनकारी नेतृत्व** – वैयक्तिक विक्रय मूल रूप से एक नेतृत्व कार्य है। इसमें विक्रेता अपने विचारों, दृष्टिकोण व मत से ग्राहक के व्यवहार को प्रभावित करके क्रय निर्णय की ओर निर्देशित करता है। व्यक्तियों के व्यवहार को निर्देशित एवं प्रभावित करना ही नेतृत्व है। ’’वैयक्तिक विक्रय ग्राहकों को क्रय निर्णय में सहायता एवं प्रोत्साहन प्रदान करना है। इसमें विक्रेता ग्राहक पर क्रय के लिए कोई दबाव नहीं डालता, वरन् उसे स्वतन्त्रतापूर्वक एवं प्रसन्नतापूर्वक क्रय निर्णय लेने के लिए उत्प्रेरित करता है। इसके लिए वह ग्राहक के मन में वस्तु खरीदने की इच्छा जाग्रत करता है तथा वस्तु की उपयोगिता को प्रकट करके क्रय के प्रति रुचि पैदा करता है।
6. **वस्तु के बारे में ज्ञान** – वैयक्तिक विक्रय केवल वस्तु बेचने का लक्ष्य ही नहीं रखता हे, वरन् इसमें ग्राहक को वस्तुओं के विभिन्न पहलुओं, इसकी उपयोग विधि आदि की भी जानकारी प्रदान की जाती है। औद्योगिक क्षेत्र में विक्रेता एक तकनीकी विशेषज्ञ होता है। वह ग्राहकों को वस्तु के तकनीकी पहलुओं के बारे में विस्तृत जानकारी प्रदान करता है।

7. **विचार, दृष्टिकोण अथवा उपयोगिता का विक्रय, वस्तु का नहीं** – गहनता से देखा जाये तो वैयक्तिक विक्रय में वस्तुओं का नहीं, उपयोगिता का विक्रय किया जाता है। विक्रेता वस्तु की उपयोगिता के बारे में अपने दृष्टिकोण एवं विचारों से ग्राहक के मस्तिष्क को प्रभावित करता है ताकि वह विक्रेता द्वारा बेची जा रही वस्तु को खरीद सके। हेनरी फोर्ड के अनुसार, "वैयक्तिक विक्रय एक मानवीय मस्तिष्क से दूसरे मानवीय मस्तिष्क को प्रभावित करने में अन्तर्निहित है।" वैयक्तिक विक्रय में विक्रेता वार्तालाप के दौरान पहले भावी ग्राहक के दृष्टिकोण से सोचना प्रारम्भ करता है, धीरे-धीरे ग्राहक के मन में अपने विचारों का हस्तान्तरण कर देता है।
8. **सम्भावी ग्राहक** – वैयक्तिक विक्रय में स्थायी एवं नियमित ग्राहकों के अतिरिक्त नये सम्भाव्य ग्राहकों की खोज भी सम्मिलित है। विक्रेता अपने व्यवसाय में सदैव नये ग्राहकों को जोड़ता हे। इसके लिए वह नये-नये ग्राहकों की खोज करता है, उनके सम्बन्ध में विभिन्न सूचनायें एकत्रित करता है, उनकी 'ग्राहक-योग्यता' की जाँच करता है, उनकी सम्बन्ध में विभिन्न सूचनायें एकत्रित करता है, उनकी आवश्यकता का निर्धारण करता है तथा संस्था के उत्पादों के साथ सम्भावी ग्राहक की आवश्यकताओं को सम्बद्ध करता है।
9. **सामाजिक चरित्र** – वैयक्तिक विक्रय विक्रेता एवं ग्राहक के मध्य होने वाले सामाजिक व्यवहार का प्रारूप है। यह दोनों वर्गों की क्रियाओं, व्यवहारों, भावनाओं, प्रेरणाओं का अन्तर्योग है। फलस्वरूप, वैयक्तिक विक्रय सामाजिक प्रकृति की क्रिया एवं व्यवहार है।
10. **विपणन कार्यक्रम का एक अंग** – विपणन एक व्यापक क्षेत्र एवं क्रिया है। विपणन कार्यक्रम के कई तत्व हैं, जैसे – कीमत निर्धारण, विज्ञापन, उत्पाद विकास एवं अनुसन्धान, विपणन वितरण श्रृंखलायें आदि। वैयक्तिक विक्रय भी विपणन का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है जो विपणन कार्यक्रम के क्रियान्वयन में सहयोग प्रदान करता है।
11. **सार्वभौमिकता** – व्यापक अर्थ में वैयक्तिक विक्रय एक सार्वभौमिक क्रिया है। इसका प्रयोग जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में किया जाता है। एक अर्थ में हम सभी विक्रेता हैं और जाने-अनजाने अपने व्यवहार में हम वैयक्तिक विक्रय का प्रयोग करते रहते हैं। समाज में चाहे राजनेता हो या वकील, निर्माता हो या श्रमिक, अध्यापक हो या धर्म गुरु, डॉक्टर हो या प्रशासक, सभी अपने-अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए दूसरों के विचारों को प्रभावित करने का प्रयास करते हैं। वैयक्तिक विक्रय व्यापक अर्थ में एक स्वाभाविक मानवीय गुण है जो सर्वत्र पाया जाता है।
12. **अन्य विशेषताएँ** – वैयक्तिक विक्रय के कुछ अन्य लक्षण इस प्रकार हैं :
    - यह एक व्यक्तिगत सेवा एवं सहायता की प्रक्रिया है।
    - यह ग्राहक को आकर्षित करने तथा उसकी इच्छा को प्रभावी माँग में परिवर्तित करने की कला है।
    - यह ग्राहकों को उनकी क्रय समस्याओं का हल प्रदान करती है।
    - यह क्रेता एवं विक्रेता के परस्पर लाभ एवं सन्तोष पर निर्भर होती है।
    - वैयक्तिक विक्रय विज्ञापन से भिन्न है।

- यह 'ग्राहक-प्रधान' विपणन दृष्टिकोण है।
- वैयक्तिक विक्रय का अधिकांश निष्पादन 'विक्रयकला' के माध्यम से किया जाता है।

1.7. व्यक्तिगत बिक्री की रणनीति बिक्री और बेचने का कार्य

प्राय: वस्तुओं के बेचने के लिए सभी विक्रयकर्ताओं के द्वारा एक ही रास्ता अपनाया जाता है; जैसे, भावी ग्राहकों का पता लगाना व उनके बारे में जानकारी प्राप्त करना, फिर उनसे सम्पर्क स्थापित करना व वस्तु को उनके समक्ष प्रस्तुत करना, वस्तु की अच्छाइयां, आदि को बताना और यदि ग्राहकों द्वारा आपत्तियां उठायी जाती हैं तो उनका समाधान कर विक्रय करना। यदि वस्तु का विक्रय करना उस समय सम्भव न हो तो बाद में उसका अनुगमन करना। यह सभी विक्रय प्रक्रिया की अवस्थाएं हे। यह अवस्थाएं एक-दूसरे से अन्तर्व्याप्त हैं। एडविन चार्ल्स ग्रीफ ने अपनी पुस्तक में विक्रय प्रक्रिया की पांच अवस्थाएं बतायी हैं : 1. ध्यानाकर्षण, 2. रुचि उत्पन्न करना, 3. इच्छा उत्पन्न करना, 4. विश्वास व 5. समापन, जबकि हरबर्ट एन. केसन ने अपनी पुस्तक में छ: अवस्थाएं बताई हैं 1. स्वागत, 2. पूछताछ, 3. प्रदर्शन, 4. चयन, 5. संवर्द्धन 6. प्रशंसा एवं विदाई। संक्षेप में विक्रय प्रक्रिया की निम्न अवस्थाएं हो सकती हैं :

1. **पूर्वेक्षण करना** – विक्रय प्रक्रिया की यह सबसे पहली अवस्था है। इनमें विक्रयकर्ता यह पता लगाता है कि उस वस्तु की आवश्यकता किन व्यक्तियों व संस्थाओं को है तथा वे उस वस्तु को खरीदने में समर्थ हैं अथवा नहीं। इसका कारण यह है कि बिना आवश्यकता वाले या असमर्थ व्यक्तियों की ओर अधिक प्रयास करने में बिक्री में वृद्धि नहीं होती है, विक्रयकर्ता का समय व परिश्रम व्यर्थ ही जाता है तथा उसको कोई आर्थिक लाभ भी नहीं हाता है। भावी ग्राहकों का पता किस प्रकार लगाया जा सकता है? इसके लिए एक विक्रयकर्ता को कुछ प्रयत्न करना पड़ेगा। उदाहरण के लिए, यदि किसी कार विक्रेता को भावी क्रेताओं का पता लगाना है तो वह यह तीन कार्य कर सकता है : 1. सबसे पहले क्षेत्रीय परिवहन अधिकारी के कार्यालय जाकर वहां का रजिस्ट्रेशन रजिस्टर देखकर यह पता लगा सकता है कि किन-किन व्यक्तियों के पास पुराने मॉडल क कारें हैं ; 2. दूसरे किसी वर्कशॉप में जाकर भी यह पता लगाया जा सकता है कि पुरानी कारें किन-किन के पास हैं और वे मरम्मत पर कितना व्यय कर रहे हैं? 3. इसी प्रकार स्वयं विक्रयकर्ता का मालिक भी अपना रिकॉर्ड देखकर पता लगा सकता है कि उसके कितने ग्राहकों के पास पुरानी कारें हैं। इसी प्रकार उन व्यक्तियों से भी सम्पर्क किया जा सकता है जिनको नौकरियों में पदोन्नति हुई है या जिनको लॉटरी, आदि का इनाम मिला है। जीवन बीमा की पॉलिसियों के बेचो वाले विक्रयकर्ता जिन्हें भारत में बीमा एजेण्ट कहते हैं अपने जीवन बीमा व्यापार की वृद्धि के लिए सम्भावित ग्राहकों को ढूंढ़ते हैं, जैसे नौकरी वाले या पेशेवर व्यक्ति – डॉक्टर, वकील, इन्जीनियर, चार्टर्ड एकाउण्टेण्ट, आदि – कभी-कभी यह लोग अपनी निगाह उन व्यक्तियों पर भी केन्द्रित कर देते हैं जिनको मकान बनवाने के लिए धन की आवश्यकता है क्योंकि भारतीय जीवन बीमा निगम अपने बीमादारों का मकान बनवाने के लिए ऋण भी देता है।
2. **पूर्व-पहुंच** – जब एक विक्रयकर्ता को भावी ग्राहकों के नामों का पता लग जाता है तो विक्रय क्रिया की दूसरी अवस्था पूर्व-पहुंच की आती है। इससे क्रेता के सम्बन्ध में साधारणतया उसकी आयु,

आय, धर्म, शिक्षा, परिवार, मैत्री सम्बन्ध, अभिरुचि, राजनीतिक दृष्टिकोण, योजनाएं, आदि के सम्बन्ध में सूचनाएं एकत्रित की जाती हैं। इन सूचनाओं के एकत्रित कर लेने से विक्रयकर्ता अपनी भेंट में कम-से-कम गलतियां करता है और उसको विक्रय करने में सफलता मिलने की सम्भावनाएं अधिक हो जाती हैं।

3. **पहुंच एवं प्रस्तुतीकरण** – सम्भावित क्रेता का पता लगाकर व उसके बारे में सूचना प्राप्त कर लेने के बाद इस बात की आवश्यकता होती है कि उस तक कैसे पहुंचा जाए व वस्तु का प्रस्तुतीकरण किया जाए। क्रेता तक पहुंचने के कई तरीके हैं, जिनमें प्रमुख निम्न चार हैं : *(i)* **सन्दर्भ पहुंचकर** - जब एक विक्रयकर्ता अपने किसी पुराने ग्राहक से कोई पत्र या नोट सम्भावित ग्राहक के नाम लिखा लेता है और फिर उसको लेकर वह उस सम्भावित ग्राहक के पास जाता है तो ऐसी पहुंच सन्दर्भ पहुंच कहलाती है। साधारणतया यह देखा जाता है कि सन्तुष्ट ग्राहकों को ऐसा पत्र लिखने में कोई संकोच नहीं होता है, जबकि यह नोट विक्रयकर्ताओं के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है। उनके लिए इसके आधार पर अपनी मित्रता सम्भावित ग्राहक से बढ़ाने में आसानी रहती है और आदेश मिलने में कठिनाई का अनुभव नहीं होता है। *(ii)* **परिचय पहुंच** – जब विक्रयकर्ता के पास सन्दर्भ के लिए कोई पत्र नहीं होता तो वह इस तरीके को अपनाता है। इसमें विक्रयकर्ता सम्भावित ग्राहक का अभिवादन कर अपना परिचय देता है और बताता है कि उसका क्या नाम है? वह किस कम्पनी का कार्य करता है और किन वस्तुओं के लिए वह उनके पास आया है? *(iii)* **वस्तु पहुंच** - इसमें विक्रयकर्ता ग्राहक के पास पहुंचते ही अपनी वस्तु उसके सामने रख देता है जिससे ग्राहक विक्रयकर्ता की भावना को समझ लेता है। यदि ग्राहक थोड़ी-सी भी रुचि उस वस्तु के बारे में दिखाता है तो विक्रयकर्ता उसको समझाकर आदेश लेने का प्रयत्न करता है। यदि स्थिति इसके विपरीत होती है तो क्रेता अपनी अनिच्छा व्यक्त कर क्षमा-याचना कर लेता है। ऐसी पहुंच उस समय अच्छी मानी जाती है, जब वस्तु मनमोहक हो।

(iv) **उपभोक्ता लाभ-पहुंच** – यह तरीका आमतौर पर विक्रयकर्ताओं द्वारा अपनाया जाता है। इसमें वस्तु से उपभोक्ता को क्या लाभ हैं इसकी जानकारी विक्रयकर्ता द्वारा सर्वप्रथम उपभोक्ता को दी जाती है और इससे उसको अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न किया जाता है।

4. **अभिनय** – इसमें ग्राहक के समक्ष एक नाटक जैसा अभिनय किया जाता है जिससे कि ग्राहक उसकी उपयोगिता से प्रभावित हो और वस्तु को क्रय करने के लिए लालायित हो। साधारणतया यह देखा जाता है कि जीवन बीमा का उद्देश्य भावी जोखिम को सहन करना है जबकि बीमा कराने वाला बीमादार ऐसा नहीं सोचता। वह तो अपने आप को एक निश्चित काल तक जीवित रहने की बात करता है। ऐसे ही समय विक्रयकर्ता अपना नाटक खेलता है और अपने थैले में कुछ अखबारों के कटिंग निकालकर सामने रखता है और बताता है कि विवाहित नवयुवक की दुर्घटना में मृत्यु किस प्रकार उसके परिवार को अन्धकार में डाल देती है। यदि इस नवयुवक ने अपना जीवन बीमा करा लिया होता तो परिवार वालों को इतना धन अवश्य मिल जाता कि वे अपने जीवन को उचित रूप से चला सकते। नाटक का अभिनय करते समय इस बात का ध्यान अवश्य रखा जाए कि ऐसे नाटक का ग्राहक पर विपरीत प्रभाव न पड़े। नाटक ग्राहक की रुचि के अनुरूप ही खेला जाए।

5. **ट्रायल समाप्ति** – जब विक्रयकर्ता अपनी बात कह चुका हो तथा वस्तु का प्रदर्शन पूर्ण कर लेता है तो फिर उसको यह पता लगाना होता है कि ग्राहक ने वस्तु खरीदने का निर्णय लिया है अथवा नहीं। कुछ ग्राहक ऐसे होते हैं, जो स्वयं बता दिया देते है कि अब आप ऑर्डर बुक कर सकते हैं, लेकिन कुछ ग्राहक ऐसे होते हैं जो अपनी प्रतिक्रिया का पता नहीं लगने देते। ऐसी स्थिति में विक्रयकर्ता को ऐसे प्रश्न करने पड़ते हैं जिनसे यह पता लग सके कि ग्राहक क्रय करने को तैयार है अथवा नहीं जैसे– आपको कौन-सा मॉडल पसन्द है? आप किस रंग को पसन्द करेंगे? आपके लिए कितनी इकाइयां पैक करा दूं? आप वस्तु साथ ले जाएंगे या घर भिजवा दी जाए? आदि। यदि ग्राहक वस्तुओं को क्रय करने की स्थिति में है तो वह सकारात्मक उत्तर देगा अन्यथा नकारात्मक। जब ग्राहक नकारात्मक उत्तर दे तब उससे वस्तु के सम्बन्ध में आपत्तियां आमन्त्रित करनी चाहिए।
6. **आपत्तियों का निवरण** – जब ग्राहक वस्तु क्रय करने की स्थिति में नही होता या उसको वस्तु पसन्द नहीं आती तो वह विभिन्न प्रकार की आपत्तियां उठा देता है। एक अच्छे एवं कुशल विक्रयकर्ता को आपत्तियों से घबड़ाता नहीं चाहिए बल्कि अपनी विक्रय कला का प्रदर्शन इन आपत्तियों को दूर करने में करना चाहिए जिससे कि ग्राहक नैतिक दृष्टि से दब जाए तथा क्रय करने का आदेश दे सकें।

   ग्राहक की आपत्तियां कई प्रकार की होती हैं। कुछ आपत्तियां ऐसी होती हैं जिनको स्पष्ट आपत्तियां कहते हैं। यह वे आपत्तियां हैं जिन्हें ग्राहक स्पष्ट रूप से विक्रयकर्ता का बता देता है; जैसे, मूल्य आपत्ति, वस्तु आपत्ति, सेवा आपत्ति, आवश्यकता आपत्ति, आदि। ऐसी आपत्तियों के निवारण का अवसर विक्रयकर्ता को मिलता है और वह उनको अपने ढंग से दूर करके ग्राहक को क्रय करने के लिए विवश कर सकता है और भविष्य के लिए उचित सेवा प्रदान करने का आश्वासन दे सकता है, लेकिन कुछ आपत्तियां ऐसी होती हैं जो छिपी हुई होती हैं जिनको ग्राहक स्पषट् नहीं करता है। वह वस्तु को नही खरीदने के लिए ही आपत्तियां उठा रहा है। ऐसी आपत्तियां टालमटोल वाली आपत्तियां कहलाती हैं; जैसे, "कुछ समय सोचने के लिए दीजिए", "दो माह बाद मिलिए", "अगले माह के पहले सप्ताह तक इन्तजार कीजिए।" यदि विक्रयकर्ता ऐसी आपत्तियों को मान ले तो उसका अधिकांश समय ऐसे ही ग्राहकों में निकल जाएगा और वह उचित मात्रा में व्यवसाय नहीं कर पाएगा। अत: आवश्यकता इस बात की है कि ग्राहकों को निश्चय की स्थिति में आने के लिए विवश करना चाहिए जिससे दुबारा जाने की आवश्यकता प्रतीत न हो, लेकिन कुछ परिस्थितियों में विक्रयकर्ता को धैर्य रखना वांछनीय होगा। प्रत्येक दशा में विक्रयकर्ता को अधिक-से-अधिक प्रयास करना चाहिए।
7. **समाप्ति या समापन** – एक विक्रयकर्ता द्वारा सम्भावित ग्राहक का पता लगाना, उस तक पहुंचना, वस्तु को प्रस्तुत करना, आपत्तियों का निवारण करना, आदि इस उद्देश्य से किया जाता है कि ग्राहक वस्तु को क्रय करने का आदेश दे दे और इस प्रकार विक्रय समाप्ति कर दी जाए। यदि किसी प्रकार विक्रयकर्ता ग्राहक को सन्तुष्ट नहीं कर पाता तो वह आदेश भी प्राप्त नहीं कर सकता है तो उसका सारा श्रम बेकार चला जाता है।

   वस्तु के क्रय करने की इच्छा बहुत बार ग्राहक स्पष्ट रूप से बता देता है, लेकिन कभी-कभी ग्राहक अपनी ओर से क्रय करने की बात नहीं करता है। ऐसी स्थिति में विक्रयकर्ता को स्वयं ही विक्रय

समाप्ति की ओर अग्रसर होना चाहिए और इसके लिए समापन तकनीक काम में लानी चाहिए। समापन तकनीक के अनुसार विक्रयकर्ता यह मानकर चलता है कि ग्राहक वस्तु क्रय करने के लिए तैयार है तथा वह इस प्रकार प्रश्न करता है कि आपकी संस्था का नाम क्या है? माल भेजने के लिए क्या पता है? कितनी यूनिट माल भेज दें? हमारा इन्जीनियर किस तारीख को आपकी फैक्टरी पर पहुंच जाए? आदि।

8. **अनुगमन** – विक्रय समाप्ति के पश्चात् इस बात की आवश्यकता होती है कि ग्राहक का अनुगमन किया जाय। यह अनुगमन विभिन्न कारणों से किया जाता है जिसमें दो कारण प्रमुख हैं – प्रथम, ग्राहक को वस्तु उसके आदेश के अनुसार मिल जाए। इसके लिए विक्रयकर्ता को चाहिए कि माल की डिलीवरी स्वयं अपने सामने कराये या डिलीवरी के बाद ग्राहक से अवश्य मिल ले जिससे कि ग्राहक की असुविधाओं का पता लग जाए व ग्राहक यह महसूस करने लगे कि विक्रयकर्ता अपनी जिम्मेदारी के प्रति सजग है। द्वितीय, ग्राहक सन्तुष्ट रहेगा तो भविष्य में आदेश मिलने की सम्भावना बनी रहेगी। ऐसा होने से विक्रयकर्ता का अधिक समय बर्बाद नहीं होगा और उसकी आय में कोई कमी नहीं होगी।

   समय-समय पर ग्राहकों से मिलते रहना अनुगमन नीति के अन्तर्गत आता है। ऐसा करते रहने से ग्राहक दूसरे विक्रेताओं की ओर आकर्षित नहीं होने पाता। यदि विक्रयकर्ता से ग्राहक सन्तुष्ट है तो मिलने के समय भी उसको कुछ न कुछ आदेश अवश्य ही दे देता है।

   एक विक्रयकर्ता के लिए निष्ठावान ग्राहकों का वर्ग बनाना बहुत लाभप्रद है। यह अनुगमन से ही सम्भव है। यदि ग्राहक को एक बार उचित सेवा दी जाती है तो वह ग्राहक सदा ही प्रसन्न रहता है और भविष्य में भी अन्य आवश्यकताओं के समय ध्यान रखता है।

1.8. सारांश

आज व्यवसाय में विक्रय कार्य का महत्व अत्यन्त बढ़ गया है । किसी भी संस्था में, चाहे वह छोटी हो या बड़ी, विक्रय विभाग उसका प्राण होता है। विक्रय कार्यों व विक्रय कर्मचारियों का प्रभावी नियोजन एवं नियन्त्रण करने के लिये विक्रय प्रबन्धक की भूमिका भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गई है। विक्रय प्रबन्ध आधुनिक प्रबन्ध व्यवस्था का सबसे अधिक महत्वपूर्ण अंग बनता जा रहा है। विक्रय प्रबन्ध का आशय विक्रय लक्ष्यों - विक्रय, लाभ एवं विकास की प्राप्ति क लिए विक्रय शक्ति एवं विक्रय क्रियाओं का नियोजन, निर्देशन, नियन्त्रण एवं अभिप्रेरण करने से है। विक्रय प्रबन्ध मूलत: विक्रय दल एवं विक्रयण का प्रबन्ध है। यह सामान्य प्रबन्ध का वह भाग हे जो व्यक्तिगत विक्रय के नियोजन, संगठन, अभिप्रेरण तथा नियन्त्रण से सम्बन्धित है तथा जिसमें विक्रयकर्ताओं की भर्ती, चुनाव, प्रशिक्षण, कार्य-निर्धारण, पारिश्रमिक भुगतान, निरीक्षण, नियन्त्रण आदि कार्य भी सम्मिलित हैं। वैयक्तिक विक्रय वस्तुओं व सेवाओं की बिक्री का एक अति विशिष्ट ढंग हे जिसमें विक्रेता ग्राहक के सम्मुख वैयक्तिक रूप स उपस्थित रहकर विक्रय वार्ता करता है तथा उसकी आवश्यकताओं, आकांक्षाओं व क्रय समस्याओं का अध्ययन करते हुए उपयुक्त वस्तु अथवा सेवा उपलब्ध करवाता है। यह विक्रेता एवं ग्राहक के मध्य आमने-सामने रहकर स्थापित किया गया विक्रय सम्बन्ध है। यह दोनों के मध्य एक मौखिक द्वि-मार्गीय सम्प्रेषण है। यह विक्रेता एवं ग्राहक के मध्य क्रय समस्या के समाधान

के लिए की जाने वाली एक अन्तवैयक्तिक क्रिया है जिसमें सामाजिक व्यवहार सम्मिलित होता है। संक्षेप में, वैयक्तिक विक्रय विक्रेता एवं सम्भावित ग्राहक के मध्य एक प्रत्यक्ष, वैयक्तिक एवं द्वि-पक्षीय अन्तर्व्यवहार, विक्रय प्रभाव एवं विक्रय वार्ता है जो सम्भावित बिक्री के उद्देश्य से की जाती है। इसमें विक्रेता 'विक्रयकला' के द्वारा माल के विक्रय का प्रयास करता है।

1.9. अभ्यासार्थ प्रश्न

1. विक्रय प्रबंध को परिभाषित कीजिए तथा इसके कार्यों व्याख्या कीजिए।
2. विक्रय प्रबंधक को कर्त्तव्यों एवं दायित्वों का वर्णन कीजिए।
3. विक्रय प्रबंध एवं विपणन प्रबंध में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
4. एक सफल विक्रय प्रबंधक के गुणों का उल्लेख कीजिए।
5. विक्रयकला से क्या आशय है?इसकी विशेषताओं एवं महत्व को समझाइए।
6. वैयक्तिक विक्रय से आप क्या समझते है?इसके लक्षणों का वर्णन कीजिए।
7. 'घैयक्तिक विक्रय उपयोगिता का विक्रय है, वस्तु का नही।''इस कथन को स्पष्ट कीजिए।
8. वैयक्तिक विक्रय का अर्थ समझाइए। विक्रय प्रक्रिया का विस्तार से वर्णन कीजिए।
9. वैयक्तिक विक्रय के लाभ-दोषों की व्याख्या कीजिए।
10. वैयक्तिक विक्रय रणनीति का वर्णन कीजिए।

1.10. संदर्भ ग्रंथ सूची

1. जैन. एस. सी., विपणन प्रबंधन, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2012
2. मालवीय अंजनी, विपणन प्रबंधन, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2012
3. Kotler Philip, Gary Armstrong, Principles Of Marketing, Prentice Hall Of India Pvt. Ltd, New Delhi, 2010
4. Bose S. Biplab, Marketing, Himalaya Publishing House, New Delhi, 2010.
5. सुधा जी. एस., विक्रय संवर्द्धन एवं विक्रय प्रबंध, रमेश बुक डिपो, जयपुर।

इकाई – 2 बिक्री प्रयास का आयोजन

इकाई की रूपरेखा

2.1. उद्देश्य
2.2. प्रस्तावना
2.3. विक्रय संगठन की विशेषताएँ
2.4. विक्रय संगठन के प्रकार
2.5. बिक्री संगठन
2.6. प्रभावी बिक्री कर्मचारी
2.7. बिक्री विभाग में संबंध
2.8. वितरण नेटवर्क संबंध
2.9. सारांश
2.10. अभ्यासार्थ प्रश्न
2.11. संदर्भ ग्रंथ सूची

2.1. उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात –

1. विक्रय संगठन के अर्थ, परिभाषाएँ, विशेषताएँ एवं उद्देश्य को समझ सकेंगे।
2. विक्रय संगठन के कार्य एवं इसके सिद्धांतों की जानकारी हो सकेंगी।
3. विक्रय संगठन को प्रभावित करने वाले तत्वों तथा विक्रय संगठन के विभिन्न प्रकारों को समझ सकेंगे।
4. प्रभावी बिक्री कर्मचारी का अर्थ, उनके प्रमुख गुणों, विक्रय विभाग के अन्य विभागों के साथ संबंध की जानकारी हो सकेंगी।
5. वितरण माध्यम का अर्थ, उनके कार्य, उनकी प्रणालियाँ तथा माध्यम संबंधी निर्णय की जानकारी हो सकेगी।

2.2 प्रस्तावना

विक्रय कार्यों, उद्देश्यों एवं दायित्वों के निष्पादन हेतु निर्मित व्यक्तियों एवं संसाधनों की व्यवस्थित एवं समन्वित प्रणाली को विक्रय संगठन कहा जाता है विक्रय संगठन व्यक्तियों का एक समूह है जो पूर्व-निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये विक्रय प्रबन्धक के नेतृत्व में कार्य करता है विक्रय संगठन के द्वारा न्यूनतम लागत पर अधिकतम कुशलता के साथ विक्रय उद्देश्यों को प्राप्त किया जाता है। विक्रय संगठन के द्वारा न्यूनतम लागत पर अधिकतम कुशलता के साथ विक्रय उद्देश्यों को प्राप्त किया जाता है क्रिय संगठन की कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्न है –

सी. एल. बोलिंग (C. L. Bolling) के अनुसार , "विक्रय संगठन वह है जिसमें सभी विभागों के कार्यों का इस प्रकार आयोजन एवं समन्वय किया जाता है जिससे कि उत्पादित वस्तुओं को उपभोक्ताओं तक पहुँचाने में लक्ष्य की पूर्ति की जा सके। समस्त प्रयास इस प्रकार से प्रबन्धित एवं पर्यवेक्षित किये जाते है कि जिससे प्रत्येक कार्य वांछित ढंग से किया जा सके।''

स्टिल एवं कंडिफ (Still and cundiff) के अनुसार, "विक्रय संगठन संयुक्त प्रयासों का अनुकूलन बिन्दु तथा मानवीय सम्बन्धों का एक ढांचा है। यह गुणात्मक एवं परिमाणात्मक व्यक्तिगत विक्रय लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये संयुक्त रूप से प्रयास कर रहे व्यक्तियों का एक समूह है जिनके आपस में कुछ औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों प्रकार के सम्बन्ध होते है।'' इस प्रकार स्पष्ट है कि विक्रय संगठन विक्रय कार्यों में लगे हुए व्यक्तियों का समूह है जो विक्रय प्रबन्धक के निर्देशन में पूर्व-निर्धारित विक्रय लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये प्रयन्तशील होता है। समूह के सदस्यो के मध्य औपचारिक सम्बन्ध होते है तथा वे विक्रय लक्ष्यों को न्यूनतम लागत पर अधिकतम कुशलता के साथ पूरा करने का प्रयास करते है।

विक्रय संगठन की विशेषताएँ

एक विक्रय संगठन में निम्नलिखित विशेषताएँ पायी जाती है –

1. यह किसी संस्था के सम्पूर्ण संगठन का एक भाग है। जो कि विक्रय क्रियाओ के प्रबन्ध से सम्बन्धित होता है।
2. यह विक्रय कार्य में लगे व्यक्तियों का एक समूह है।
3. यह विक्रय से सम्बन्धित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु कार्य करता है।
4. विक्रय संगठन में लगे व्यक्तियों में परस्पर औपचारिक एवं अनौपचारिक सम्बन्ध होते है।
5. इस संगठन का मुख्य उद्देश्य विक्रय सम्बन्धी क्रियाओं को अधिकतम कार्यक्षमता के साथ पूरा करना होता है।
6. विक्रय कार्य में लगे व्यक्तियों के मध्य कर्तव्यों, उत्तरदायित्वों एवं अधिकारों का स्पष्ट विभाजन होता है।
7. इसमें समान प्रकार की क्रियाओं का समूहीकरण करके विभागों की स्थापना की जाती है।
8. विक्रय संगठन विक्रय प्रबन्धक के निर्देशन में कार्य करता है।

विक्रय संगठन के उद्देश्य

एक विक्रय संगठन के निम्नलिखित उद्देश्य हो सकते है –

1. विक्रय विभाग के लक्ष्यों को प्राप्त करना।
2. विक्रय योजनाओं एवं व्यूहरचनाओं को क्रियान्वित करना।
3. विक्रय कार्यों का बटँवारा करना।
4. अधिकारों एवं दायित्वों को निश्चित करना।
5. विक्रय के लिये आवश्यक साधनों एवं उपकरणों को एकत्रित करना।
6. विक्रय कर्मचारियों के मध्य उचित सम्प्रेषण स्थापित करना।

7. विक्रय कर्मचारियों का प्रभावी निरीक्षण, नियंत्रण एवं अभिप्रेरण करना।
8. विक्रय व्ययों एवं लागतो को न्यूनतम रखना।

2.3. विक्रय संगठन की विशेषताएँ

विक्रय संगठन के अनेक कार्य होते है जो निम्नवत है –

अ) प्रशासनिक कार्य – विक्रय संगठन के निम्नलिखित प्रशासनिक कार्य होते है –

1. **नियोजन सम्बन्धी कार्य**
   - विभिन्न विक्रय क्रियाओं के सम्बन्ध में योजना बनाना जैसे - विक्रय विभाग के आकार-प्रकार का निर्धारण, गोदाम, शाखा, कार्यालयों का निर्धारण आदि।
   - विक्रय नीतियों का निर्धारण करना जैसे – विज्ञापन नीति साख नीति, वितरण नीति, विक्रयकर्त्ताओं के चयन, प्रशिक्षण पारिश्रमिक की नीति, बाजार क्षेत्र नीति आदि।
   - शोध सम्बन्धी नियोजन एवं पूर्वानुमान करना जैसे – बाजार अनुसंधान, उत्पाद अनुसंधान, उपभोक्ता अनुसंधान आदि।
   - सूचनाओं एवं आँकड़ों का नियोजन करना जैसे – सांख्यिकीय तथ्यो का संग्रहण, वर्गीकरण एवं विश्लेषण आदि।
2. **उत्पाद सम्बन्धी नियोजन** – इससे सम्बन्धित निम्न कार्य है –
   - विक्रय की मात्रा के अनुसार उत्पादन की मात्रा का नियोजन।
   - उपभोक्ता की मांग, रुचि तथा बाजार में प्रचलित फैशन के अनुसार वस्तु की किस्म का निर्धारण।
   - नये उत्पाद के सम्बन्ध में निर्णय।
3. **पूँजी सम्बन्धी नियोजन** – इसके अन्तर्गत निम्न कार्य किये जाते है –
   - विक्रय बजट का निर्माण
   - विक्रय व्ययों का निर्धारण तथा अनुमान
   - विक्रय साख का नियोजन
   - कोषो का विनियोजन
4. **कार्यालय सम्बन्धी कार्य**
   - कार्यालय के स्थान तथा कार्यों का निर्धारण।
   - कार्य पद्धतियों का निर्धारण।
   - विक्रय गोष्ठियो एवं सभाओ का प्रबन्ध
   - विक्रय कर्मचारियों के विभिन्न कार्यों का नियोजन।

ब) विक्रय कर्मचारी सम्बन्धी कार्य – विक्रय कर्मचारियों के प्रबन्ध एवं प्रशासन के सम्बन्ध में विक्रय संगठन निम्न कार्य करता है –

- विक्रय कर्मचारियों तथा अधिकारियों में कार्य वितरण
- विक्रयकर्ताओं की भर्ती, नियुक्ति, साक्षात्कार, लिखित परीक्षाओं तथा मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का आयोजन
- विक्रयकर्ताओं को प्रशिक्षण
- विक्रेताओं के पदोन्नति, स्थानान्तरण आदि की व्यवस्था।
- विक्रेताओं को विभिन्न प्रोत्साहन जैसे – बोनस, कमीशन, भत्तो आदि का भुगतान
- विक्रेताओं को पारिश्रमिक देने सम्बन्धी कार्य।
- विक्रेताओं पर नियत्रंण सम्बन्धी कार्य जैसे – विक्रय कोटा, विक्रय क्षेत्र आदि की व्यवस्था।
- विक्रेताओं के अभिलेख तैयार करना।
- विक्रेताओं की समस्याओं का समाधान।

स) संचालकीय कार्य – विक्रय संगठन के संचालकीय कार्य निम्न है –

1. **विपणन सम्बन्धी कार्य** – इसके अन्तर्गत निम्न कार्य आते है –

- विक्रय एजेन्सियो से सम्पर्क करना तथा उनका निर्धारण करना।
- विक्रय संवर्द्धन एवं विज्ञापन में समन्वय
- विक्रय कर्मचारियों के कार्यों मे समन्वय
- प्रतिस्पर्धियों के उत्पादों एवं व्यूहरचना का अध्ययन

2. **वितरण सम्बन्धी कार्य** – इसके अन्तर्गत निम्न कार्यों को शामिल किया जाता है –

- वितरण बिन्दु निर्धारित करना
- वाहनो की व्यवस्था करना
- गोदामों की व्यवस्था करना
- उत्पाद की सुरक्षित पैकिंग करना।

3) **व्यापारिक कार्य** – इसके अन्तर्गत निम्न कार्य सम्मिलित होते है –

- वस्तु एवं सेवाओं का उचित मूल्य निर्धारित करना
- विक्रय क्षेत्रो का विभाजन करना
- व्यापारियो से सम्बन्ध स्थापित करना
- तकनीकी सेवाओ, मरम्मत आदि की व्यवस्था करना।

4) **विज्ञापन सम्बन्धी कार्य** – इससे सम्बन्धित निम्नलिखित कार्य है –

- विज्ञापन एजेन्सी का चयन करना
- विज्ञापन साधनों तथा उपयुक्त माध्यमों का चुनाव करना
- विज्ञापन प्रति तैयार करना
- विज्ञापन विभाग, विज्ञापन एजेन्सी तथा विक्रयकर्त्ताओं में समन्वय बनाये रखना।

5) **विक्रय-संवर्द्धन सम्बन्धी कार्य** – इसके अन्तर्गत –

- उपभोक्ता संवर्द्धन विधियों की प्रभावशीलता बनाये रखना
- मध्यस्थो को विभिन्न सहायताएँ प्रदान करना
- व्यापारिक प्रर्दशनियों का आयोजन करना
- विज्ञापन एवं विक्रय संवर्द्धन के कार्यों में संतुलन स्थापित करना

6) **जन-सम्पर्क सम्बन्धी कार्य** – इसमें निम्न कार्य सम्मिलित किये जाते है -

- ग्राहको की शिकायतो पर ध्यान देना
- विभिन्न उद्योगो तथा व्यापारिक संस्थाओं से सर्म्पक बनाये रखना।
- विक्रय सेवाओं में सुधार करना।

7) **निर्यात सम्बन्धी कार्य** – इसमें निम्न कार्य सम्मिलित किये जाते है –

- विदेशी बाजार की खोज करना
- विदेशो से प्राप्त आदेशो की पूर्ति करना
- विदेशो में विज्ञापन एवं विक्रय प्रसार करना
- विदेशी प्रतिस्पर्धा, उपभोक्ता की रुचि आदि के बारे में अनुसंधान करना।

2.4 विक्रय संगठन के प्रकार

एक विक्रय संगठन के निम्नलिखित सिद्धान्त है –

1. **उद्देश्य का सिद्धान्त** - विक्रय संगठन के उद्देश्य संस्था के उद्देश्य के अनुरूप होने चाहिये। विक्रय संगठन सम्पूर्ण संगठन का एक भाग होता है, अत: इसके उद्देश्य संस्था के मूल उद्देश्यों के अनुरूप होने चाहिये।
2. **अनुरुपता का सिद्धान्त** - इस सिद्धान्त के अनुसार विक्रय विभाग के समस्त कर्मचारियों के अधिकार को इस तरह से निर्धारित किया जाना चाहिये जिससे आपस में विवाद न हो।
3. **विशिष्टीकरण का सिद्धान्त** – इस सिद्धान्त के अनुसार किसी व्यक्ति को कोई एक विशेष कार्य का दायित्व ही सौंपा जाना चाहिये। इससे एक कार्य विशेष में विशिष्ट योग्यता होने पर व्यक्ति की कार्य-क्षमता बढ़ जाती है।
4. **समन्वय का सिद्धान्त** – विक्रय संगठन के विभिन्न कर्मचारियों तथा संस्था के अन्य कर्मचारियों में समन्वय स्थापित होना चाहिये। समन्वय के अभाव में संगठन सुचारू रूप से कार्य नही कर सकता है।

5. **उत्तरदायित्व का सिद्धान्त** - संगठन में वरिष्ठ अधिकारियों को अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के कार्यो के प्रति पूर्ण उत्तरदायी रहना चाहिये।
6. **नियंत्रण के विस्तार का सिद्धान्त** – नियंत्रण के विस्तार से आशय अधीनस्थ कर्मचारियों की उस संख्या से है जिसे एक अधिकारी सफलतापूर्वक नियंत्रित कर सकता है विक्रय संगठन में भी एक वरिष्ठ अधिकारी के अन्तर्गत अधीनस्थो की संख्या उतनी ही होनी चाहिये जिस पर वह प्रभावशाली नियंत्रण रख सके।
7. **व्याख्या का सिद्धान्त** – इस सिद्धान्त के अनुसार विक्रय संगठन के प्रत्येक पद पर कार्य करने वाले व्यक्ति के अधिकार एवं कर्तव्य स्पष्ट रूप से परिभाषित कर देने चाहिये जिससे अनावश्यक टकराव उत्पन्न न हो सके।
8. **आदेश का सौपानिक सिद्धान्त** – इस सिद्धान्त के अनुसार एक विक्रय संगठन में अधिकारियों एवं सहायकों के औपचारिक सम्बन्ध स्पष्ट होने चाहिये कि कौन व्यक्ति किसके अधीन कार्य करेगा।
9. **आदेश की एकरुपता का सिद्धान्त** - इस सिद्धान्त के अनुसार एक व्यक्ति को एक ही अधिकारी से आदेश मिलने चाहिये। एक से अधिक अधिकारियो से आदेश मिलने पर न तो उनका ठीक से पालन होगा और न ही अनुशासन रहेगा।
10. **अधिकार एवं दायित्व का सिद्धान्त** - इसके अन्तर्गत संगठन के कर्मचारियों तथा अधिकारियों का उत्तरदायित्व सौंपने के साथ-साथ अधिकार भी सौंपने चाहिये। अधिकारों से रहित दायित्व को कर्मचारी पूरा नही कर सकता तथा दायित्व रहित अधिकारों का दुरुपयोग हो सकता है।

विभिन्न विद्वानों ने विक्रय संगठन की संरचना को निर्धारित करने वाले विभिन्न घटक बताये है उनमें से प्रमुख घटक निम्नलिखित है।

1. **वस्तु का स्वभाव** – वस्तु के स्वभाव का भी संगठन संरचना पर प्रभाव पड़ता है। यदि वस्तु औद्योगिक उपयोग की है तो उसके ग्राहकों की संख्या भी कम होगी। इसके विपरीत स्थिति मे वस्तु सामान्य उपयोगी होने पर उसके क्रेताओं की संख्या अधिक होगी जिससे बड़ा संगठन बनाना आवश्यक होगा।
2. **इकाई का आकार** – विक्रय संगठन की संरचना इकाई के आकार पर भी निर्भर करती है यदि संख्या बड़ी है तो उसका उत्पादन एवं विक्रय भी बड़े स्तर का होगा तथा छोटी संस्था का विक्रय भी कम होगा।
3. **विपणन योजना एवं क्षेत्र** – वस्तु का विपणन क्षेत्र अंतरराष्ट्रीय, राष्ट्रीय, प्रान्तीय या स्थानीय हो सकता है। क्षेत्र जितना बड़ा होगा उसके लिए विक्रय संगठन संरचना भी उतनी ही बड़ी करनी होगी।
4. **विक्रय नीति** – संस्था की विक्रय नीति संगठन संरचना को प्रभावित करती है। यदि संस्था अपने सारे माल को एकाकी विक्रय प्रतिनिधी के माध्यम से बेचती है तो छोटे विक्रय संगठन से ही कार्य सुविधा से हो सकता है। इसके विपरीत यदि निर्माता अपनी दुकान के माध्यम से माल बेचता है तो बड़े संगठन की संरचना करनी होगी जैसे – टाटा ग्रुप की मिल, केलिकों मिल, मफत लाल ग्रुप की मिल आदि।
5. **योग्य कर्मचारियों की उपलब्धिता** – यदि संस्था के पास प्रशिक्षित कर्मचारी उपलब्ध होते है तो संगठन का आकार बढ़ाया जा सकता है। अनुभवी एवं योग्य कर्मचारी निर्णय लेने तथा अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने में कुशल होते हैं।

6. **उत्पादो की संख्या** – यदि संस्था के द्वारा विक्रय की जाने वाली वस्तुओं की संख्या बहुत अधिक है तो विक्रय संगठन की संरचना भी बड़ी होगी, जबकि उत्पादों की संख्या एक या दो होने पर विक्रय संगठन अपेक्षाकृत छोटा होगा।
7. **उत्पाद का मूल्य** – वस्तु का मूल्य संरचना को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण घटक है। यदि उत्पाद का मूल्य कम हो तो उसकी मांग और उपभोक्ताओं की संख्या ज्यादा होगी। फलस्वरूप ऐसे उत्पाद के विक्रय के लिए एक बड़े विक्रय संगठन की आवश्यकता होगी। लेकिन वस्तु का मूल्य अधिक होने पर जैसे– मोटर कार, कूलर, रेफ्रीजरेटर, टीवी आदि का होता है, अपेक्षाकृत एक छोटे विक्रय संगठन के द्वारा भी व्यवसाय का संचालन किया जा सकता है।
8. **बाजार की प्रकृति** – यदि किसी वस्तु का बाजार के वल स्थानीय होता है उत्पादित वस्तु की खपत बहुत कम होगी और उसका विक्रय संगठन छोटा होगा। किन्तु यदि निर्मित वस्तु की मांग राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर होती है तो ऐसे उपक्रम का विक्रय संगठन विस्तृत होगा।
9. **वित्तीय साधन** – जिन संस्थाओं के पास वित्तीय साधन पर्याप्त होते हैं वे अपने माल का विक्रय सीधे उपभोक्ता को करने की भी व्यवस्था कर सकते है जिसके लिए एक बड़े संगठन का निर्माण करना होगा। वित्तीय साधन कम होने पर विक्रय मध्यस्थों के द्वारा किये जाने पर अपेक्षाकृत छोटा संगठन भी पर्याप्त होगा।

2.5. बिक्री संगठन

विक्रय संगठन के प्रमुख प्रकार निम्नलिखित है –

I. **रेखा या लम्बवत विक्रय संगठन** – रेखा विक्रय संगठन में विक्रय सम्बन्धी कार्यों के सभी अधिकार एवं दायित्व सर्वोच्च अधिकारी में केन्द्रित होते है तथा अधिकार अधीनस्थों को क्रमशः सौपे जाते है। सर्वोच्च अधिकारी को उद्योगो में कई नामों से बुलाया जाता है जैसे – विक्रय संचालक, विक्रय महाप्रबन्धक, विक्रय प्रबन्धक, विक्रयाध्यक्ष, विक्रय अधिकारी आदि। विक्रय संगठन में अधिकार सत्ता सर्वोच्च अधिकारी से निम्नस्थ कर्मचारियों तक सीधी रेखा में नीचे की ओर प्रवाहित होती है। इस संगठन में निर्देश तथा आदेश ऊपर से नीचे को ओर तथा सूचनायें, शिकायते, निवेदन, सुझाव आदि नीचे से ऊपर की ओर चलते है। इसमें प्रत्येक कर्मचारी तथा अधिकारी अपने निकटतम अधिकारी से आदेश-निर्देश प्राप्त करता है और अपने कार्यों की रिर्पोट उसी को देता है। इस प्रकार प्रत्येक कर्मचारी अपने से ऊपर वाले के प्रति उत्तरदायी होता है।

विशेषताएँ –

रेखा संगठन की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित है –

1. यह संगठन का प्राचीनतम प्रारूप है।
2. इसमें अधिकारियों और अधीनस्थों के बीच लम्बवत संबन्ध होते है।
3. इसमें आदेश और अधिकार रेखाबद्ध रूप से ऊपर या नीचे की ओर क्रमशः प्रवाहित होते है।
4. अन्तिम दायित्व एवं अधिकार सर्वोच्च विक्रय अधिकारी के पास केंद्रित होते है।
5. आदेश-निर्देश एक ही अधिकारी से प्राप्त होते हैं।

6. प्रत्येक अधिकारी निकटतम अधिकारी से आदेश प्राप्त करता है।

II. **रेखा एवं कर्मचारी विक्रय संगठन** – विपणन एवं विक्रय क्रियाओं में वृद्धि हो जाने पर संस्था का आकार वृहद होने लगता है तथा अनेक विक्रय संबंधी समस्याओं के जटिल हो जाने पर रेखा विक्रय संगठन अनुपयुक्त सिद्ध होने लगता है। उच्च विक्रय अधिकारी नियोजन स्तर पर कुछ विशेषज्ञों की सहायता अनुभव करने लगता है जो कि विपणन के विभिन्न क्षेत्र में विशिष्ट ज्ञान रखते हो। रेखा व कर्मचारी विक्रय संगठन वह संगठन संरचना है जिसमें सर्वोच्च विक्रय अधिकारी स्वयं के पास अधिकार सत्ता एवं दायित्व को केंद्रित रखते हुए विभिन्न विक्रय कार्यों में आवश्यक परामर्श, सुझाव, चिंतन अनुसंधान योजना निर्माण आदि के रूप में सहयोग देने के लिए विशेषज्ञों की नियुक्ति करता है।

विशेषताएँ – रेखा एवं कर्मचारी विक्रय संगठन की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

1. इसमें अधिकार सत्ता का प्रवाह सर्वोच्च विक्रय अधिकारी से अधीनस्थों की निम्नतम कड़ी तक क्रमश: रेखाबद्ध रूप में होता है।
2. विक्रय निर्णयों एवं योजनाओं के निर्माण, क्रियान्वयन एवं समन्वय के लिए सर्वोच्च अधिकारी ही उत्तरदायी होता है।
3. इस संगठन में विशेषज्ञों की नियुक्ति सलाहकारों के रूप में होती है जो विभिन्न विक्रय रेखा अधिकारी एवं सर्वोच्च विक्रय अधिकारी को आवश्यक परामर्श देते हैं।
4. विक्रय कार्यों में विशेषज्ञों की भूमिका परामर्शकारी होती है, वे क्रियान्वयन एवं निष्पादन के लिए उत्तरदायी नही होते।
5. विक्रय रेखा प्रबन्धक विशेषज्ञों के परामर्श को मानने के लिए बाध्य नही होते है। आवश्यक समझने पर सलाह को स्वीकार कर लेते है।

III. **क्रियात्मक विक्रय संगठन** – विक्रय संगठन के इस प्रारूप में क्रियात्मक विशेषज्ञ रेखा – अधिकारी की स्थिति में कार्य करते है तथा उन्हें अपने विभाग में सम्बन्धित कार्यों के लिए विक्रयकर्ताओं को आदेश देने का अधिकार होता है। इस प्रारूप में विक्रय कार्य को छोटे-छोटे उप-कार्यों में बांट कर उसका निष्पादन करवाने के लिए एक विशेषज्ञ प्रबन्धक नियुक्त किया जाता है। इस विशेषज्ञ को अपने कार्यक्षेत्र के संबंध में सभी अधिकार होते है तथा वह सम्बन्धित कार्यों के लिए आदेश-निर्देश दे सकता है। अपने आदेश-निर्देशो के परिणामों के लिए ये विशेषज्ञ प्रबन्धक अपने उच्चधिकारियों के प्रति उत्तरदायी होते है।

विशेषताएँ –

क्रियात्मक विक्रय संगठन की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

1. सम्पूर्ण विक्रय कार्य को छोटे-छोटे उपभागों में बांटकर उनके निष्पादन का दायित्व विशेषज्ञ प्रबन्धकों को सौप दिया जाता है।
2. क्रियात्मक विशेषज्ञों को अपने विभाग से संबंधित कार्यों के लिए प्रत्यक्ष रूप से आदेश-निर्देश देने का अधिकार होता है।
3. प्रत्येक विशेषज्ञ का कार्यक्षेत्र निश्चित होता है तथा वह अपने कार्य क्षेत्र के संबंध में आदेश-निर्देश दे सकता है।

4. प्रत्येक विक्रयकर्ता अपने कार्य की रिपोर्ट सम्बन्धित विशेषज्ञ को ही देता है।

IV. **समिति विक्रय संगठन** – समिति विक्रय संगठन की स्थापना प्राय: नीति निर्धारण अथवा योजना निर्माण के लिए नही किया जाता है वरन् इसे विभिन्न विक्रय समस्याओं पर सिफारिशे प्रस्तुत करने, योजना पर पुर्नविचार करने, परामर्श देने, क्रियात्मक निर्णय लेने, नीतियों की समीक्षा करने, बजट बनाने व अन्य विक्रय मामलों पर विचार करने आदि के लिए बनाई जाती है। विक्रय विभाग में अनेक समितियाँ गठित की जाती है, जैसे – क्षेत्रीय विक्रय समिति, मर्केडाइजिंग समिति, विज्ञापन एवं विक्रय प्रसार समिति, ग्राहक परिवेदना समिति, विक्रय प्रशिक्षण समिति, विक्रय बजट समिति आदि।

विशेषताएँ – समिति विक्रय संगठन की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

1. समिति विक्रय संगठन किसी कार्य अथवा योजना के सामूहिक निर्धारण का ढ़ंग है जो सामूहिक दायित्वों को जन्म देता है।
2. यह मूलभूत संगठनात्मक प्रारूप नही है, वरन् एक पूरक व्यवस्था है।
3. विभिन्न विक्रय कार्यो के नियोजन एवं निर्णय के लिए अलग-अलग समितियाँ गठित की जा सकती है।
4. समितियों के सुझाव का क्रियान्वयन रेखा अधिकारियों के माध्यम से किया जाता है।
5. समितियों के दूसरे विभागो अथवा बाह्य विशेषज्ञों को भी सम्मिलित किया जाता है।
6. समिति संगठन में निर्णय बहुमत से लिए जाते हैं।

2.6. प्रभावी बिक्री कर्मचारी

एक अच्छा विक्रेता कमजोर संस्था के लिए माल बेच सकता है किन्तु एक अच्छी संस्था के लिए कमजोर विक्रेता को माल बेचते नही सुना है। इससे स्पष्ट होता है कि अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से विक्रेता हल्की किस्म की वस्तुओं को बेचने में सफल हो जाता है।

एक समय था जब विक्रेता को लुटेरा, धोखेबाज, झूठ बोलने वाला समझा जाता था। विक्रेता की सफलता का ध्येय भी क्रेता का अधिक से अधिक शोषण करना था। लेकिन विक्रेता ने समय के साथ अपने सामाजिक दायित्वों को समझा तथा व्यवसाय में सफलता प्राप्त करने के लिए अच्छे व्यक्तिगत गुणों का सहारा लिया जिससे उसे आज अनेक सम्मानजनक शब्दों से जाना जाता है; जैसे – क्षेत्र प्रतिनिधि, व्यापारिक परामर्शदाता, बाजार विशेषज्ञ, सेवा प्रतिनिधि आदि। अत: विक्रेता वह व्यक्ति होता है जो उस कला का सृजन करता है जिसकी जड़े प्राकृतिक प्रवृत्ति और विक्रय कला की अद्भुत शक्ति में पायी जाती है।

क्या सफल विक्रयकर्त्ता पैदा होते हैं, बनाये नही जाते

इस संबंध में दोनों प्रकार के मत विद्यमान हैं।

1. **विक्रयकर्त्ता पैदा होते हैं** – जिनका मत है कि विक्रयकर्त्ता पैदा होते हैं उनकी यह मान्यता होती है कि विक्रय कार्य के लिए कुछ जन्मजात गुणों की आवश्यकता होती है। उनके अनुसार सफल विक्रयकर्त्ताओं के लिए आकर्षक व्यक्तित्व, आक्रामक प्रवृत्ति, मित्रवत् व्यवहार, वाकपटुता, धैर्य एवं सहिष्णुता, प्रखर बुद्धि तीव्र स्मरण शक्ति, आत्मविश्वास आदि गुणों का होना जरुरी है जो किसी व्यक्ति में जन्म से ही होता है इसके अतिरिक्त कुछ लोगों में जन्म से ही विक्रय कार्य में रुचि होती है। जन्म से

मिले गुण विक्रेता के सफलता का कारण बनते है तथा बिना प्रशिक्षण के ही ये व्यक्ति एक संगीतकार, कलाकार की भाँति विक्रय कार्य में दक्ष होते है। अत: विक्रेताओं को शिक्षा-प्रशिक्षण के द्वारा बनाया नही जाता है वे जन्म जात प्रतिभा सम्पन्न होते है।

2. **विक्रयकर्त्ता बनाये जा सकते हैं** – दूसरी विचारधारा यह है कि व्यक्तियों को उचित शिक्षा, प्रशिक्षण व ज्ञान प्रदान कर अच्छा विक्रयकर्त्ता बनाया जा सकता है। एक सामान्य व्यक्ति को जिसमें जन्म से कोई योग्यता नही होती तथा विक्रयकला के कोई गुण नही होते उनकों निरन्तर प्रशिक्षण, अभ्यास और सही वातावरण देकर सफल विक्रयकर्त्ता बनाया जा सकता है। कई व्यक्तियों की सीखने की लगन, रुचि, परिश्रम, अभ्यास की क्षमता इतनी अधिक होती है कि वे कठिन बात को भी सरलतापूर्वक समझ लेते हैं। इस विचारधारा के समर्थको का मत है कि व्यक्ति एक कच्चे मिट्टी के समान है जिसे कोई भी शक्ल दी जा सकती है। व्यक्ति में सीखने की क्षमता अनन्त होती है। वह अपने भीतर प्रयास करके किसी भी क्षमता को विकसित कर सकता है। यही बात पूर्णत: विक्रेताओं पर भी लागू होती है। उचित वातावरण प्रदान करके व्यक्ति में परिवर्तन एवं सुधा की क्षमता विकसित की जा सकती है।

सफल विक्रेता के गुण

एक सफल विक्रेता में बिल्ली की सी उत्सुकता, कवि के समान चातुर्य, गंगाजल के समान पवित्रता, शिशु की भाँति मैत्री, फुटबाल की खिलाड़ी की भांति सक्रियता तथा स्त्री की भांति पतिव्रता एवं धैर्य होना चाहिए। अन्य शब्दों में ये कहा जा सकता है कि विक्रेता में विभिन्न स्थितियों में कार्य करने हेतु अनेक गुणो का समावेश होना चाहिए। एक अध्ययन में विक्रयकर्ताओं के निम्नलिखित गुण महत्वपूर्ण माने गये हैं –

1. वह विक्रय क्षेत्र में विशिष्ट ज्ञान एवं योग्यता रखता हो।
2. वह अपने विक्रय कार्य में उच्च नैतिक मापदण्डों व आदर्शों का पालन करता हो।
3. वह अपने कार्य में पूर्णत: दक्ष हो।
4. उसका विक्रय ज्ञान एवं अध्ययन गहन एवं पूर्ण हो।
5. अपने उत्तरदायित्वों के प्रति सजग हो।
6. उसे विक्रय क्षेत्र में पर्याप्त अनुभव हो तथा सदैव नई तकनीकी, नई खोजो, नये साहित्य का जिज्ञासु रहता हो।
7. वह अपने पेशे, कार्य एवं संस्था के लिए निष्ठावान हो। तथा अपने आत्मसम्मान एवं स्वतंत्रता की रक्षा करता हो।
8. वह जानता हो कि विक्रय का आशय सेवा करना है।

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से सफल विक्रेता के गुणों को निम्न प्रमुख शीर्षकों बांटा जाता है।

I. शारीरिक गुण

शारीरिक दृष्टि से एक सफल विक्रेता में निम्नलिखित गुण होने चाहिए –

1. **उत्तम स्वास्थ्य** - विक्रेता का स्वास्थ्य उत्तम होना चाहिए। स्वास्थ्य ठीक न होने पर वह अपने कर्तव्यों का निर्वाह ठीक प्रकार से नही कर सकता है। अनेक बार स्वास्थ्य खराब होने पर हीनता की भावना आ जाती है।

2. **कार्य शक्ति** – विक्रेता में कार्य करने की पर्याप्त शक्ति होनी चाहिए। दुकान पर या घूमने पर दोनों दशा में आठ-दस घण्टे तक कार्य करना पड़ता है। कभी-कभी लगातार ग्राहकों का आगमन लगा रहता है। अत: उसमें अपने कार्य को करने की पर्याप्त शक्ति होनी चाहिए।
3. **सुदृश्य** – एक विक्रेता को सुदृढ़ होना चाहिए। अच्छा दिखने वाला विक्रेता ग्राहकों को आकर्षित करता है उसकी पोशाक का भी उसके ऊपर प्रभाव पड़ता है। विक्रेता की सफलता के लिए उसका सुदृश्य होना जरुरी है।
4. **प्रसन्न मुखमुद्रा** – विक्रेता को प्रसन्न तथा हँसमुख होना चाहिए। बहुत चिड़चिड़ापन और गम्भीर मुद्रा ग्राहकों को निरुत्साहित करता है। ग्राहकों से बातचीत करते समय उसको प्रसन्न रहना चाहिए। विक्रय कर्ता प्रसन्न होता है तो ग्राहक भी प्रसन्न होते है।
5. **पोशाक** – विक्रेता की पोशाक भी उपयुक्त होनी चाहिए। खराब पोशाक उसके व्यक्तित्व को दबाते है। अत: विक्रेता को पोशाक साफ सुधरी तथा आकर्षक होनी चाहिए।
6. **स्फूर्ति** – विक्रेता स्फूर्ति वाला होना चाहिए। ग्राहकों पर तुरन्त ध्यान देने वाला तथा उनकी वांछित वस्तु को शीघ्रता से निकालने वाला हो। उसमें ग्राहकों का समय भी कम लगता है तथा ज्यादा ग्राहकों से सम्पर्क किया जा सकता है। आलसी विक्रेता से ग्राहक प्रभावित नही होते।
7. **मधुर वाणी** – विक्रेता की वाणी मधुर एवं स्पष्ट होनी चाहिए। विक्रेता की बात करने की शैली भी स्वाभाविक बातचीत करने वाली होनी चाहिए। मधुर वाणी एवं स्वाभाविक भाषा-शैली होने से ग्राहक बातचीत में आनन्द होता है।

II. मानसिक गुण

मानसिक दृष्टि से एक सफल विक्रेता में निम्नलिखित गुण होने चाहिए –

1. **कल्पनाशील** – विक्रेता में कल्पना शक्ति होनी चाहिए। ग्राहक के दुकान में प्रवेश करते ही ग्राहक की बात समझने तथा उपयुक्त वस्तु बताने हेतु कल्पना शक्ति होनी चाहिए। ग्राहक की आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति का अनुमान लगाना भी कल्पना शक्ति के आधार पर होता है।
2. **दूरदर्शी** – विक्रेता को दूरदर्शी होना चाहिए। ग्राहक द्वारा की जाने वाली आलोचनाओं का पहले से ही बुद्धिमानी से खण्डन कर देना चाहिए। यदि क्रेता कोई वस्तु खरीदता है और क्रेता को उस वस्तु के प्रयोग में कठिनाइयां आती है तो उसे पहले से ही क्रेता को सावधान कर देना चाहिए।
3. **निर्णय क्षमता** – विक्रेता को निर्णय लेने की क्षमता होनी चाहिए। किस स्थिति में ग्राहक के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए, कई वैकल्पिक वस्तुओं में कौन सी वस्तु ग्राहक को अधिक उपयुक्त होगी, ग्राहक को उधार विक्रय किया जाए या नही आदि महत्वपूर्ण निर्णय तुरन्त लेने होते हैं।
4. **सतर्क** – एक विक्रेता को हमेशा सर्तक रहना चाहिये। ग्राहक के आते ही उस पर ध्यान देना चाहिए तथा उसके विचारो के प्रति सतर्क रहना चाहिए जिससे ग्राहक के दृष्टिकोण को समझा जा सके तथा उसकी शंकाओं का समाधान हो सके। कुछ निम्न स्तर के लोग ग्राहक बनकर माल चुराने आ जाते है उससे बचने के लिए भी सतर्क रहना आवश्यक है।
5. **आशावादी** – विक्रेता को आशावादी होना चाहिए। बहुत से ग्राहक माल देखने में ज्यादे समय लेते है तथा माल भी नही खरीदते। किसी-किसी दिन कम विक्रय होता है जिससे निराश होने की

आवश्यकता नही है। अत: उसे आशावादी तथा ग्राहकों के साथ सम्मानपूर्ण व्यवहार करते रहना चाहिए।

6. **आत्मविश्वास** – विक्रेता में आत्मविश्वास का गुण होना चाहिए। अपने व्यवसाय व अपने कथन तथा माल के प्रति पूर्ण विश्वास होना चाहिए तथा ग्राहको से सम्पर्क करते समय पूर्ण आत्मविश्वास के साथ व्यवहार करना चाहिए।
7. **परिपक्वता** – विक्रेता के विचारों में परिपक्वता होनी चाहिए। गैर जिम्मेदारीपूर्ण व्यवहार उसे नही करनी चाहिए। किसी ग्राहक की आलोचना से उत्तेजित होना तथा चिढ़ना ठीक नही होता। उसे संजीदगी से व्यवहार करना चाहिए।
8. **निर्भरता** – विक्रेता का आचरण एवं कथन ऐसा होना चाहिए कि जिस पर ग्राहक सरलता से निर्भर होकर कार्य कर सके। क्रेता सदैव ऐसे विक्रेता का स्वागत करते है जिस पर वे निश्चित होकर निर्भर हो सकते हैं।

III. सामाजिक गुण

सामाजिक दृष्टि से विक्रेता में निम्नलिखित गुण होने चाहिए।

1. **सहयोगी** – विक्रेता को सफलता प्राप्त करने के लिए सहयोगी होना चाहिए। अत: अपने उच्च अधिकारियों, नियोक्ताओं, सहयोगियों एवं ग्राहकों के साथ सहयोग करना चाहिए। इससे उसे अन्य पक्षों का भी पूर्ण सहयोग प्राप्त होता है तथा विक्रय कार्य में अधिक सफलता प्राप्त होती है।
2. **मिलनसार** – विक्रेता को अपने नये पुराने ग्राहको से मिलने में रुचि लेनी चाहिए। परिस्थिति के अनुसार ग्राहकों के सुख-दुख के अवसरों पर मिलकर संवेदना तथा बधाइयाँ देनी चाहिए। इससे उसके और ग्राहक के मध्य घनिष्ठता बढ़ती है तथा स्थायी ग्राहक बनाने में सफलता मिलती है।
3. **ईर्ष्या-द्वेष से रहित** – विक्रेता को ईर्ष्या-द्वेष से रहित होना चाहिए। अपने किसी ग्राहक के द्वारा अन्य स्थान से माल खरीदने पर उसे ईर्ष्या और घृणा नही करना चाहिये। अन्य विक्रेताओं के साथ भी द्वेष पूर्ण व्यवहार नही अपनाना चाहिये। अनावश्यक एक दूसरे की आलोचना एवं बुराई से ग्राहको पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
4. **ईमानदार** – विक्रेता कपट द्वारा ग्राहकों को ढगने वाला नही होना चाहिए। उसे पूर्ण इमानदारी तथा सत्यता के साथ अपने विचार प्रकट करना चाहिए। ग्राहको द्वारा प्रकट किये विचारो के आधार पर उपयुक्त वस्तु देनी चाहिए तथा उचित मूल्य लेना चाहिए।
5. **सामाजिक दायित्व की भावना** – विक्रेता में सामाजिक दायित्व की भावना होनी चाहिए। उन्हें अच्छी किस्म की वस्तुयें रखनी चाहिए, सही कीमत लेनी चाहिए तथा ग्राहक का शोषण करने की भावना से कृत्रिम भाव उत्पन्न नही करना चाहिए।
6. **अच्छा चरित्र** – विक्रेता का चरित्र अच्छा होना चाहिए। बालक, स्त्रियाँ, वृद्ध आदि विभिन्न प्रकार के ग्राहक उसके पास आते है। उसे उनके साथ सही व्यवहार करना चाहिए तथा उससे अनुचित लाभ लेने का प्रयास नही करना चाहिए। महिलाओं के साथ व्यवहार करने में शालीनता एवं शिष्टता का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

7. **सामाजिक भद्रता** – शिष्ट एवं शालीन विक्रेता अपने साक्षात्कार में सामाजिक मर्यादाओं, प्रथाओं वं नियमो का पूर्ण ध्यान रखता है।
8. **सन्तुलन** – विक्रेता को ग्राहक के साथ हर प्रकार का सन्तुलन बनाये रखना चाहिए। चाहे वह शारीरिक हो, मानसिक तथा भावात्मक हो। संतुलित विक्रेता ग्राहक की आलोचनाओं व टीका-टिप्पणियों, प्रशंसा निराश और सफलता से जरा भी प्रभावित नही होते हैं।

IV. व्यवसायिक गुण

व्यवसायिक दृष्टि से एक सफल विक्रेता में निम्नलिखित गुण होने चाहिए –

1. **शिक्षित एवं प्रशिक्षित** – विक्रेता को शिक्षित तथा निर्णय लेने में प्रशिक्षित होना चाहिए। शिक्षित होने से उसमें समस्याओं को समझने एवं निर्णय लेने में सुविधा होती है। विक्रय-कला के सिद्धान्त एवं नियमों की जानकारी होने से वह विक्रय कार्य में सफलता प्राप्त करता है।
2. **अभिरुचि** – विक्रेता में अपने कार्य के प्रति स्वभाविक अभिरुचि होनी चाहिए। विक्रय करने की नैसर्गिक प्रवृत्ति होने से वह ग्राहकों में अधिक रुचि लेता है तथा प्रसन्नता से उनके साथ व्यवहार करता है। इस गुण के न होने पर अपने कार्य के प्रति वह उदासीन रहता है।
3. **व्यापारिक कानून का ज्ञान** – विक्रेता में व्यवसाय से संबंधित नियमों का ज्ञान भी होना चाहिए। वस्तु विक्रय-अधिनियम, साझेदारी, कर निर्धारण, विनिमय साध्य विलेख व विक्रय और अधिनियम आदि की जानकारी होनी चाहिए। इससे वह अधिनियम संबंधी त्रुटियां नही करता है।
4. **लेखा कर्म का ज्ञान** – विक्रेता को सामान्य हिसाब-किताब तथा लेखा-विधि का ज्ञान होना चाहिए। इससे उसे वस्तुओ का मूल्य लगाने तथा हिसाब रखने में सुविधा होती है।
5. **ग्राहकों का ज्ञान** – विक्रेता को व्यवसाय से संबंधित ग्राहको का भी पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। ग्राहको के स्वभाव, प्रकृति एवं उसके क्रय करने के उद्देश्य आदि का ज्ञान विक्रेता को अधिक विक्रय करने में सहायता करता है।

विक्रय योग्यता के कुछ विशिष्ट पहलू

विक्रेता के योग्यता एवं गुणों के संबंध में विशिष्ट पहलू निम्नलिखित है –

1. उत्पाद ज्ञान
2. प्रभावी सम्प्रेषण
3. ग्राहक संबंध

1. **उत्पाद ज्ञान** – विक्रेता को अपने व्यवसाय में अपने सभी उत्पादों का ज्ञान रखना चाहिए। ग्राहक उत्पादन के विभिन्न पहलुओं के बारे में प्रश्न उठा सकता है तथा विक्रेता के उत्तर से संतुष्ट न होने पर क्रय-विक्रय को टाल सकता है। अत: विक्रेता को उत्पाद एवं सम्बद्ध पहलुओ की निम्न जानकारी रखनी चाहिए।
   1. **किस्म** – वस्तु की किस्म ग्राहक के लिए बहुत महत्वपूर्ण होती है। वह विक्रेता से विभिन्न प्रकार का प्रश्न पूछकर किस्म की उपयुक्तता के बारे में पूर्णत: आश्वस्त होना चाहता है। अत: विक्रेता को किस्म का अच्छा ज्ञान होना चाहिये।

2. **आकृति** – उत्पाद में उसकी आकृति, रुपाकृति एवं विशिष्ट लक्षणों का भी अधिक महत्व होता है। वस्तुओं की आकृति कलात्मक एवं आकर्षक हो सकती है जो ग्राहको को अचानक मोहित कर देती है। विक्रेता प्रतियोगी उत्पादो के साथ तुलना करके अपने उत्पाद के विशेष गुणों पर बल दे सकता है।
3. **डिजाइन** – उत्पाद की भिन्नता, नवीनता एवं श्रेष्ठता को वस्तु की डिजाइन के आधार पर दर्शाया जा सकता है। वस्तु की डिजाइन विक्रेता के लिए एक महत्वपूर्ण उपयोगी उपकरण होता है। कई बार वस्तु की किस्म हल्की होने पर भी विक्रेता ग्राहक का ध्यान वस्तु की डिजाइन की ओर आकर्षित करा सकता है।
4. **रंग** – विक्रेता को रंगो के रसायन एवं समाजशास्त्र का अच्छा ज्ञान होना चाहिए। रंगो की भी एक भाषा एवं मनोविज्ञान होता है। कई रंग आँखो को प्रिय लगते है तथा मस्तिष्क में शान्ति उत्पन्न करते हैं।
5. **ब्रांड** – ब्रांड नाम, शब्द, प्रतीक अथवा डिजाइन या उनका संयोजन होता है। इसका उद्देश्य व्यवसायी की वस्तु की पहचान बनाना तथा उसको प्रतियोगियो की वस्तुओं से भिन्न बतलाना है। विक्रेता वस्तु की ब्रांड के आधार पर ग्राहक को सही वस्तु होने का विश्वास दिला सकता है। ब्रांड के द्वारा विक्रेता अधिक ऊँची कीमतों पर माल बेचने में सफल हो सकता है।
6. **पैकेज** – उत्पाद की पैकिंग विक्रय प्रक्रिया मे महत्वपूर्ण रूप से सहायक होती है। विक्रेता को वस्तु के पैकेजिंग के विभिन्न पहलुओं, जैसे – पैकेजिंग सामग्री, डिजाइन, लागत, पैकिंग खोलने की विधि, परीक्षण, वर्गीकरण आदि का पर्याप्त ज्ञान होना चाहिए।
7. **आश्वासन** – विक्रेता को चाहिए कि वह ग्राहक को उत्पाद से संबंधित विभिन्न आश्वासनों से अवगत कराये तथा आश्वासन एवं गारंटी कार्ड प्रदान करें। क्रय, प्रेरणा, फर्म की प्रतिष्ठा एवं ग्राहक-सन्तुष्टि की दृष्टि से आश्वासनों का अत्यन्त महत्व है।
8. **उत्पाद सेवा** – कुछ तकनीकी एवं इलेक्ट्रानिक उत्पादों के सम्बध में नियमित उत्पाद सेवा प्रदान करते रहने का अत्यन्त महत्व है। विक्रेता उत्पाद सेवा की विधि, आवृत्ति, स्थान आदि के बारे में ग्राहक को जानकारी दे सकता है।

2. **प्रभावी सम्प्रेषण** – जिस विक्रेता को प्रभावी वार्तालाप की कला नही आती है, वह एक सफल विक्रेता नही बन सकता है। विक्रेता अपने ज्ञान, विचारों एवं दृष्टिकोण को बातचीत के द्वारा ही प्रकट करता है। प्रभावशाली सम्प्रेषण के लिए विक्रेता को निम्न सिद्धान्तों का पालन करना चाहिए –
    1. **सजीव प्रस्तुतीकरण** – विक्रेता का सम्भाषण, यांत्रिक, उबाऊ व नीरस नही होना चाहिए। अपने सम्भाषण से विक्रेता को अपने वार्तालाप के दौरान शरीर भाषा का प्रभावी उपयोग करना चाहिए। वाणी के साथ-साथ चेहरे पर सदैव प्रसन्नता, सहयोग, अनुग्रह व सेवा की अभिव्यक्ति करने वाले भाव होने चाहिए। विक्रेता के सम्भाषण का लहजा व्यंगात्मक एवं उग्र नही होना चाहिए।
    2. **नियन्त्रण** – विक्रेता को युक्तिपूर्वक वार्तालाप के विषय एवं दिशा पर नियन्त्रण रखना चाहिए। उसे अनावश्यक विषयों पर चर्चा करने, विवाद में फसने, व्यावधान डालने, कुतर्क आदि प्रवृत्तियों से बचना चाहिए।

3. **भाषण शैली की गति** – विक्रेता की भाषण शैली प्रभावी एवं संतुलित होनी चाहिए। सम्भाषण की गति ग्राहक के विचारों तथा समझ की गति के अनुरूप होना चाहिए। धीमे विचारक के साथ यदि विक्रेता अपने सम्भाषण की गति तेज रखता है तो कई विचार ग्राहक के मस्तिष्क से बाहर ही रह जायेगें तथा उनका कोई लाभ नही होगा।
4. **बातचीत हो, भाषण नही** – विक्रेता को अपने विक्रय प्रस्तुतीकरण में बातचीत करनी चाहिए, भाषण नही देना चाहिए। ग्राहको को ऐसे विक्रेताओं से चिढ़ होती है जो व्याख्यान देते है। विक्रेता की बात एक सम्प्रेषण होनी चाहिए।
5. **गम्भीरता** – विक्रेता को अपनी बात को सदैव गम्भीरता के साथ प्रस्तुत करना चाहिए। उसे आपसी बातचीत को बहुत बढ़ा-चढ़ाकर एवं उतावले ढ़ंग से नही करना चाहिए। विक्रेता का प्रत्येक वाक्य सत्य, व्यवहारिक व विश्वास योग्य होना चाहिए। विक्रेता का कथन ग्राहक को सत्य प्रतीत होना चाहिए।
6. **विनम्र एवं स्पष्ट सम्भाषण** – विक्रेता को अपनी बात पूर्ण ईमानदारी के साथ रखनी चाहिए। विक्रेता की बातचीत का लक्ष्य ग्राहक को बेवकूफ बनाना नही होना चाहिए। ग्राहक विक्रेता का एक-एक शब्द नोट करता है, अत: बातचीत के दौरान विक्रेता को विनम्रता का पूर्ण ध्यान रखना चाहिए।
7. **द्वि-मार्गीय सम्प्रेषण** – विक्रेता को एक तरफा बातचीत को टालना चाहिए। ग्राहकों को प्रश्न करने, अपनी आपत्तियाँ प्रकट करने तथा अपने विचारों एवं राय को अभिव्यक्त करने का पूर्ण अवसर दिया जाना चाहिए। विक्रय प्रस्तुती तभी प्रभावी होती है जब वह द्विमार्गीय हो। पारस्परिक आदान-प्रदान विक्रेता के सम्प्रेषण का आधार होना चाहिए।
8. **शब्दो की पुनरावृत्ति नहीं** – विक्रेता को कई शब्दो का बार-बार प्रयोग नही करना चाहिए। शब्दो को बार-बार प्रयोग करने से सम्भाषण नीरस एवं अनुपयोगी हो जाता है। विक्रेता के पास शब्दों एवं भाषा का अथाह भण्डार होना चाहिए ताकि वह अपनी बात अधिक स्पष्टता के साथ कह सके।

3. **ग्राहक सम्बन्ध** – विक्रेता अपनी योग्यता के साथ-साथ विशिष्ट प्रकार के उपायों व क्रियाओं से ग्राहको के साथ अच्छे सम्बन्धों का निर्माण कर सकता है जो निम्नलिखित है –
   1. **पुराने ग्राहको से नियमित भेट** – विक्रेता को अपने पुराने एवं नियमित ग्राहको से हमेशा मिलते रहना चाहिए। ग्राहक की वस्तु के संबंध में समस्याओं, कठिनाइयों और सुझावों का पता किया जाना चाहिए, वस्तु के प्रयोग एवं अनुरक्षण के बारे में निर्देशो को दोहरा देना चाहिए। भेंट की दृष्टि से ग्राहको का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है –
      (i) सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्राहक
      (ii) महत्वपूर्ण ग्राहक
      (iii) कम लाभप्रद ग्राहक
      (iv) न्यूनतम महत्व के ग्राहक

भेट की आवृत्ति व ध्यान इनके अनुसार तय किया जा सकता है।

2. **आवर्तक व्यवसाय की रचना** – ‘आवर्ती व्यवसाय’ को बनाने में विक्रेता का बहुत योगदान होता है। विक्रेता को ऐसे ग्राहको का निर्माण करना चाहिए जो फर्म के स्थायी, नियमित और बार-बार क्रय

करने वाले ग्राहक हो। इसका आधार विक्रेता की ईमानदारी, निर्णय शक्ति, कल्पना शक्ति व ग्राहक सेवा होना चाहिए।

3. **विक्रय बाधाओं का निराकरण** – ग्राहक सम्बन्धों की सुदृढ़ता के लिए विक्रय के दौरान आने वाली बाधाओं को दूर करना आवश्यक होता है। ग्राहक द्वारा क्रय की जाने वाली मात्रा को भी तभी बढ़ाया जा सकता है जब ग्राहक सभी प्रकार के क्रय संदेहों से मुक्त हो।
4. **ग्राहक को 'निष्क्रिय' होने से रोकना** – ग्राहक की निष्क्रियता संबन्ध टूटने का संकेत होती है। कई कारणों से ग्राहक निष्क्रिय हो जाते है ओर सम्बन्ध टूट जाते है जैसे – भ्रम हो जाना, आदेश पूर्ति, बिलिंग में विक्रेता द्वारा त्रुटि होना, ग्राहक का पर्याप्त ध्यान नही देना, वस्तु में दोष होना आदि प्रभावी सम्प्रेषण के द्वारा ग्राहक को निष्क्रिय होने से रोका जा सकता है।
5. **ग्राहक का समर्थन प्राप्त करना** – व्यवसाय में ग्राहक भी विक्रेता, कम्पनी व उत्पाद के लिए सहायक सिद्ध हो सकता है। व्यवसाय में ग्राहक को एक सहायक अंग के रुप में देखा जाना चाहिए। ग्राहक के साथ मात्र परिचय नही वरन मैत्री का संबंध निर्मित किया जाना चाहिए।
6. **ग्राहक व्यवहार को प्रभावित करना** – विक्रयण ग्राहक के लिए एक विशिष्ट अनुभव होता है जिसके द्वारा वह नई नई बातों, व्यवहार व प्रवृत्तियों को ग्रहण करता है। विक्रेता अपने व्यवहार और आचरण से ग्राहक को शिक्षित एवं निर्देशित कर सकता है। विक्रेता का दृष्टिकोण, विचार शैली व सम्प्रेषणीयता भी ग्राहक संबन्धों में सुधार लाती है।
7. **ग्राहक शिकायतो को दूर करना** – यदि विक्रेता के कुछ ग्राहक असन्तुष्ट हो तो शिकायतो का प्रभावी ढंग से निपटारा करके ग्राहक संबंधो को सुदृढ़ किया जा सकता है। इसके लिए विक्रेता को निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिए।
   (i) विक्रेता को वस्तु तथा ग्राहको की आवश्यकताओं का पूर्ण ज्ञान रखना चाहिए। ताकि वह ग्राहक को सही वस्तु खरीदने में सहायता कर सके।
   (ii) विक्रेता को सुनिश्चित करना चाहिए कि क्रय जाने वाली वस्तु के संबंध में दोनों के विचार एक जैसे हो।
   (iii) विक्रेता को जहाँ जरुरत हो कम्पनी की नीतियों एवं कार्य पद्धतियों का उल्लेख करना चाहिए।
   (iv)विक्रेता को सदैव अपने द्वारा दिये गये आश्वासनों, गारंटी एवं वचनों को पूरा करना चाहिए।
8. **विभिन्न सेवायें प्रदान करना** – ग्राहक व्यवसाय संबन्धो की सुदृढ़ता का आधार ग्राहकों को दी जाने वाली सेवायें हो सकती हैं। ग्राहको के लिए प्रमुख सेवायें निम्नलिखित है।
   (i) कई तकनीकी वस्तुओ के सही संचालन व रख रखाव के बारें में उचित निर्देश प्रदान करना।
   (ii) कई वस्तुओं के संबन्ध में नियमित जाँच, मरम्मत, सफाई, धुलाई आदि की नि:शुल्क सुविधा देना।
   (iii) वस्तु के विभिन्न उपयोग सुझाना व अन्य उपयोगी जानकारी प्रदान करना।
   (iv) यंत्र स्थापना, पैकिंग, गृह खरीद, माल वापसी, साख, डाक, टेलिफोन एवं अन्य सामान्य सेवायें प्रदान करना।

(v) व्यापारी ग्राहकों को विक्रय, विज्ञापन व प्रबन्धक सहायत प्रदान करना।

ये सभी सेवाये प्रदान करके ग्राहक के साथ सम्बन्धों में सुधार लाया जा सकता है।

2.7. बिक्री विभाग में संबंध

एक व्यावसायिक संगठन में बहुत से विभाग होते है। उन सभी विभागों में एक-दूसरे के साथ सहयोग एवं सामंजस्य होना अनिवार्य है। विक्रय विभाग का अन्य विभागों के साथ निम्न संबंध है –

1. **उत्पादन विभाग के साथ सम्बन्ध** – एक विक्रय प्रबंधक का उत्पादन विभाग से संबंध इसलिये जरूरी होता है क्योंकि उत्पादन को मांग के अनुसार समायोजित किया जा सके। इतना ही नही कभी-कभी उपभोक्ताओं के आधार पर वस्तु में आवश्यक फेर-बदल करना पड़ता है। यदि उत्पादन विभाग उन परिवर्तनों को आवश्यकता के समय लागू नही करता है तो विक्रय विभाग बाजार का लाभ नहीं उठा सकता है। इसी तरह किसी वस्तु का निर्माण लागत उसकी विक्रय क्षमता को प्रभावित करती है। यदि लागत कम हो तो विक्रय प्रबंधक को माल सफलतापूर्वक बेचने का अवसर मिल जाता है। इसीलिये विक्रय विभाग तथा उत्पादन विभाग में पूर्ण सहयोग जरूरी है।
2. **क्रय विभाग के साथ संबंध** – क्रय विभाग कच्चे माल का क्रय उत्पादन विभाग द्वारा निर्धारित लक्ष्यों के आधार पर करता है तथा उत्पादन विभाग द्वारा लक्ष्य निर्धारण विक्रय विभाग की अनुमानित बिक्री के आधार पर किया जाता है। यदि इन तीनों विभागों में परस्पर सामंजस्य, सहयोग एवं सम्बन्ध न हो तो विक्रय विभाग को आवश्यकतानुसार उत्पादन नही मिल सकता है।
3. **वित्त विभाग के साथ संबंध** – वित्त विभाग द्वारा व्यवसाय से संबंधित खर्चो का लेखा-जोखा रखा जाता है। संस्थाएँ इन लेखों से लागत लेखे तैयार करती है। जिससे कि प्रति इकाई लागत की जानकारी हो सकें। वित्त विभाग के सहयोग के द्वारा स्थायी लागत और चल लागत निकालकर सम-विच्छेद बिन्दु ज्ञात किया जा सकता है तथा वस्तु की मांग को ध्यान में रखकर अधिकतम लाभ के लिये उत्पादन लक्ष्य निर्धारित किया जा सकता है। इसीलिये विक्रय विभाग का वित्त विभाग के साथ सहयोग आवश्यक है।
4. **संवर्द्धन एवं विपणन अनुसंधान विभागों के साथ संबंध** – विक्रय विभाग को संवर्द्धन एवं विपणन अनुसंधान विभागों का भी सहयोग आवश्यक है। संवर्द्धन विभाग के सहयोग से ही कुल विक्रय में वृद्धि होती है। वही विपणन अनुसंधान विभाग ग्राहक की वस्तु के प्रति क्या राय है तथा वह क्या चाहता है इसका पता लगाकर विक्रय विभाग को सूचित करता है जिससे विज्ञापन एवं विक्रय संवर्द्धन में आवश्यक बदलाव करके मांग को प्रभावी बनाया जा सकें।
5. **कर्मचारी विभाग के साथ संबंध** – कर्मचारी विभाग एवं विक्रय विभाग में भी सामंजस्य आवश्यक होता है। जिस प्रकार के कर्मचारी एवं विक्रयकर्ता की आवश्यकता विक्रय विभाग को होती है उसी प्रकार के कर्मचारी एवं विक्रयकर्ता की पूर्ति कर्मचारी विभाग द्वारा उचित समय पर किया जाता है। कर्मचारी विभाग द्वारा नये कर्मचारियों के प्रशिक्षण का भी कार्य करता है।

2.8 वितरण नेटवर्क संबंध

अर्थ – प्रत्येक वस्तु का उत्पादन उसको अन्तिम उपभोक्ता तक पहुँचाने के लिये किया जाता है जिसे कई माध्यमों के द्वारा अन्तिम उपभोक्ता तक पहुँचाया जा सकता है। जैसे – निर्माता फुटकर विक्रेताओं की सेवाओं का उपयोग कर उपभोक्ताओं को वस्तु बेच सकता हैं, एक से अधिक मध्यस्थों या प्रतिनिधि नियुक्त करके भी वस्तुओं को बेचा जा सकता है। वितरण-माध्यम को व्यापारिक माध्यम भी कहते है।

विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गयी वितरण माध्यम की परिभाषाएँ निम्न है –

1. **बिलियम जे. स्टैण्टन के अनुसार,** ''वस्तुओं के अधिकार-स्वामित्व को अन्तिम उपभोक्ता या औद्योगिक विक्रेता तक पहुँचाने में जो माध्यम अपनाया जाता है, वह वितरण-माध्यम कहलाता है।''
2. **मैककार्थी के अनुसार,** ''उत्पादक से उपभोक्ता तक की संस्थाओं का कोई भी क्रम जिसमें या तो एक मध्यस्थ है या उनकी कोई भी संख्या हो सकती है, वितरण-माध्यम कहलाता है।''
3. **कण्डिफ एवं स्टिल के मत में,** ''विपणन माध्यम वे वितरण जाल है जिनके माध्यम से उत्पादक वस्तुओं को बाजार की ओर प्रवाहित करते हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि वितरण-माध्यम वस्तुओं के स्वामित्व हस्तान्तरण का मार्ग है और इसमें केवल उन्हीं संस्थाओं को शामिल किया जाता है जो वस्तुओं के स्वामित्व हस्तान्तरण में सहयोग करती है तथा बिना किसी परिवर्तन किये वस्तुओं को अन्तिम उपभोक्ताओं या औद्योगिक उपयोगकर्ताओं तक पहुँचाती हैं।

वितरण-माध्यम के कार्य (Functions of Distribution Channel)

वस्तु के वितरण के लिये वितरण-माध्यम द्वारा बहुत से कार्य किये जाते है जो निम्नलिखित हैं –

1. **मूल्य निर्धारित करना** – वितरण-माध्यम मूल्य निर्धारण में निर्माताओं की मदद करते हैं। मध्यस्थों को बाजार की अच्छी जानकारी होती है तथा वे अपने अनुभव एवं ज्ञान के आधार पर वस्तु के मूल्य निर्धारण में सुझाव देते है जो बहुत ही उचित एवं समयानुकूल होते है।
2. **वित्त प्रबन्ध करना** – यदि वस्तु मध्यस्थों के माध्यम से बेची जाती हैं तो मध्यस्थों को अपने आदेश के साथ कुछ धनराशि अग्रिम के तौर पर निर्माता को दिया जाता है जिससे निर्माता को वित्त प्रबंध में सुविधा रहती हैं। कभी-कभी मध्यस्थों को नाल बैंकों के माध्यम से भी भेजा जाता है जिसे निर्माता उस माल सम्बन्धी प्रपत्र को बैंक से बट्टे पर भुना लेता है। इस प्राकर वितरण-माध्यम का कार्य वित्त प्रबंध करना भी है।
3. **संवर्द्धन क्रियाएँ करना** – व्यवसाय में निर्माता एवं मध्यस्थों के द्वारा संवर्द्धन क्रियाएँ की जाती है। मध्यस्थ दुकान की अलमारियों में वस्तुओं का प्रदर्शन करके विक्रय-संवर्द्धन एवं विज्ञापन का कार्य करते है। कभी-कभी निर्माता विभिन्न प्रकार के प्रलोभन मध्यस्थों को देते हैं, जैसे – दुकान की साज-सज्जा के लिये अलमारी, रैक, इश्तहार आदि मुफ्त देना या विज्ञापन एवं विक्रय संवर्द्धन का कुछ भाग स्वयं वहन करना।

4. **संचार में सहायता करना** – वितरण-माध्यम संचार सुविधा का भी कार्य करते हैं। मध्यस्थ अपने निर्माताओं को बाजार की सूचना देते रहते है जिससे निर्माता क्रेताओं की पसंद एवं आवश्यकता के अनुसार उत्पादन करता है और समयानुसार उसका लाभ उठाता है।
5. **सौदों की संख्या न्यूनतम करना** – वितरण-माध्यम सौदों की संख्या को कम-से-कम करते है जिससे वितरण व्ययों में कमी आती है। यदि वितरण-माध्यम न हो तो प्रत्येक क्रेता को सीधे निर्माता से क्रय करना पड़ेगा, लेकिन वित्त माध्यम होने से उन्हें ऐसा नही करना पड़ता।
6. **उपभोक्ताओं की सेवा करना** – वितरण-माध्यम का सबसे महत्वपूर्ण कार्य उपभोक्ताओं की सेवा करना है। इन्ही के माध्यम से उपभोक्ताओं को वस्तु मिलती है तथा यदि उनको कोई कठिनाई होती है तो इन्हीं के माध्यम से कठिनाई भी दूर होती है।

वितरण प्रणालियाँ (Distribution System)

वस्तुओं को उपभोक्ताओं तक पहुँचाने में तीन तरीके काम में लाये जाते हैं –

I. **प्रत्यक्ष वितरण माध्यम** – वितरण की यह वह प्रणाली है जिसमें निर्माता अपनी वस्तुओं को अपनी ही दुकानों या डिपों या शाखाओं या प्रतिनिधियों आदि के माध्यम से सीधा उपभोक्ता तक पहुँचाता है। इस प्रणाली के माध्यम से वस्तुएँ पहुँचाने के पाँच साधन है –

(i) **स्वयं की दुकानें** – इसमें निर्माता अपने स्वयं की फुटकर दुकानें भिन्न-भिन्न स्थानों पर खोलता है जहाँ उसकी वस्तुओं की बिक्री की जाती है। जैसे – बाटा इण्डिया लिमिटेड, रेमण्ड्स, मफतलाल ग्रुप आदि अपने उत्पाद इन्ही कम्पनियों के फुटकर दुकानों द्वारा बेची जाती हैं।

(ii) **स्वयं के विक्रयकर्ता** – इस प्रणाली के अन्तर्गत वस्तु के निर्माता द्वारा विक्रयकर्ताओं की नियुक्ति की जाती है। ये विक्रयकर्ता समय-समय पर संभावित ग्राहकों से सम्पर्क स्थापित करके उनको ग्राहक बना लेते है। यदि वस्तु छोटी है या उपभोग योग्य है तो विक्रयकर्ता उसको गाड़ी में उचित प्रकार से रखकर संभावित ग्राहकों को बेचता है तथा तुरन्त भुगतान ले लेता है। इस प्रणाली को घर-घर में विक्रय भी कहते है। चाय एवं साबुन, घी, डालडा आदि बनाने वाली कम्पनियाँ इस प्रणाली के उदाहरण हैं।

(iii) **डाक द्वारा आदेश** – एक निर्माता अपनी वस्तुओं को डाक के द्वारा भी बेच सकता है। इसमें डाक से ही आदेश आते है तथा उन आदेशों की पूर्ति भी डाक के माध्यम से ही होती है। वस्तु के मूल्य का भुगतान भी डाक द्वारा मिलता है। इस प्रकार की संस्थाओं को डाक आदेश गृह कहते है। इस पद्धति में विज्ञापन का काफी महत्व है। विक्रेता सूचना पत्रों, समाचार-पत्रों, विज्ञापन आदि के माध्यम से ग्राहक के उत्पाद के बारे में परिचय करवाता है। ग्राहक उस वस्तु के लिये डाक द्वारा आदेश देता है। विक्रेता को जब आदेश प्राप्त हो जाता है तो वह उत्पाद को अच्छी तरह से पैक करके डाक के माध्यम से ग्राहक के पास भेज देता है। ग्राहक वस्तु के मिलने के पश्चात उसका भुगतान डाकखाने के माध्यम से विक्रेता को कर देता है।

(iv) **टेलीफोन द्वारा** – इस पद्धति के अन्तर्गत क्रेता माल प्राप्त करने के लिये विक्रेता को टेलीफोन पर आदेश देता है। विक्रेता उस माल की पूर्ति क्रेता के घर पर कर देता है।

(v) **विक्रय मशीन द्वारा** – स्वचालित मशीनों के द्वारा भी बिक्री की जाती है। यह मशीनें जगह-जगह लगी रहती है जिनमें माल भरा होता है। इन मशीनों में आवश्यक सिक्के डालकर उस वस्तु को प्राप्त किया जा सकता हैं।

II. **अप्रत्यक्ष वितरण माध्यम** – अप्रत्यक्ष वितरण प्रणाली से तात्पर्य वस्तुओं एवं सेवाओं को मध्यस्थों मके माध्यम से उपभोक्ता तक पहुँचाना हैं। जो संस्थाएँ इस अप्रत्यक्ष वितरण प्रणाली में मध्यस्थ के रूप में कार्य करती है उन्हें अप्रत्यक्ष विक्रय एजेन्सियाँ कहते है। यह एजेन्सियाँ तीन प्रकार की होती है : 1. प्रतिनिधि 2. थोक विक्रेता, 3. फुटकर विक्रेता। इन तीनों एजेन्सियों के माध्यम से वस्तु उपभोक्ता तक निम्न प्रकार पहुँचती है :

निर्माता → प्रतिनि → थोक → फ़ुटकर → उपभो

अप्रत्यक्ष वितरण में यह अनिवार्य नही है कि सभी मध्यस्थों की सेवाएँ ली जाय।

4. **दोहरा वितरण-माध्यम** – जब एक निर्माता दोनों प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष वितरण प्रणालियों को अपनाता है तो ऐसी प्रणाली दोहरी वितरण प्रणाली कहलाती है। वर्तमान समय में विपणन क्रियाओं के विस्तार के लिये यह प्रणाली बहुत ही उपयोगी है। इस प्रणाली को अपनाने का मुख्य उद्देश्य वितरण को व्यापक बनाना है। लेकिन इस प्रणाली को अपनाने में सबसे बड़ी समस्या बाजारों के विभाजन की हैं। यह तय करना कठिन हो जाता है कि किस स्थान पर प्रत्यक्ष प्रणाली अपनायी जाय तथा किय स्थान पर अप्रत्यक्ष प्रणाली।

माध्यम या वाहिका-प्रबन्ध सम्बन्धी निर्णय (Channel Management Decision)

जब एक निर्माता वितरण-माध्यम के स्वरूप का निर्णय कर लेता है तो उसके समक्ष तीन प्रबंध संबंधी समस्याएँ आती है जिनके संबंध में उसको क्रमानुसार निर्णय लेने पड़ते है –

III. **माध्यम-सदस्यों का चुनाव करना** – एक निर्माता द्वारा अपने वितरण-माध्यम के स्वरूप का निर्णय कर लेने के बाद वितरण-माध्यम के सदस्यों का चुनाव करना पड़ता है। वे निर्माता जिनकी बाजार में ख्याति है मध्यस्थ स्वत: ही प्रस्ताव लेकर जाते है कि उन्हें अपना मध्यस्थ बना ले, लेकिन कुछ निर्माताओं को इस तरह के प्रस्ताव नहीं मिलते तथा उनको ऐसी संस्थाएँ ढूंढनी पड़ती है जो मध्यस्थ बनने को तैयार हों। इसके लिये निर्माताओं को विभिन्न प्रकार से प्रचार-प्रसार करना पड़ता है जिससे प्रभावित होकर मध्यस्थ बनने के प्रस्ताव या जाते हैं।

मध्यस्थ बनने के प्रस्ताव चाहे जिस भी रूप में आयें, एक निर्माता को मध्यस्थों का चुनाव करते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिये :

(i) उस संस्था को व्यवसाय करते कितना समय हो चुका है ?
(ii) इस समय उसकी प्रगति कैसी हैं ?
(iii) क्या वह समय पर भुगतान करने में सर्मथ हैं ?
(iv) क्या बाजार में उसकी ख्याति अच्छी हैं ?

(v) संस्था किन-किन वस्तुओं में पहले से व्यवसाय कर रहा है ? क्या वह वस्तु में व्यवहार करने के लिये आवश्यक तकनीकी ज्ञान रखता है ?

(vi) क्या उसका व्यवसाय ऐसे स्थान पर है जहाँ पर विक्रेता आसानी से पहुँच सकता है ?

यदि इन प्रश्नों के जवाब 'हाँ' में मिलते है तो उनको मध्यस्थ-सदस्य के रूप में चुना जा सकता हैं।

II. माध्यम-सदस्यों को प्रेरित करना

जब माध्यम-सदस्यों का चुनाव हो जाता है तो फिर उनके साथ एक लिखित अनुबंध होते है जिस पर निर्माता एवं मध्यस्थ दोनों के हस्ताक्षर होते हैं। एक निर्माता के समक्ष यह समस्या आती रहती है कि कैसे मध्यस्थों को अधिक बिक्री के लिये प्रेरित करें। एक निर्माता को अपने मध्यस्थों को न तो बहुत अभिप्रेरित करना चाहिये और न ही बहुत कम। अत्यधिक अभिप्रेरणा से बिक्री तो बढ़ जाती है लेकिन लाभ कम हो जाता है। वही कम अभिप्रेरणा से न तो बिक्री बढ़ती है और न ही लाभ। इसीलिये एक निर्माता को ऐसा रास्ता अपनाना चाहिये जिससे बिक्री में भी वृद्धि हो तथा लाभ भी उचित मात्रा में बना रहे तथा मध्यस्थों को भी अधिक विक्रय के लिये प्रेरणा मिलती रहें।

मध्यस्थों को दो तरह से अभिप्रेरित किया जा सकता है – प्रथम, मध्यस्थों को उचित साख शर्तें प्रदान करके या उनका मार्जिन बढ़ाकर या अन्य प्रकार से मूल्यों में सुविधा देकर। दूसरे, उनके कार्य-कलापों की समय-समय पर समीक्षा करते हुए उनको सुधार के लिये सुझाव देते रहना।

III. माध्यम-सदस्यों का मूल्यांकन करना

निर्माता ने जिन मध्यस्थों को नियुक्त किया है उनके कार्यों का मूल्यांकन समय-समय पर करते रहना चाहिये। जिन मध्यस्थों की बिक्री कम है उन्हें विक्रय बढ़ाने के लिये प्रेरित करना चाहिये तथा उसके बाद भी अगर वे क्रियाशील नही होते हैं तो उन्हें हटा देना चाहिये। निर्माता को मध्यस्थों के मूल्यांकन के लिये कोई प्रमाप स्थापित किया जाना चाहिये जिससे मध्यस्थों की बिक्री की तुलना की जा सकें। मध्यस्थों के मूल्यांकन के दो रूप है –

1. **प्रत्येक मध्यस्थ की पिछली बिक्री से तुलना करना** – इसके अन्तर्गत प्रत्येक मध्यस्थ की बिक्री की तुलना पिछले वर्षो की बिक्री से की जाती है। इसमें पिछले कुछ वर्षों की बिक्री का औसत निकाल लेते है जिसको एक प्रमाप मान लिया जाता है। यदि किसी विक्रेता की बिक्री उस प्रमाप से कम है तो निर्माता इसके कारणों की जांच करता है तथा आगे आने वाली अवधि के लिये बिक्री को बढ़ाने का प्रयत्न करता है।
2. **प्रत्येक मध्यस्थ की बिक्री का निर्धारित कोटे से तुलना करना** – इस पद्धति के अन्तर्गत मध्यस्थ की बिक्री का कोटा उस क्षेत्र की विक्रय संभावना के आधार पर निर्धारित किया जाता है। उसके पश्चात उस अवधि की वास्तविक बिक्री की तुलना उस कोटे से की जाती है। यदि बिक्री उस कोटे से कम होती है तो इसके कारणों की जांच की जाती है तथा मध्यस्थ से विचार-विमर्श करके भावी उपायों की रूपरेखा तैयार की जाती है।

वितरण-माध्यम को प्रभावित करने वाले घटक (Factors Affecting Choice of Channels of Distribution)

किसी वस्तु के विपणन में वितरण-माध्यम का चुनाव करना बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य है। यदि इनका चुनाव उचित रूप में नही होता है तो उपभोक्ता को वस्तु उचित मूल्य पर आसानी से नही मिल पाती है। अत: एक निर्माता को वितरण-माध्यम का चुनाव करते समय निम्नलिखित घटकों का ध्यान रखना चाहिये –

1. **निर्माता सम्बंधी बातें – निर्माता संबंधी घटक निम्न हैं –**

    - **निर्माता का आकार** – जिन निर्माताओं का आकार बहुत बड़ा होता है उनकी ख्याति, आर्थिक स्थिति, प्रबंधकीय योग्यता आदि भी अच्छी होती है। अत: ऐसी संस्थाओं के द्वारा छोटा वितरण-माध्यम अपनाया जाता है।
    - **प्रबंधकीय योग्यता** – एक वसतु का वितरण माध्यम प्रबंधकीय अनुभव एवं योग्यता से भी प्रभावित होता है। यदि निर्माता में प्रबंधकीय योग्यता की कमी है तो उसको मध्यस्थों पर अधिक निर्भर हरना पड़ेगा। नये निर्माता भी प्रारम्भिक अवस्था में मध्यस्थों पर ही निर्भर रहते है।
    - **आर्थिक स्थिति एवं ख्याति** – किसी संस्था की ख्याति उसकी अच्छी नीतियों एवं अच्छी आर्थिक स्थिति के कारण बनती है। एक संस्था की ख्याति उसके वितरण माध्यम को प्रभावित करती है। जिस निर्माता की ख्याति अच्छी होती है वह स्वयं की दुकानें या शाखाएँ खोल सकता है और वह मध्यस्थों पर निर्भर नही रहता है।

2. **वस्तु संबंधी बातें** – वे बातें जो वस्तु के गुण एवं प्रकृति से संबंधित हो भी वितरण माध्यम को प्रभावित करती है। इनका विवरण निम्न है –

    - **नाशवानता** – वे वस्तुएँ जो जल्दी नष्ट हो जाती है उन्हें तुरन्त बेचने की आवश्यकता होती है जिसके लिये कम मध्यस्थों की आवश्यकता होती है। ये वस्तुएँ निर्माता या फुटकर विक्रेताओं द्वारा ही बेची जा सकती है। यदि वस्तु नाशवान प्रकृति का नही है तो वितरण-माध्यम लम्बा हो सकता है।
    - **वजन** – यदि वस्तु भारी हो तो उसको निर्माता के द्वारा सीधे उपभोक्ता को भेजा जायेगा। यह भी हो सकता है कि दोनों को मिलाने वाला मध्यस्थ बीच में हो। ऐसी वस्तुएँ रेल, लारी या ट्रक में भरकर भेजे जाते है।
    - **तकनीकी प्रकृति** – यदि वस्तु तकनीकी प्रकृति की है तथा जिसमें विक्रय के बाद सेवा की आवश्यकता हो तो ऐसी वस्तु को स्वयं निर्माता द्वारा ही बेचा जाना चाहिये जिससे क्रेता को आवश्यक तकनीकी जानकारी दी जा सकें। मध्यस्थों द्वारा भी इस प्रकार की वस्तुओं का विक्रय किया जा सकता है लेकिन इसके लिये मध्यस्थों को प्रशिक्षण देना अनिवार्य होगा।
    - **प्रतियोगिता** – एक विक्रेता को इस बात का पता लगाना चाहिये कि प्रतियोगी वस्तुओं के निर्माताओं द्वारा कौन-कौन सा वितरण-माध्यम अपनाया गया है जिससे कि अपना नया वितरण-माध्यम अपनाया जा सकें।

3. **बाजार-संबंधी बातें** – वितरण-माध्यम के चयन करने में बाजार संबंधी बातें बहुत ही महत्वपूर्ण है। बाजार संबंधी बातें निम्न है –
   - **औद्योगिक एवं उपभोक्ता बाजार** – बाजार शब्द का अर्थ यहाँ पर यह है कि वस्तु सामान्य उपभोक्ताओं के लिये है या औद्योगिक उपभोक्ताओं के लिये । यदि वस्तु सामान्य उपभोक्ताओं के लिये है तो उस वस्तु के अधिक मध्यस्थ हो सकते है। लेकिन यदि वस्तु औद्योगिक उपभोक्ताओं के लिये है तो मध्यस्थों की संख्या कम हो सकती है।
   - **ग्राहकों की संख्या** – ग्राहकों की संख्या भी वितरण-माध्यम के निर्णय को प्रभावित करती है। यदि ग्राहकों की संख्या अधिक है तो वितरण के लिये मध्यस्थों की सेवाएँ ली जा सकती है। यदि ग्राहकों की संख्या कम हो तो स्वयं निर्माता द्वारा वितरण किया जा सकता है।
   - **क्रय आदतें** – ग्राहकों की क्रय आदतें वितरण-माध्यम को प्रभावित करती है। यदि क्रेताओं की आदत उधार लेने की है और निर्माता उधार देने की स्थिति में नही है तो उसे ऐसे मध्यस्थों का सहारा लेना पड़ेगा जो उधार देने में समर्थ हों।
4. **मध्यस्थ संबंधी बातें** – मध्यस्थ संबंधी बातें भी वितरण-माध्यम पर प्रभाव डालती है। इनका विवरण निम्न है –
   - **सेवाएँ** – मध्यस्थों का चुनाव उनकी सेवाओं को ध्यान में रखकर किया जाता हैं। जो मध्यस्थ अधिक सेवाएँ देने को तैयार हो उन्ही को चुना जाना चाहिये।
   - **बिक्री की संभावनाएँ** – जिस वितरण-माध्यम द्वारा बिक्री बढ़ने की संभावना सबसे अधिक होती है उस माध्यम को चुनना चाहिये। साथ ही साथ यह भी ध्यान रखना चाहिये कि माध्यम महंगा न हो तथा निर्माता का मध्यस्थों पर नियंत्रण बना रहें।
   - **लागत** – जिन साधनों से वितरण लागत कम पड़ती है उनको अपनाया जाना चाहिये। लेकिन साथ ही साथ सेवाओं एवं माल को भी ध्यान में रखना चाहिये।

2.15. सारांश

संगठन व्यक्तियों के प्रयासों को उत्पादक एवं प्रभावशाली बनाता है। निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति संगठन के द्वारा ही सम्भव है। विक्रय कार्यों एवं दायित्वों के निष्पादन के लिए एक सुदृढ़ संगठन की आवश्यकता होती है। विक्रय संगठन विक्रय लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए किये जा रहे मानवीय प्रयासों एवं सहयोग की एक औपचारिक प्रणाली है। यह विक्रय कर्मचारियों के पारस्परिक सम्बन्धों, अधिकारों एवं दायित्वों की एक व्यवस्थित संरचना है। विक्रय संगठन संस्था के विक्रय प्रयत्नों एवं क्रियाओं को श्रृंखलाबद्ध, संयोजित एवं समन्वित करता है। विक्रय शक्ति एवं साधनों के प्रभावी समन्वय एवं उत्प्रेरणा के लिए विक्रय संगठन का निर्माण आवश्यक होता है।

विक्रय कार्यों, उद्देश्यों एवं दायित्वों के निष्पादन हेतु निर्मित व्यक्तियों एवं संसाधनों की व्यवस्थित एवं समन्वित प्रणाली को विक्रय संगठन कहा जाता है। विक्रय संगठन व्यक्तियों का एक समूह है जो पूर्व-निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए, विक्रय प्रबन्धक के नेतृत्व में कार्य करता है। विक्रय प्रयासों, सम्बन्धों,

साधनों एवं कार्यपद्धतियों की समन्वित व्यवस्था को विक्रय संगठन कहा जाता है। विक्रय संगठन के द्वारा न्यूनतम लागत पर अधिकतम कुशलता के साथ विक्रय उद्देश्यों को प्राप्त किया जाता है। विक्रय संगठन को अनेक विद्वानों ने परिभाषित किया है।

2.16. अभ्यासार्थ प्रश्न

1. विक्रय संगठन से क्या समझते है? इसके विशेषताओं एवं उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।
2. विक्रय संगठन का अर्थ स्पष्ट कीजिए तथा इसके कार्यों की व्याख्या कीजिए।
3. विक्रय संगठन से क्या आशय है ? इसको प्रभावित करने वाले विभिन्न तत्वों का वर्णन कीजिए।
4. विक्रय संगठन के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए।
5. एक प्रभावी विक्रयकर्त्ता के विभिन्न गुणों का उल्लेख कीजिए।
6. वितरण-माध्यम से आप क्या समझते है ? उनके कार्यों का वर्णन कीजिए।
7. वस्तुओं को उपभोक्ताओं तक पहुँचाने में उपयोग में लाये जाने वाले विभिन्न तरीकों का उल्लेख कीजिए।
8. एक निर्माता को वितरण-माध्यम के संबंध में कौन-कौन से प्रबंध संबंधी निर्णय लेने होते है ?
9. वितरण-माध्यम को प्रभावित करने वाले विभिन्न तत्वों का उल्लेख कीजिए।

2.17. संदर्भ ग्रंथ सूची

6. जैन. एस. सी., विपणन प्रबंधन, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2012
7. मालवीय अंजनी, विपणन प्रबंधन, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2012
8. Kotler Philip, Gary Armstrong, Principles Of Marketing, Prentice Hall Of India Pvt. Ltd, New Delhi, 2010
9. Bose S. Biplab, Marketing, Himalaya Publishing House, New Delhi, 2010.
10. सुधा जी. एस., विक्रय संवर्द्धन एवं विक्रय प्रबंध, रमेश बुक डिपो, जयपुर।

इकाई 3 बिक्री बल प्रबंधन

इकाई की रूपरेखा

3.1. उद्देश्य
3.2. बिक्री क्षेत्र में कार्मिक प्रबंधन
3.3. बिक्री कर्मियों का भर्ती और चयन
3.4. बिक्री बल अभिप्रेरणा
3.5. बिक्री बल का मुआवजा
3.6. बिक्री कर्मियों का नियंत्रण
3.7. सारांश
3.8. अभ्यासार्थ प्रश्न
3.9. संदर्भ ग्रंथ सूची

3.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप निम्नलिखित उद्देश्यों को पूण्र कर सकेंगे –

1. बिक्री कर्मियों की भर्ती का अर्थ, प्रक्रिया, चयन एवं उसके महत्व को समझ सकेंगे।
2. बिक्री कर्मियों की चयन प्रक्रिया तथा चयन में ध्यान रखने वाली बातों को जान सकेंगे।
3. बिक्री कर्मियों के अभिप्रेरण का अर्थ, प्रक्रिया, उसकी पद्धतियों को समझ सकेंगे।
4. बिक्री कर्मियों के नियंत्रण का अर्थ, प्रक्रिया एवं उसके विधियों के बारे में जान सकेंगे।
5. बिक्री कर्मियों के प्रशिक्षण एवं विकास का अर्थ, उद्देश्य, विशेषताएँ, सिद्धांत तथा पद्धतियों के बारे में जानकारी हो सकेगी।
6. बिक्री कर्मियों के पारिश्रमिक निर्धारण का अर्थ, उद्देश्य, उसके आवश्यक तत्व तथा उसकी विधियों के बारे में जान सकेंगे।

3.2. बिक्री क्षेत्र में कार्मिक प्रबंधन

कुशल एवं योग्य विक्रेता व्यवसाय के जीवनरक्त होते है। वे संस्था की अमूल्य सम्पत्ति होते है। प्रत्येक संसृथा की विक्रय शक्ति में निरन्तर परिवर्तन होते रहते है जिससे संस्था का कार्यक्षेत्र बढ़ जाता है तथा नये तकनीकी परिवर्तनो के कारण नये विक्रेताओं की भर्ती करना आवश्यक हो जाता है।

भर्ती का अर्थ एवं परिभाषाएँ

भर्ती संस्था के लिये योग्य व्यक्तियों की खोज करने, उन्हें रिक्त पदो की जानकारी देने तथा उन्हें उन पदो के लिये आवेदन करने के लिये प्रोत्साहित करने की प्रक्रिया है।

प्रो. एडविन फ्लिप्पो के अनुसार, "भर्ती संभावित कर्मचारियों की खोज करने तथा उन्हें संगठन कार्यों के लिये आवेदन करने के लिये उत्प्रेरित करने की प्रक्रिया है।"

प्रो. ब्यूल के अनुसार, ‘‘किसी विक्रय पद के लिये सर्वोत्तम उपलब्ध प्राथियों की सक्रिय खोज करना ही भर्ती है।’’

इस प्रकार स्पष्ट है कि विक्रताओं की भर्ती वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा संस्था में विक्रेता के रिक्त पदों के लिये योग्य एवं उचित व्यक्तियों की खोज की जाती है तथा उन्हें इन रिक्त पदों की जानकारी देकर आवेदन के लिये प्रेरित किया जाता है जिससे विक्रय लक्ष्यों की पूर्ति के लिये योग्य विक्रय बल का निर्माण किया जा सकें।

भर्ती की विशेषताएँ – भर्ती की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित है –

1. यह योग्य विक्रेताओं के खोज की प्रक्रिया है।
2. इसमें विक्रेताओं को आवेदन के लिये प्रेरित एवं प्रोत्साहित किया जाता है।
3. इसमें भर्ती के विभिन्न स्रोतों को निर्धारण करके उन्हें बनाये रखने का प्रयास किया जाता है।
4. यह एक सकारात्मक प्रक्रिया है जिसमें चयन अनुपात को बढ़ाने का उद्देश्य रहता है।
5. भर्ती वर्तमान तथा भावी दोनो प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये की जा सकती है।
6. भर्ती संस्था में निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है।

विक्रेताओं की भर्ती की आवश्यकता

किसी भी संस्था में विक्रेताओं की भर्ती के अनेक कारण हो सकते है जिसमें प्रमुख निम्नलिखित है –

1. **नये संस्था की स्थापना** – प्रत्येक नई संस्था को अपने विक्रय विभाग के संचालन के लिये कुछ नये विक्रेताओ की भर्ती करनी होती है।
2. **संस्था का विकास** – प्रत्येक संस्था नये बाजारों, नये उत्पादों तथा नई विक्रय योजनाओं के द्वारा विकास के मार्ग पर अग्रसर रहती है। विकास के कारण बढ़ती हुई बिक्री तथा विक्रय क्षेत्रों के लिये अधिक विक्रयकर्ताओं की आवश्यकता पड़ती है। ऐसी स्थिति में विक्रेताओं के भर्ती के कार्यक्रम बनाने होते है।
3. **स्थानान्तरण** – जब विक्रेताओं को विक्रय विभाग से अन्य विभाग में स्थानान्तरित कर दिया जाता है तो ऐसी दशा में भी विक्रय विभाग को नये विक्रेताओं के भर्ती की आवश्यकता पड़ती है।
4. **पदोन्नति** – जब विक्रयकर्ता की पदोन्नति हो जाती है तो उस रिक्त स्थान को भरने के लिये नये विक्रयकर्ता की भर्ती करनी पड़ती है।
5. **तकनीकी परिवर्तन** – तकनीकी परिवर्तनों के कारण उत्पादों के स्वरुप, किस्म, आकार-प्रकार तथा उपयोग विधि में परिवर्तन होते रहते है जिसके फलस्वरुप इन नये उत्पादो की बिक्री के लिये नये विक्रयकर्ताओं की भर्ती की आवश्यकता पड़ती है।
6. **विक्रयकर्ताओं का आवर्तन** – सेवानिवृत्ति, स्थानांतरण, सेवा-समाप्ति, त्यागपत्र, बीमारी आदि के कारण संस्था में विक्रयकर्ताओं की रिक्तता रहती है जिसके लिये विक्रयकर्ताओं की भर्ती करनी पड़ती है।

विक्रेताओं के भर्ती की प्रक्रिया

विक्रेताओं की भर्ती के लिये सामान्यत: निम्न प्रक्रिया अपनाई जाती है –

1. **विक्रेताओं की प्रकृति का निर्धारण**

एक बड़े संस्था में विभिन्न प्रकार के तथा विभिन्न स्तरों पर विक्रय करने के लिये विक्रेताओं की आवश्यकता होती है। इनमें कुछ सृजनशील विक्रेता होते है तो कुछ सेवा प्रदान करने वाले। कुछ मध्यस्थो को विक्रय करते है तो कुछ उपभोक्ताओं को। कुछ विदेशी व्यापार के लिये हाते है तो कुछ देशी व्यापार के लिये नियुक्त किये जाते है। अत: संस्था के लिये यह सुनिश्चित करना आवश्यक हो जाता है कि विक्रेताओं के किस निशिष्ट प्रकार के लिये किस योग्यता की आवश्यकता होगी। विक्रेताओं की प्रकृति तथा योग्यता का सही निर्धारण करने के लिये प्रत्येक संस्था को दो कार्य करने पड़ते है –

I) **कार्य विश्लेषण** – कार्य विश्लेषण निर्दिष्ट कार्यों की आवश्यकताओं के निर्धारण की एक पद्धति है। फ्लिप्पों के अनुसार, "कार्य-विश्लेषण एक विशिष्ट कार्य की क्रियाओं एवं उत्तरदायित्वों से सम्बन्धित सूचनाओं के अध्ययन एवं एकत्रीकरण की प्रक्रिया है।"

II) **वर्तमान विक्रेताओं का पुनरावलोकन** – संस्था के लिये वर्तमान में कार्य कर रहे विक्रेताओं का मूल्यांकन करके यह देखा जाता है कि किस क्षमता एवं योग्यता के विक्रेता विक्रय के किस कार्य में कितने सफल है तथा यदि उनमें परिवर्तन की आवश्यकता हो तो उनमें आवश्यक सुधार किया जाये। इससे भविष्य में उपयुक्त योग्यता के विक्रेताओं की नियुक्ति में सहायता मिलती है।

2. **विक्रेताओं की संस्था का निर्धारण**

विक्रेताओं की भर्ती करने के लिये उनकी संख्याओं का अनुमान निम्न आधार पर लगाया जाता है –

1. प्रति विक्रयकर्ता विक्रय का अनुमान
2. भावी विक्रय अनुमान
3. वर्तमान विक्रेताओं की संख्या
4. विक्रेताओं का आवर्तन
5. भावी विकास की संभावनाएँ

उपर्युक्त घटको पर विचार करते हुए निम्न सूत्र के आधार पर विक्रेताओं की संख्या का निर्धारण किया जाता है –

$$N = \frac{S}{P}(L+T)$$

जहाँ

N = विक्रेताओं की संख्या

S = भावी विक्रय अनुमान

P = प्रति विक्रेता द्वारा विक्रय का अनुमान

T = विक्रेताओं का आवर्तन

3. विक्रेताओं की भर्ती के स्रोतो का निर्धारण

विक्रेताओं के भर्ती के स्रोतो का निर्धारण मुख्य रूप से दो भागो में बाँटा जा सकता है –

i) **आन्तरिक स्रोत** – जब किसी संस्था के अन्दर कार्यरत कर्मचारियों में से विक्रेताओं के पदों पर भर्ती की जाती है तो इसे आन्तरिक स्रोत के द्वारा भर्ती कहा जाता है। आन्तरिक स्रोत से भर्ती के निम्नलिखित गुण एवं दोष होते है –

गुण –

अ) विक्रेताओं के भर्ती एवं चयन की समस्या आसानी से हल हो जाती है।
ब) कर्मचारियों को पदोन्नति के समान अवसर प्राप्त होते है।
स) कर्मचारियों की योग्यता का मूल्यांकन आसान हो जाता है।
द) कर्मचारी संस्था के कार्य प्रणाली से पूर्व परिचित होते है।
य) कर्मचारियों के मनोबल में वुद्धि होती है।
र) कर्मचारियों पर होने वाले प्रशिक्षण व्ययों में कमी होती है।

दोष –

अ) कर्मचारियों के चयन का क्षेत्र बहुत सीमित होता है।
ब) प्रशिक्षण के अभाव में कर्मचारियों के कार्य प्रणाली में कोई बदलाव नही आ पाता है।
स) बदलते तकनीक के दौर में यह भर्ती की यह पद्धति उपयुक्त नही है।
द) विश्वासपात्र एवं निष्ठावान विक्रेता प्राप्त करना कठिन हो जाता है।

विक्रेताओं के भर्ती के विभिन्न स्रोत

विक्रेताओं के भर्ती के स्रोतो को निम्नलिखित दो भागों में बाँटा जा सकता है –

1) **आन्तरिक स्रोत** – इस स्रोत के अन्तर्गत विक्रेताओं के भर्ती के निम्न तरीके है –

i) **दूसरे विभागों में कार्यरत कर्मचारी** – इसके अन्तर्गत संस्था में कार्यरत विभिन्न विभागों के कर्मचारियों मे से ही विक्रेता पद पर कार्य करने के लिये आवेदन पत्र आमंत्रित किये जाते है। संस्थाएँ ऐसी व्यवस्था अपने कर्मचारियों के विकास एवं पदोन्नति के लिये करती है जिससे कि उन्हें उच्च पदों पर कार्य करने के लिये संस्था के अन्दर से कर्मचारी मिल जाये। प्राय: कर्मचारी संस्था के उद्देश्य एवं नीति से पूर्ण रूप से परिचित रहते हैं, अत: बाहर से आने वाले कर्मचारियों की तुलना में बेहतर सिद्ध होते है। संस्था के बारे में पूर्ण ज्ञान होने से इन्हें ज्यादा प्रशिक्षण की आवश्यकता नही होती है। इनकी कुशलता, व्यवहार, गुण आदि के अभिलेख संस्था में उपलब्ध रहती है। इस स्रोत का सबसे बड़ा दोष यह है कि भर्ती करने वाले अधिकारी कभी-कभी पक्षपात कर जाते है।

ii) **कर्मचारियों की सिफारिशों द्वारा** – आन्तरिक स्रोत से भर्ती के तहत कर्मचारियों एवं सम्बन्धियों की सिफारिश पर उनके परिचित मिस्र एवं कर्मचारियों की भर्ती की जाती है। इन्हें संस्था में इसलिये शामिल किया जाता है क्योंकि ये संस्था में कार्य कर रहे व्यक्तियों के माध्यम से आता है तथा इन्हें भी संस्था के बारे में जानकारी होती है। इन व्यक्तियों में पूर्ण सहयोग एवं निष्ठा की भावना होती है।

2. **बाह्य स्रोत**

विक्रेताओं के भर्ती के अनेक बाह्य स्रोत है जिसका संस्था अपनी सुविधा एवं आवश्यकतानुसार उपयोग कर सकती है। भर्ती के प्रमुख स्रोत निम्नलिखित है –

i) **पूर्व कर्मचारी** – ऐसे कर्मचारी जो पहले संस्था छोड़ चुके थे या किसी विशेष परिस्थितियों में उनकी सेवाएँ समाप्त कर दी गयी थी, यदि संस्था में पुन: आना चाहते है तो विक्रेता पद के लिये उनकी भर्ती की जा सकती है।

ii) **रोजगार कार्यालय** – रोजगार कार्यालयों में रोजगार के इच्छुक व्यक्तियों का पंजीयन होता है जिसमें उनकी योग्यता, अनुभव, रुचि आदि के बारे में विस्तृत विवरण रखा जाता है। विक्रेताओं की भर्ती करने के लिये इन कार्यालयों से भी उपयुक्त व्यक्तियों का विवरण लिया जा सकता है।

iii) **स्वैच्छिक आवेदन** – रोजगार के इच्छुक व्यक्ति स्वेच्छा से अपना आवेदन-पत्र संस्था में दे जाते है। ये आवेदन पत्र कार्यालय में संग्रहित होते रहते है तथा आवश्यकता पड़ने पर इन आवेदको को सूचित किया जाता है।

iv) **प्रत्यक्ष विज्ञापन** – समाचार-पत्रों एवं अन्य व्यावसायिक पत्रिकाओं में विज्ञापन देकर आवेदन-पत्र आमंत्रित किये जाते है। विज्ञापन में आवेदक के लिये आवश्यक योग्यता, अनुभव, रुचि, एवं आयु का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिये।

v) **प्रतिस्पर्धी संस्थाएँ-** प्राय: नव-स्थापित संस्था या प्रतिस्पर्धा में पीछे रहने वाली संस्थाएँ इस प्रकार की भर्ती को प्रोत्साहन देती है। ये संस्थाएँ प्रतिस्पर्धी संस्था में कार्य कर रहे विक्रेताओं को अपने यहाँ ज्यादा वेतन पर कार्य करने के लिये आमंत्रित करती है।

3.3. बिक्री कर्मियों का भर्ती और चयन

योग्य विक्रेता की चयन प्रक्रिया में अत्यन्त सूझबूझ एवं सतर्कता से काम लेना चाहिए। कुशल विक्रेता संस्था में अधिक लाभ का ही सृजन नही करते बल्कि संस्था की ख्याति प्राप्ति, प्रतिष्ठा एवं श्रेष्ठ छवि का भी निर्माण करते हैं। अत: सही कार्य के लिए सही व्यक्ति के चयन में ही विक्रय प्रबन्ध की सफलता निर्भर करती है।

विक्रेता के चयन से आशय विभिन्न प्रार्थियों में से संस्था की आवश्यकतानुसार योग्य प्रार्थियों को छाटना एवं नियुक्त करना है। चयन प्रक्रिया में इच्छुक व्यक्तियों में से योग्य तम व्यक्ति का चुनाव किया जाता है। इस प्रकार विक्रेता के चयन का आशय विक्रय कार्य के लिए उपलब्ध व्यक्तियों में से योग्य व्यक्तियों का चुनाव करना है।

चयन की आवश्यकता एवं महत्व - कुशल विक्रेताओं के चयन के महत्व एवं आवश्यकता को निम्नलिखित आधारों पर आवश्यक माना जाता है।

1. **विक्रय का आधार** – व्यवसाय के बढ़े हुए स्तर को स्थिर रखना है या व्यवसाय की प्रगति करनी है तो उसके लिए अत्यधिक कुशल एवं उपयुक्त विक्रेता का होना आवश्यक होता है। विक्रय का घटना बढ़ना या स्थिर रहना विक्रेता की कुशलता के स्तर से प्रभावित होता है।

2. **सीमित आवर्टन** – यदि सही व्यक्ति को विक्रेता पद लिए चुना जाता है तो वह कार्य में रुचि लेगा तथा कार्य से संतुष्ट होने पर व्यवसाय बदलने के लिए संस्था को नही छोड़ेगा। इससे संस्था छोड़कर जाने वाले विक्रेताओं के आवर्तन दर में कमी आती है तथा स्थिर विक्रेता वर्ग का निर्माण होता है।
3. **अच्छे सम्बन्धों की स्थापना** – एक कुशल विक्रेता अपनी बुद्धिमता से अच्छे संबन्धो को स्थापित करता है। तथा व्यवसाय को आगे बढ़ाने में सदैव तत्पर रहता है। अकुशल, निराश तथा अपरिपक्व विक्रेता संस्था के लिए दायित्व बन जाता है काम में रुचि न लेने वाला विक्रेता अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करता है। तथा व्यर्थ का कारण बताकर कर्मचारियों तथा प्रबन्धकों के समझ उलझन पैदा करता है।
4. **ग्राहकों से सम्बन्ध** – यदि विक्रेता ग्राहको के साथ अच्छा व्यवहार करता है और अपनी वस्तु के गुणों एवं श्रेष्ठता का विश्वास दिलाता है तथा ग्राहकों के शिकायतों के समाधान के लिए शीघ्र प्रयत्न करता है तो ग्राहक संन्तुष्ट रहेगे। अत: ग्राहक एवं व्यवसाय में सन्तोष जनक संबन्धों की स्थापना की दृष्टि से सही विक्रेता का चयन करना आवश्यक होता है।
5. **सरल तथा शीघ्र प्रशिक्षण** – कुशल व्यक्ति का चयन हो जाने पर उस व्यक्ति को प्रशिक्षण देना आसान हो जाता है। क्यों अपने विक्रय की अभिरुचि के कारण अपने प्रशिक्षण कार्यक्रम में पूर्ण रुचि लेता है। जिससे कम समय में उसे प्रशिक्षित किया जा सकता है।
6. **उच्च मनोबल** – कार्य की सफलता के लिए उच्च मनोबल कार्य निष्पादन पर अच्छा प्रभाव डालता है। सही व्यक्ति के चयन से विक्रेताओं में अपनी योग्यता के प्रति विश्वास पैदा होता है जिससे उनका मनोबल बढ़ता है।
7. **नियन्त्रण व्यय में कमी** – कुशल तथा ईमानदार विक्रेता का चयन हो जाने पर विक्रेता अपने कर्तव्यो का पालन ईमानदारी से करता है जिससे विक्रेता का कार्य निरीक्षण एवं नियन्त्रण का कार्य सरल तथा कम खर्चीला हो जाता है। विक्रेताओं की आवर्तन दर में कमी होने से भर्ती एवं चयन के खर्चो में भी कमी आती है।
8. **ख्याति में वृद्धि** – कुशल विक्रेता के चयन से संस्था की ख्याति एवं प्रगति पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। ग्राहक के लिए विक्रेता ही संस्था है। संस्था के अच्छे बुरे होने की धारणा का अनुमान विक्रेता के व्यवहार तथा उसके द्वारा विक्रय की गई वस्तु से लगता है।
9. **योग्य अधिशासियों की प्राप्ति** – एक सफल विक्रेता संस्था के अन्य महत्वपूर्ण पदों के कार्य भार को सम्भालने में भी सफल होता है। विक्रेता के पद पर सही व्यक्ति का चयन होने से अन्य पदों पर भी कार्य करने के लिए कुशल विक्रेता वर्ग से अधिशासी प्राप्त करना सरल हो जाता है।
10. **शान्त वातावरण** – योग्य व कुशल विक्रेता के आने से संस्था में स्वस्थ एवं शान्त वातावरण बनता है। योग्य विक्रेता अपने कार्य को शान्ति से करता है तथा किसी प्रकार उपद्रव पसन्द नही करता है। अयोग्य विक्रेता के चुनाव से संस्था में अशान्ति फैल जाती है।
11. **संस्था का विकास** – संस्था का विकास वस्तुओं के निर्माण एवं विक्रय पर निर्भर करता है। बाजार के विस्तार से लाभो में वृद्धि की जा सकती है इन सबके लिए कुशल विक्रय कर्ता की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है।

12. **अन्य लाभ** – सही चयन व्यवस्था के अन्य लाभ इस प्रकार है।
    1. विक्रेताओं के उचित चयन के उत्पादन में वृद्धि सम्भव है।
    2. अधिक विक्रय एवं उत्पादन से संस्था के लाभो मे वृद्धि होती है।
    3. अच्छे चयन से विक्रेता संस्थाओं में लम्बे समय तक कार्य करते है इससे संस्था के नीतियो तथा कार्य प्रणालियों में स्थायित्व आता है।

विक्रेता के चयन में ध्यान देने योग्य बातें

विक्रेता के चयन में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए।

1. **विक्रय अभिरुचि** – विक्रेता का चुनाव करते समय यह देख लेना चाहिए कि उसकी विक्रय कार्य के प्रति रुचि है या नही। जिन व्यक्तियों में विक्रय में गहरी अभिरुचि होती है केवल वे ही अच्छे विक्रेता सिद्ध हो सकते है।
2. **शिक्षा एवं भाषा** – विक्रेता को अच्छा शिक्षित होना तथा कई भाषाओं का ज्ञान होना आवश्यक है। क्योंकि अनेक प्रकार के भाषा बोलने वाले ग्राहको के साथ व्यवहार करना होता है। विक्रेता के चयन के लिए स्नातक की न्यूनतम शिक्षा के अतिरिक्त विक्रय क्षेत्र में डिप्लोमा या डिग्री होना उपयुक्त रहता है।
3. **आयु** – विक्रेता पद पर कार्य करने वाले व्यक्ति की उपयुक्त उम्र होना आवश्यक है। प्रौढ़ व्यक्ति में कार्य करने की क्षमता कम होती है तथा कम आयु में अनुभव योग्यता की कमी दिखायी देती है अत: ऐसे व्यक्ति का चुनाव होना चाहिए जिसकी उम्र 22 से 35 तक हो।
4. **प्रकृति एवं स्वभाव** – विक्रेता को हंसमुख , मृदुभार्षा, शिष्ट, धैर्यवान और सत्यनिष्ठ होना चाहिए। जिससे ग्राहक तुरन्त प्रभावित हो सके। चयन के समय विक्रेता प्रकृति एवं स्वभाव का गहन अवलोकन किया जाना चाहिए।
5. **आदतें -** विक्रेता के चयन में उसकी आदतों पर विशेष ध्यान देना चाहिए। विक्रेता की जीवनशैली एवं आदतो से उसका व्यवहार निर्मित होता है। बुरी आदतों का केवल विक्रय कार्य में ही नही बल्कि ग्राहकों पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। चयन के लिए विक्रेता के पिछले जीवन की जाँच करनी चाहिए।
6. **उच्च चरित्र** – विक्रेता का चुनाव करते समय उसके चरित्र बल की जाँच करनी चाहिए। चरित्रवान विक्रेता न केवल व्यवसाय की प्रतिष्ठा को बढ़ाते है बल्कि ग्राहको का भी स्थायी रूप से दिल जीत लेते है।
7. **अहंकार का अभाव** – विक्रेता के पद पर कार्य करने वाले व्यक्ति में अंहकार तथा अकड़ नही होना चाहिए जो विक्रेता अपने ज्ञान तथा पद के दम्भ से ग्राहकों के साथ दुर्व्यवहार करते है वे ग्राहकों को नाराज करते है तथा साथ संस्था की प्रतिष्ठा भी खराब करते है। अत: विक्रेता को विनम्र एवं शिष्ट होना चाहिए।
8. **मनोविज्ञान का ज्ञान** – विक्रेता के चयन में इस बात को अवश्य देखना चाहिए कि वह मन का ज्ञाता है। तभी वह ग्राहकों के रुचियों, प्रवृत्तियों, भावनाओं तथा स्वभाव का सरलता से पता लगा लेता है। व्यवहार कुशलता एवं सदृजता लाने के लिए मनोविज्ञान का ज्ञान आवश्यक होता है।
9. **तकनीकी ज्ञान** – ऐसे व्यक्ति योग्य विक्रता सिद्ध हो सकते है। जिसने तकनीकी शिक्षा प्राप्त की हो। ये वस्तु की बारीकियों को आसानी से समझ लेते है तथा ग्राहक को समझा सकते है।

10. **अनुभव** – अनुभवी विक्रेता कुशलता पूर्वक बात करके ग्राहक को तुरन्त प्रभावित कर सकता है। चयन में अनुभव के साथ उसकी योग्यता पर भी ध्यान रखना चाहिए।
11. **राष्ट्रीयता** – विक्रेता के चयन में उसकी राष्ट्रीयता एवं जातीयता पर भी विचार करना चाहिए। किसी विशेष प्रान्त के लिए विक्रेता की नियुक्ति की जाती है तो उस क्षेत्र से सम्बन्धित विक्रेता ही उपयुक्त होगा। यदि विदेशों में विक्रेता की नियुक्ति की जाती हैं तो राष्ट्रीय भावना से ओत प्रोत व्यक्ति का चयन उपयुक्त होगा।
12. **स्वास्थ्य एवं कार्य शक्ति** – विक्रेता की नियुक्ति के लिए शारीरिक स्वस्थता एवं अधिक कार्य शक्ति की जाँच होना आवश्यक है। भ्रमणशील विक्रेता को अनेक क्षेत्रों में अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इसलिए अधिक कार्य शक्ति वाले व्यक्ति का चयन होना चाहिए।
13. **चयन नीति पर विचार** – विक्रेता के चयन के समय संस्था द्वारा बनाई गयी चयन नीति के नियमों को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

विक्रेता के चयन प्रक्रिया में उसकी शारीरिक व मानसिक योग्यता एवं रुचि का विभिन्न प्रकार से परीक्षण किया जाता है तथा योग्य पाने पर ही उसका चुनाव किया जाता है। चयन प्रक्रिया में आवेदक को विभिन्न स्तरों पर विभिन्न प्रकार से परखा जाता है। सभी संस्थानों में समान प्रकार की चयन प्रक्रिया का प्रयोग नही किया जाता है। एक सामान्य चयन प्रक्रिया में निम्न स्तर अथवा चरण हो सकते है –

1. **प्रारम्भिक तैयारियाँ करना** – इन प्रारम्भिक तैयारियों में निम्न कार्य शामिल होते है –
    1. सभी प्रार्थियों का विवरण तैयार करना।
    2. विभिन्न स्रोतों से प्राप्त आवेदन पत्रों पर विचार करना।
    3. प्रारम्भिक रूप से अयोग्य प्रार्थियों एवं अधूरे प्राथनाओं को निरस्त करना।
    4. चयन बोर्ड गठित करना।
    5. चयन नीति एवं सिद्धान्त निर्धारित करना।
    6. चयन जाँच एवं लिखित परीक्षा हेतु प्रश्नपत्र एवं विभिन्न प्रोफार्मा तैयार करवाना।
    7. आवश्यक विशेषज्ञों एवं विभागों से सम्पर्क करना।
    8. निर्धारित प्रारूप वाले रिक्त आवेदन पत्र छपवाना।
2. **नियोजन कार्यालय में प्रार्थी का स्वागत** – संस्था द्वारा दिये गये बुलाये पर जब प्रार्थी संस्था में आता है तो कार्यालय में स्वागत किया जाना चाहिए तथा स्वागत कक्ष में बैठने का स्थान उपलब्ध होना चाहिए। और उसके आत्म सम्मान को किसी प्रकार का ठेस नही पहुचने देना चाहिए। अन्यथा योग्य प्रार्थी ऐसी संस्था में कार्य करना स्वीकार नही करेंगे।
3. **प्रारम्भिक साक्षात्कार** - प्रारम्भिक साक्षात्कार का उद्देश्य अक्षम और अयोग्य व्यक्तियों की छटनी करना है। इसके अन्तर्गत साक्षात्कार कर्ता प्रार्थी से उसकी शैक्षणिक योग्यता, अनुभव, उम्र कार्य रुचि एवं अन्य विशिष्ट कार्य-गुणों आदि के बारे में सूचनायें प्रदान करता है। इस सूचना के आधार पर प्रारम्भिक तौर पर प्रार्थी की योग्यता के बारे में निर्णय किया जा सकता है। इस साक्षात्कार से प्रार्थी की रुचियों

इच्छा, कार्य, लगन, उत्साह आदि के बारे में आधार-सूचनायें प्राप्त की जाती है। तथा योग्य प्रार्थियों को अगले चरण के लिए रोका जा सकता है। इसलिए इसे छटनी साक्षात्कार भी कहा जा सकता है।

4. **चयन जाँच** - चयन जाँच के द्वारा प्रार्थी की योग्यता, चातुर्य, कार्य रुचि, स्वभाव आदि का मूल्यांकन किया जाता है। चयन जाँच के कई प्रकार हैं - योग्यता जाँच, व्यक्तित्व जाँच, अभिरूचि जाँच, उपसब्धि जाँच आदि। संस्था आवश्यकतानुसार किसी भी जाँच के द्वारा आवेदक की योग्यता का परीक्षण कर सकती है। जाँच के द्वारा सही व्यक्ति का सही पद के लिए चयन किया जा सकता है।
5. **मुख्य साक्षात्कार** - साक्षात्कार चयन प्रक्रिया का प्रमुख उपकरण है। जाँच में योग्य पाये जाने वाले प्रार्थियों का साक्षात्कार किया जाता है। लगभग सभी संस्थाओं में साक्षात्कार को चयन पद्धति का प्रमुख आधार माना जाता है। साक्षात्कार अपने भावी कर्मचारी से एक सीधी बातचीत है। विक्रेता की नियुक्ति से पूर्व साक्षात्कार करके, उसकी योग्यता, विचार शैली, आचरण, व्यक्तित्व, वाणी, नेतृत्व, क्षमता आदि की जाँच किया जा सकता है। साक्षात्कार का मुख्य उद्देश्य भावी विक्रेता के साथ सूचनाओं का आदान-प्रदान करना है।
6. **सन्दर्भ जाँच** - सन्दर्भ जाँच का मुख्य उद्देश्य प्रार्थी के चरित्र, आचरण एवं नैतिक व्यवहार की जाँच करना हैं। यह जानना आवश्यक है कि विक्रेता पहले कहीं गलत आचरण एवं छल-कपट का दोषी तो नही रहा है प्रार्थी अपने चरित्र प्रमाण पत्र भी संलग्न करता है जो कई बार गलत पाया जाता है। अत: प्रबन्धकों प्रार्थी के बारे में व्यक्तिगत सम्पर्क करके सही जानकारी प्राप्त करनी चाहिए।
7. **चिकित्सा परीक्षण** - चिकित्सा परीक्षण के द्वारा विक्रेता की शारीरिक अक्षमताओं, बिमारियों व अन्य योग्यताओं का पता लगाया जा सकता है। ऐसा विक्रेता किसी रोग अथवा शारीरिक दुर्बलता के कारण कार्य करने में अयोग्य है उन्हें अस्वीकार किया जा सकता है। इसी लिए विक्रेता को शारीरिक दृष्टि से सक्षम एवं योग्य होना आवश्यक है। योग्य विक्रेता का शारीरिक प्रलेख तैयार किया जाता है ताकि श्रमजीवी क्षतिपूर्ति वाले मामलों में निर्णय लिया जा सके।
8. **सेवा शर्तों का निर्धारण** - प्रार्थी का चयन होने के बाद सेवा की शर्तें निर्धारित की जाती है। कभी कभी सेवा की शर्तो का उल्लेख विज्ञापन एवं साक्षात्कार के समय कर दिया जाता है किन्तु अधिक योग्यता एवं अनुभव प्राप्त प्रार्थियों के लिए सेवा शर्तों में इस स्तर पर परिवर्तन भी किया जा सकता है। सेवा की शर्तो में वेतन, कमीशन, कार्य के घण्टे, सवेतन अवकाश, भत्ते, आवास सुविधा भ्रमण आदि का निर्धारण किया जाता है।
9. **चयन निर्णय एवं नियुक्ति** - प्रार्थियों के संबंधी सभी चरण सफलता पूर्वक पार कर लेने के बाद अंतिम रूप से उन्हें चुन लिया जाता है तथा उन्हें नियुक्ति पत्र दे दिया जाता है। कई संस्थानों में नियुक्ति देने से पूर्व प्रार्थी की सेवा शर्तो पर भी विचार किया जाता है यदि विक्रेता कुशल है तो अधिक वेतन एवं सुविधायें भी देना हानिकारक नहीं होता है।
10. **पदभार सौंपना एवं कार्य परिचय** - प्रार्थी पद भार ग्रहण करने की तिथि से ही वह संस्था का कर्मचारी बन जाता है कार्य सम्भालने पर प्रार्थी को उसके कर्तव्य दायित्व एवं जबाबदेही का ज्ञान करवा दिया जाता है। कार्यभार ग्रहण करने के बाद वह विक्रेता बन जाता है। नये विक्रेता को अपनी संस्था और कार्य

और वातावरण के साथ जोड़ना आवश्यक होता है ताकि वह अपने को संस्था में अपरिचित अनुभव न कर सकें।

3.5. बिक्री बल का मुआवजा

अभिप्रेरणा की परीभाषाये इस प्रकार है –

मैक्फार लैंड के अनुसार - "अभिप्रेरणा का सम्बन्ध किसी कर्मचारी या अधिनस्ध के मन मस्तिष्ठ में कार्य कर रही उन शक्तियों से है जो उसे किसी कार्य को निश्चित विधियों से करने या नही करने के लिए प्रेरित करती है।"

बीच के अनुसार - "अभिप्रेरणा एक लक्ष्य या परिणाम को प्राप्त करने के लिए शक्ति के विस्तार की इच्छा है।"

अभिप्रेरणा का अर्थ एवं परिभाषा - अभिप्रेरणा एक आन्तरिक इच्छा या भावना है जो किसी व्यक्ति को पूर्व निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उत्प्रेरित करती है। यह किसी व्यक्ति की उन इच्छाओं, आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं को समझने की प्रक्रिया है जो उसे किसी कार्य के लिए गति शक्ति एवं उत्साह प्रदान करती है।

अभिप्रेरणा के उद्देश्य - अभिप्रेरणा का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति को कार्य करने के लिए अभिप्रेरित करना है। सामान्यत: अभिप्रेरणा की प्रक्रिया के निम्नालिखित उद्देश्य होते है।

1. विक्रेताओं को अधिक कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करना।
2. कार्यक्षमता में वृद्धि करने हेतु प्रेरित करना।
3. विक्रेताओं को कार्य या सेवा के तरीको में सुधार करने के लिए प्रेरित करना।
4. विक्रेताओं का पूर्ण सहयोग प्राप्त करना।
5. विक्रेताओं का आपस में अच्छे सम्बन्धों का विकास करना।
6. विक्रेताओं के मनोबल को बढ़ाना।
7. विक्रेताओं एवं प्रबन्धकों में अच्छे सम्बन्ध स्थापित करना।
8. विक्रेताओं की आर्थिक सामाजिक और मानसिक आवश्यकताओं को संतुष्ट करना।

अभिप्रेरण प्रक्रिया - विक्रेताओं को अभिप्रेरित करने के लिए एक निश्चित प्रक्रिया अपनायी जाती है। इसमें निम्नलिखित चरण है।

1. **उद्देश्यों का निर्धारण** - विक्रेताओं के अभिप्रेरित करने की प्रक्रिया में सर्वप्रथम उद्देश्यों का निर्धारण हो जाने के पश्चात अभिप्रेरणा के स्तर, साधनो, विधियों, दिशा आदि के सम्बन्ध में उपयुक्त निर्णय लिए जा सकते है। अत: प्रबन्धको को यह निश्चित कर लेना चाहिए कि किन विक्रेताओं को किन कारणों से अभिप्रेरित किया जाना चाहिए।
2. **अभिप्रेरक उपकरणों का निर्धारण** - अभिप्रेरक उपकरणों का निर्धारण देश, काल, समाज एवं विक्रेताओं की आवश्यकताओं तथा संस्था की वित्तीय स्थिति के अनुसार किया जाना चाहिए। इससे ये जाना जा सकता है कि व्यक्ति विशेष या समूह की आवश्यकताएँ क्या है और उसे किस अभिप्रेरणाओं के माध्यम से पूरा किया जा सकता है।

3. **सम्प्रेषण** - अभिप्रेरण को सफल बनाने के लिए यह जरुरी है कि प्रबन्धक अभिप्रेरणा के सन्देश को विक्रेताओं तक पहुचायें तथा विक्रेता की प्रतिक्रिया पर ध्यान दे। आपसी विचार विनिमय एवं संदेश की पुष्टि अभिप्रेरण प्रक्रिया का एक आवश्यक चरण है।
4. **सहायक वातावरण का सृजन** - विक्रेताओं की अभिप्रेरण में सहायक वातावरण का सृजन करना जरुरी है। इसमें कार्य दशाओं एवं भौतिक वातावरण का भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अत: विक्रेताओं को साधन, सुविधाओं एवं प्रशिक्षण उपलब्ध करा के सहायक वातावरण का निर्माण करना चाहिए।
5. **हित संयोजन** - अभिप्रेरण की प्रक्रिया विक्रेताओं के पारस्परिक हितो के संयोजन पर आधारित हों। अभिप्रेरण के साधनों, उपकरणों एवं विधियों के निर्धारण में संस्था एवं विक्रेताओं के व्यक्तिक हितों में इस प्रकार से सामन्जस्य किया जाना चाहिए कि विक्रेताओं को अधिक से अधिक प्रेरणा मिल सके।
6. **उपयुक्त अभिप्रेरक का चयन एवं प्रयुक्ति** - अभिप्रेरण योजना का चयन अत्यन्त सर्तकता के साथ किया जाना चाहिए अभिप्रेरकों के चयन के समय अभिप्रेरण योजनाओं के पिछले परिणामों एवं भावी सम्भावनाओं को ध्यान में रखा जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, अभिप्रेरण योजनाओं को लागू करने के समय पद्धति का भी निर्धारण किया जाना चाहिए।
7. **समूह भावना का विकास** - अभिप्रेरण प्रक्रिया का एक अंग समूह भावना का विकास भी है। विक्रेताओं को कार्य एवं प्रयत्न संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए होने चाहिए। समूह भावना को विकसित करने के लिए व्यक्ति के स्थान पर समूह या संस्था के महत्व को स्वीकार किया जाना चाहिए।
8. **अनुवर्तन** - इस चरण में लागू की गई अभिप्रेरण योजनाओं की जाँच की जाती है। तथा उनसे उत्पन्न परिणामों की पूर्व निश्चित परिणामों से तुलना की जाती है। अभिप्रेरण योजनाओं से आवश्यक परिणाम न प्राप्त होने पर उनके कारणों का पता लगाकर उनको दूर करने की कार्यवाही की जाती है। इस चरण से अभिप्रेरण योजनाओं का मूल्यांकन किया जाता है ताकि भावी योजनाओं का विकास एवं क्रियान्वयन सही प्रकार के किया जा सके।

3.6. बिक्री कर्मियों का नियंत्रण

विक्रेता अभिप्रेरणा की समस्त विधियों को निम्न दो भागों में बाँटा गया है ।

1. वित्तीय पद्धति
2. अवित्तीय पद्धति

1. **वित्तीय पद्धतियाँ** – अभिप्रेरणा की वित्तीय पद्धतियों में वेतन एवं कमीशन योजना, आहरण लेखा योजना, लाभ भागिता योजना, बोनस योजना, विशिष्ट कार्य योजना, अनुषंगी लाभ योजना, अभ्यंश योजना आदि को मुख्य रूप से सम्मिलित किया जाता है।
2. **अवित्तीय पद्धतियाँ** – एक व्यक्ति के जीवन में वित्तीय लाभ ही सब कुछ नही होता है बल्कि मनुष्य कई मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी कार्य करता है जो कि अवित्तीय प्रेरणाओं द्वारा पूरी की जाती है। मुद्रा जब अभिप्रेरक के रूप में प्रभावी नही होती तो कई अवित्तीय अभिप्रेरणाओं जैसे – आत्मसम्मान, पदोन्नति, व्यक्ति के साथ सही व्यवहार, कुशल नेतृत्व, उत्तरदायित्व, दलीय भावना,

वैयक्तिक सम्पर्क, कार्य मान्यता आदि का प्रयोग किया जाता है। अवित्तीय अभिप्रेरण पद्धति को दो भागों में बांट कर अध्ययन किया जाता है।

1. वैयक्तिक अभिप्रेरण पद्धति 2. सामूहिक पद्धतियाँ

1. **वैयक्तिक अभिप्रेरण पद्धतियाँ** - वैयक्तिक पद्धतियाँ विक्रेताओं की व्यक्तिगत इच्छाओं, आवश्यकताओं एवं रुचियों के अनुरूप विकसित एवं प्रयुक्त की जाती है। ये पद्धतियाँ मानव पकृति के वैयक्तिक अन्तरों पर आधारित होती है। वैयक्तिक अभिप्रेरणा की प्रमुख पद्धतियाँ निम्न हो सकती है।

i) **विक्रेताओं से व्यक्तिगत सम्पर्क** – विक्रय प्रबन्धको तथा विक्रय निरक्षको द्वारा विक्रेताओं से समय-समय पर व्यक्तिगत भेट करके विक्रेताओं को सरलता पूर्वक अभिप्रेरित किया जा सकता है। प्रबन्धक विक्रेताओं के कार्य को मान्यता प्रदान करके प्रशंसा करके उनकी समस्याओं का ज्ञान करके उनके परिश्रम की सहायता करके विक्रेताओं को अभिप्रेरित कर सकते है। तथा उनकी समस्याओं का समाधान कर सकते है। व्यक्तिगत सम्पर्क के कारण विक्रेताओं की दबी हुई भावना का रंचन होता है तथा संस्था के प्रति अपनत्व की भावना पैदा होती है। तथा उनके व्यक्तिगत हितो की सुरक्षा होती है।

ii) **विक्रेताओं से पत्राचार** – पत्र व्यवहार के द्वारा विक्रेता के साथ अपनापन, पारस्पिरक समझ एवं आत्मविश्वास उत्पन्न किया जा सकता है। पत्र व्यवहार सम्प्रेषण का एक प्रभावी उपाय है जो विक्रेताओं को स्व–अभिव्यक्ति एवं वैयक्तिक एवं व्यवसायिक समस्याओं पर पारस्परिक विचार विनिमय का अवसर प्रदान कर उन्हें अभिप्रेरित करता है।

iii) **पदोन्नति** – संस्था में विक्रेताओं को अभिप्रेरित करने के लिए निष्पक्ष एवं समयानुकूल पदोन्नतियो की व्यवस्था करनी चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति में पदोन्नति की चाह एक स्वभाविक इच्छा है। इसकी प्राप्ति के लिए व्यक्ति अपनी योग्यता व कार्यक्षमता में वृद्धि करता है तथा अपने व्यक्तित्व व्यवहार को प्रभावी बनाता है। पदोन्नति के लिए कर्मचारी अपने लक्ष्य पूर्ति का प्रयास करता है तथा अपने अधिकारियों को यथा सम्भव प्रसन्न रखने की कोशिश करता है। पदोन्नति हमेशा योग्यता के आधार पर पक्षपात रहित तथा नियमो अनुसार की जानी चाहिए।

iv) **उत्तरदायित्व** - मनोवैज्ञानिको का मत है कि उत्तरदायित्व की भावना का विकास अभिप्रेरणा की एक महत्वपूर्ण विधि है। उत्तरदायित्व से व्यक्ति की क्षमता को चुनौती मिलती है। और वह अधिक कार्य करने के लिए प्रेरित होता है। इस प्रकार विक्रेताओं को दैनिक कार्यों के अतिरिक्त् अन्य महत्वपूर्ण कार्यों का दायित्व सौपकर अभिप्रेरित किया जा सकता है। अधिक उत्तरदायित्व से विक्रेता की कार्य के प्रति निष्ठा, प्रतिष्ठा, नेतृत्व व संतुष्टि में भी स्वत: ही वृद्धि हो जाती है।

v) **विकास के अवसर** – विक्रेताओं को अभिप्रेरित करने के लिए उन्हें अपनी योग्यताओं, कौशल को विकसित करने के अवसर देने चाहिए। संस्था में विक्रेताओं के बौद्धिक एवं सांस्कृतिक विकास की पूर्ण सुविधायें उपलब्ध होनी चाहिए। विक्रेता के लिए प्रशिक्षण, शिक्षा, बौद्धिक चर्चा के अतिरिक्त वाचनालय, क्लब आदि का भी उचित प्रबन्ध किया जाना चाहिए।

vi) **निष्पादन भावना** – विक्रेताओं में कार्य निष्पादन की भावना एवं सन्तुष्टि उत्पन्न करके भी उन्हें अभिप्रेरित किया जा सकता है। इसके लिए उन्हें कार्य स्वतन्त्रता, पहलपन, सृजनशीलता के अवसर

दिये जाते चाहिए। उन्हें समय-समय पर विभिन्न सूचनायें दी जानी चाहिए। कार्य के कुशल निष्पादन का भावना भी विक्रेताओं को अभिप्रेरित करता है।

vii)**मान्यता एवं पुरस्कार** – विक्रेताओं के अच्छे कार्यों की प्रसन्नता की जानी चाहिए। उत्तम कार्य, उपलब्धियों एवं निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति के फलस्वरूप उन्हें वैयक्तिक रूप से पुरस्कृत किया जाना चाहिए।

ब) सामूहिक अभिप्रेरण पद्धतियाँ

विक्रेताओं की एक समूह के रूप में भी अभिप्रेरित किया जाता है। इसके लिए अनेक प्रकार की विधियाँ, जैसे विक्रय सम्मेलन प्रतियोगिताएँ विक्रय साहित्य, सहभागिता, विक्रय पर्यवेक्षण, श्रव्य-दृश्य साधनो आदि का प्रयोग किया जाता है। इसकी प्रमुख पद्धतियाँ हो सकती है।

1. **विक्रय सम्मेलन एवं सभायें** – विक्रय सम्मेलन एवं सभायें समूह अभिप्रेरणा प्रदान करने की एक महत्वपूर्ण विधि है। ये अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय, प्रादेशिक अथवा स्थानीय स्तर पर आयोजित की जाती है। इन सम्मेलनों व सभाओं में भाग लेने वाले प्रतिनिधि सामान्यत: समान पद और योगयता वाले होते है। ये सम्मेलन एवं सभायें विक्रय कर्त्ताओं का एक दूसरे व्यवहार प्रारूप को समझने तथा निर्धारित करने का अवसर प्रदान करती है। विक्रय सम्मेलन तथा विक्रय सभाओं में अन्तर बताते हुए जे. आर. डाबमेन लिखते है कि "विक्रय सभायें निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए बुलाई जाती है, जिनकी निश्चित प्रधायें हैं जिनके पीछे सामान्य व्यवहार होता है, जबकि सम्मेलन विचार-विमर्श के लिए आयोजित किया इसके द्वारा विक्रेताओं के मनोवल, ज्ञान व संस्था के प्रति निष्ठा में वृद्धि की जा सकती है।
2. **विक्रय प्रतियोगिताएँ** – अभिप्रेरण का एक सुदृढ़ साधन विक्रय प्रतियोगिता का आयोजन भी है। इसके द्वारा विक्रेताओं में प्रतिस्पर्धा, चुनौती एवं उत्साह का वातावरण निर्मित करके उन्हें अधिक विक्रय के लिए प्रेरित किया जा सकता है। प्रतियोगिताओं द्वारा विक्रेताओं में अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के प्रति जोश उत्पन्न किया जा सकता है। विक्रय प्रतियोगिता वह विशिष्ट विक्रय अभियान है जो विक्रेताओं को निश्चित रूप से प्राप्त होने वाले पारिश्रमिक के अतिरिक्त अधिक पुरस्कार या सम्मान के रूप में प्रेरणा देता है। विक्रय प्रतियोगिताओं के द्वारा योग्य विक्रेताओं की खोज की जा सकती है।
3. **विक्रेताओं के लिए पत्र –पत्रिकायें** – संस्था द्वारा प्रकाशित पत्र-पत्रिकायें विक्रेताओं को अभिप्रेरित करने का एक अच्छा साधन है इनमें समय-समय पर विक्रेताओं के विचारों एवं लेखों का प्रकाशन किया जाता है उनके कार्यों उपलब्धियों की प्रंशसा की जाती है पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा विक्रेताओं को नये उत्पादों, नये अनुसंधानों एवं नयी विक्रय तकनीकि से अवगत कराया जाता है। उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों, नई फर्मों व अन्य स्थितियों से अवगत कराया जाता है इसके माध्यम से विक्रेता अपनी संस्था के विकास विस्तार विक्रय व्यूह रचनाओं व विक्रय प्रसार कार्यक्रमों से अवगत हो जाते है। अभिप्रेरणा की यह विधि लोचपूर्ण भी है क्योंकि पत्र-पत्रिकाओं के समय संदेश व आकार-प्रकार में आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जा सकता है।
4. **विक्रेताओं के लिए विक्रय साहित्य** – अभिप्रेरणा प्रदान करने में विक्रय साहित्य का अत्यधिक महत्व है। कई व्यवसायिक संस्थायें अपने विक्रेताओं को यह जानकारी देने तथा उन्हें अभिप्रेरित करने के

लिए लघु पुस्तिकायें, हैण्डबुक, बुलेटिन्स व फोल्डर्स आदि छपवाती है। जिसमें संस्था द्वारा विक्रेताओं को दी जाने वाली विभिन्न सुविधाओं आदि के बारे विस्तृत वर्णन दिया जाता है।

5. **सहभागिता** – सहभागिता विक्रेताओं को अभिप्रेरित करने की एक महत्वपूर्ण पद्धति है इसके अनुसार विक्रेताओं से विभिन्न मामलों में विचार विनिमय करके उन्हें प्रबन्ध में 'हिस्सा देकर एवं विक्रय योजनाओं एवं नीतियों के निर्माण में उन्हें सम्मिलित करके अभिप्रेरित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त विक्रेताओं को विभिन्न महत्वपूर्ण निर्णयों व विक्रय व्यूह रचनाओं के निर्धारण में भी भागीदार बनाया जा सकता है।
6. **विक्रय पर्यवेक्षण एवं सम्बन्ध** – विक्रेताओं को अभिप्रेरित करने में विक्रय परिपेक्षको तथा उनके साथ बनने वाले सम्बन्धों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। संगठन के परिवेक्षक की स्थिति दोहरी होती है। जहाँ एक ओर वो प्रबन्धक के प्रतिनिधि होते है वही दूसरी ओर वे विक्रेताओं के निकटूस्थ अधिकारी एवं प्रतिनिधि की होते है। परिवेक्षक अपने उदार नियन्त्रण, योग्य मार्गदर्शन विक्रय समस्याओं के समाधान, मानवोचित, व्यवहार एवं विक्रेताओं की आवश्यकताओं पर पर्याप्त रूप से ध्यान देकर उन्हें अभिप्रेरणा प्रदान कर सकते है। इसके अतिरिक्त परिवेक्षक प्रबन्धकीय नीतियो, नियमो, उद्देश्यों व कार्यक्रमों की सही व्याख्या करके विक्रेताओं के कार्य निष्पादन में सहायता कर सकते है। साथ ही पर्यवेक्षक विक्रेताओं की कठिनाइयों, आकाक्षाओं व जरुरतों का प्रबन्धकों के समझ उचित प्रस्तुती कर सकते है।
7. **विक्रेताओं के लिए चलचित्र** – विक्रय कर्ताओं को अधिप्रेरित करने के लिए आधुनिक युग में चलचित्रों का भी व्यापक प्रयोग किया जा रहा है। कई संस्थाये अपने विक्रयकर्ताओं को उत्पादों, विक्रय गतिविधियों, ग्राहक व्यवहार व स्वयं संस्था के बारे में विस्तृत जानकारी देने के लिए छोटी-छोटी फिल्में तैयार कर लेती है। इसके माध्यम से विक्रेताओं को विविध मामलो जैसे – विक्रय प्रविधि, ग्राहक मनोविज्ञान, क्रय प्रेरणाओं, ग्राहक की आपत्तियों के समाधान की विधि, उत्पादों के निर्माण, विक्रय कौशल, बाजार व्यूह रचनाओं, क्रियात्मक प्रदर्शन, सजावट, विक्रय क्षेत्र प्रबन्ध आदि का ज्ञान करवाया जा सकता है। फलस्वरूप विक्रेताओं की कार्य के प्रति रुचि व जिज्ञासा बढ़ती है तथा मनोबल तथा आत्मविश्वास में वृद्धि होती है।

विक्रयकर्ता का नियन्त्रण

विक्रेताओं के नियन्त्रण का अर्थ एवं परिभाषा –

नियन्त्रण विक्रय प्रबन्धक का एक महत्वपूर्ण कार्य है, जिसके द्वारा यह ज्ञात किया जाता है कि समस्त विक्रय कार्यों का निष्पादन सही ढ़ंग से हो रहा है या नही। विक्रेता पूर्व निर्धारित योजनाओं और सिद्धान्तों के अनुरूप कार्य कर रहे हैं या नही। यदि विक्रेता अपने लक्ष्यों की प्राप्ति योजनाओं के अनुसार नही कर रहे है तो उनके क्या कारण है और उन्हे कैसे दूर किया जा सकता है।

बिली ई. गोत्ज लिखते है कि "नियन्त्रण से आशय घटनाओं को योजनाओं के अनुरूप बनाने से है।" कोटलर ने लिखा है कि "नियन्त्रण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा वास्तविक परिणामों को इच्छित परिणामों के निकट लाने के प्रयास किये जाते है।"

विक्रेता नियन्त्रण से आशय यह देखना है कि विक्रेता पूर्व निर्धारित विक्रय कार्यक्रमो, लक्ष्यो एवं योजनाओं के अनुरूप कार्य कर रहा है कि नही तथा विचलन की स्थिति में उसे सुधारात्मक कार्यवाही करना है ताकि इच्छित विक्रय परिणामों के लाभ को प्राप्त किया जा सके।

विक्रय-शक्ति नियन्त्रण की आवश्यकता एवं महत्व – विक्रय विभाग के उद्देश्यों की पूर्ति का भी विक्रय-शक्ति पर नियन्त्रण बनाये रखने में निहित है। संक्षेप में विक्रय कर्मचारियों पर नियन्त्रण की आवश्यकता एवं महत्व को निम्न शीर्षको में स्पष्ट किया गया है।

1. **विक्रय लक्ष्यो की पूर्ति** – नियन्त्रण के द्वारा विक्रेताओं के कार्यों लक्ष्यों की ओर निर्देशित करके इन्हे शीध्रता से न्यूतम लागत पर प्राप्त किया जा सकता है।
2. **न्यूतम व्यय पर आधिकाधिक विक्रय** – नियन्त्रण के द्वारा विक्रेताओं की कमियों को जात करके दूर कर दिया जाता है। फलस्वरूप उसके प्रयास उत्पादक एवं लाभप्रद बन जाते है। इसी से न्यूनतम व्ययों पर अधिकांश विक्रय के लक्ष्य को पूरा किया जा सकता है।
3. **योजना निर्माण में सहायक** – नियन्त्रण प्रक्रिया के द्वारा लक्ष्य पूर्ति के स्तर पूर्ति में आने वाली बाधाओं आदि का विक्रय प्रबन्धक को अच्छा ज्ञान हो जाता है। यह अनुभव भावी विक्रय योजनाओं के निर्माण में सहायक होता है।
4. **कार्य क्षमता का ज्ञान** – नियन्त्रण के द्वारा विक्रय प्रबन्धक को विक्रय कर्मचारियों की दक्षता एवं निष्पादन क्षमता का ज्ञान हो जाता है। इससे विक्रय कर्मचारियों को उनकी क्षमताओं के अनुसार कार्य सौपा जा सकता है।
5. **कमियों में सुधार** – संस्था में प्रयुक्त की जाने वाली नियन्त्रण प्रणाली विक्रेताओं की कमियों तथा उनके कारणों की खोज कर लेती है। इस प्रकार विक्रेता इन कमियों को दूर करके अपनी कार्यक्षमता में वृद्धि कर सकते है।
6. **प्रशिक्षण की आवश्यकता का निर्धारण** – नियन्त्रण के द्वारा विक्रेताओं की वैयक्तिक दुर्बलताओं, चातुर्य के अभाव एवं आत्म दोषपूर्ण विधियों का ज्ञान हो जाता है। फलस्वरूप इन कमियों को दूर करने के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता का निर्धारण किया जा सकता है।
7. **अभिप्रेरणा** – वास्तविक परिणामों का मूल्यांकन करके विक्रय कर्मचारियों की सफलता एवं असफलता का मापन किया जा सकता है। सफलता की दशा में विक्रेताओं को अधिक वेतन, पदोन्नति सहभागिता आदि प्रदान करके अभिप्रेरित किया जा सकता है।

विक्रय-शक्ति नियन्त्रण की प्रक्रिया –

स्टिल, केडिफ एवं गोवोनी के अनुसार विक्रय शक्ति नियन्त्रण की प्रक्रिया को निम्न चार चरणों में विभाजित किया जाता है। जो इस प्रकार है –

1. **निष्पादन प्रमापो की स्थापना** – प्रमाप ऐसे मापदण्ड है जिनके आधार पर वास्तविक कार्य की जाँच की जाती है। प्रमापों का निर्धारण नियन्त्रण प्रक्रिया का प्रारम्भिक चरण होता है। यह विक्रय विभाग का दायित्व होता है कि वह विक्रेताओं की क्रियाओं पर नियन्त्रण करने के लिए व्यवहारिक एवं

प्रेरक प्रमापो को स्थापना करे प्रमापों के निर्धारण के समय निम्न बातों पर विचार किया जाना चाहिए।

1. विक्रेता के कार्यों, योग्यताओं, अधिकारों, कर्तव्यों आदि का ध्यान करके विक्रय प्रमाप निर्धारित किये जाने चाहिए।
2. बाजारों की स्थिति उसमें विक्री की सम्भावनाओं, प्रतियोगिताओं के स्तर आदि को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

2. **वास्तविक निष्पादन का मापन** – इस चरण में विक्रय प्रबन्धक यह मासूम करते है कि विक्रेताओं ने अपने सौपे गये कार्यों को कहाँ तक पूरा किया है तथा किस रूप में पूरा किया है। विक्रेताओं के कार्य के प्रगति का मापन विभिन्न सूचनाओं के आधार पर किया जाता है जैसे – आन्तरिक विक्री, व्यय लेखो तथा विभिन्न प्रतिवेदनों के द्वारा।
3. **प्रमापो के साथ वास्तविक निष्पादन की तुलना करना** – इस चरण में विक्रेता के निष्पादन का मूल्यांकन होता है। इस चरण का उद्देश्य विक्रेता के वास्तविक कार्यों का प्रमाप से विचलन की मात्रा ज्ञात करना है। यदि विक्रेता का कार्य-निष्पादन निर्धारित प्रमापपों के आधार पर होता है तो उसका कार्य सन्तोषजनक है। यदि विक्रेता का कार्य निष्पादन निर्धारित प्रमापो के आधार पर नही है तो उसकर कार्य सन्तोष जनक नही है और उसमें सुधार करने की जरुरत है।
4. **सुधारात्मक कार्यवाही करना-** इस प्रक्रिया के अन्तर्गत विक्रय प्रबन्धक को सुधारात्मक कार्यवाही करने अथवा न करने का निर्णय लेना होता है। यदि विक्रेता का कार्य निष्पादन निर्धारित प्रमापों के अनुसार होता है तो विक्रय प्रबन्धक को कोई कार्यवाही करने की आवश्यकता नही होती है यदि वास्तविक निष्पादन प्रमापो के अनुसार नही है तो विक्रय प्रबन्धक को सुधारात्मक कार्यवाही करनी होती है। यह कार्यवाही निम्न प्रकार से की जा सकती है।

1. उद्देश्य प्राप्ति के प्रयासो को बढ़ाकर निष्पादन के प्रमापो के अनुसार समायोजित करना।
2. विक्रय लक्ष्यों को कुशलतापूर्वक प्राप्त किया जा सके इसके लिए निर्धारित की गई नीतियों, व्यूहरचनाओं तथा योजनाओं में संशोधन करना।
3. मूल्यांकन आधारों व लक्ष्यों में संशोधन करके उन्हें अधिक व्यवहारिक करना।

विक्रेताओं के नियन्त्रण एवं पर्यवेक्षण की विधिया

विक्रेताओं की क्रियाओं पर नियन्त्रण एवं पर्यवेक्षण रखने के लिए निम्नलिखित विधियाँ प्रयुक्त होती है।

1. **व्यक्तिगत सम्पर्क द्वारा** – इसके अन्तर्गत व्यक्तिगत सम्पर्क एवं पर्यवेक्षण का कार्य विक्रेता के कार्य स्थल पर जाकर किया जाता है। यह कार्य स्वयं विक्रय प्रबन्धक द्वारा अथवा बड़ी संस्था में यह कार्य क्षेत्रीय, विभागीय अथवा शाखा प्रबन्धको द्वारा किया जाता है। तथा निरिक्षण करने पर जो भी त्रुटियाँ ठीक करनी होती है उसे तत्काल ठीक किया जाता है। विक्रेता को अपनी गल्तियों को ठीक करने के लिए तत्काल सुझाव दिये जाते है। व्यक्तिगत सम्पर्क द्वारा निरीक्षण की यह विधि छोटी व मध्यम श्रेणी के फर्मो मे तो प्रभावशाली रहती है किन्तु एक बड़ी संस्था में यह खर्चीली सिद्ध होती है।

2. **विक्रय लक्ष्यों द्वारा** – इसके विक्रेता के साप्ताहिक, पाक्षिक या मासिक लक्ष्य निर्धारित कर दिये जाते है तथा उसके कार्यालय के अभिलेख से यह जात किया जाता है उसने उन लक्ष्यों की प्राप्ति में क्या प्रगति की है। लक्ष्यों से दूर रहने पर विक्रेता को विक्रय प्रयासो में तेजी लाने के लिए आवश्यक निर्देश दिये जाते है।
3. **पत्राचार द्वारा** – इस विधि के अन्तर्गत विक्रेताओं से पत्राचार करके आवश्यक सूचनायें मागी जाती है तथा उन सूचनाओं कर विश्लेषण करके आवश्यक निर्देश दिये जाते है।
4. **प्रतिवेदनो के द्वारा** – इस विधि में विक्रेताओं से समय-समय पर विभिन्न प्रकार के प्रतिवेदन जैसे – प्रगति प्रतिवेदन, कार्य योजना प्रतिवेदन, व्यय प्रतिवेदन आदि मगायें जाते हैं। इन प्रतिवेदनों का अध्ययन एवं विश्लेषण करके विक्रेताओं के कार्य का मूल्यांकन किया जाता है।
5. **समूह निरीक्षण** – इसके अन्तर्गत विक्रेता समुदाय का मासिक सम्मेलन बुलाया जाता है तथा उसमें विक्रय प्रगति तथा विक्रय कार्य में आने वाली कठिनाइयों पर विचार किया जाता है तथा उन्हें उपयुक्त निर्देश दिये जाते है।
6. **विक्रय नीतियाँ** – विक्रय विभाग द्वारा विक्रय नीतियों का निर्माण किया जाता है जो विक्रेताओं के कार्यों का मार्गदर्शन करते हैं। विक्रय नीतियों में साख नीति, मूल्यनीति, छूट एवं समायोजन तथा बिक्री के सामान्य शर्ते सम्मिलित होती हैं। विक्रेता इन नीतियों का पालन कर रहा है या नही, इसकी जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

बिक्री बल का प्रशिक्षण एवं विकास

विक्रेता के चयन के पश्चात् प्रशिक्षण के द्वारा उसके गुणों एवं योग्यताओं को और भी अधिक विकसित किया जा सकता है। प्रशिक्षण के द्वारा विक्रेता को विक्रय कला के सिद्धान्तो, विधियो एवं व्यवहार का व्यवस्थित ज्ञान करवाया जा सकता है।

वर्तमान समय में विक्रेताओं के लिए प्रशिक्षण की अनिवार्यता और बढ़ गयी है। विक्रय की नई तकनीको से अवगत कराने हेतु प्रशिक्षण देना आवश्यक होता है। प्रशिक्षण को आवश्यकत आधार भूत एवं सार्वभौमिक है। अनुभव हीन विक्रेताओं को स्पष्ट रूप से सिखाया जाना चाहिए किस तरह विक्रय कर्ता की भाति कार्य करना चाहिए और किस तरह सफल विक्रेता बना जा सकता है।

विक्रय प्रशिक्षण का अर्थ एवं परिभाषायें –

किसी कार्य को विवेकपूर्ण एवं सही ढ़ंग से करने के लिए सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक ज्ञान एवं कौशल की आवश्यकता होती है। जिसे प्रशिक्षण के द्वारा सीखा जा सकता है। प्रशिक्षण किसी विशेष कार्य को करने हेतु कर्मचारी के ज्ञान एवं कौशल में अभिवृद्धि करने की एक क्रिया है। अत: यह कहा जा सकता है कि प्रशिक्षण एक ऐसी क्रिया है जिसके द्वारा किसी कार्य को करने के कौशल में वृद्धि की जाती है। जब विक्रय का कार्य करने हेतु कौशल का विकास करने के लिए प्रशिक्षण दिया जाता है तो उसे विक्रय प्रशिक्षण कहते हैं।

विक्रय प्रशिक्षण की विशेषतायें –

विक्रय प्रशिक्षण को निम्नलिखित विशेषतायें हैं –

1. विक्रय प्रशिक्षण में विक्र से सम्बन्धित सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक ज्ञान प्रदान किया जाता है।
2. विक्रय प्रशिक्षण विक्रय-कार्य में निपुणता प्राप्त करने हेतु दिया जाता है।
3. विक्रय प्रशिक्षण से विक्रय संगठन एवं विक्रेता दोनों को लाभ मिलता है।
4. प्रशिक्षण नये एवं पुराने सभी विक्रेताओं के लिए हितकर होता है।
5. विक्रय प्रशिक्षण से ग्राहकों को अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त होती है।
6. विक्रय प्रशिक्षण समस्याओं के समाधान का प्रभावपूर्ण ढंग है।
7. विक्रय प्रशिक्षण के द्वारा चिन्तन की शैली व अभिरुचि में परिवर्तन लाया जा सकता है।

विक्रय प्रशिक्षण के उद्देश्य – विक्रय प्रशिक्षण के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है।

1. विक्रय प्रशिक्षण का प्रमुख उद्देश्य विक्रेताओं के कार्यों को सफल तथा प्रभावोत्पादक बनाना है।
2. विक्रय कला के सिद्धान्तों का ज्ञान कराना है।
3. विक्रय विधि के प्रमुख कारणों की जानकारी देना।
4. संस्था के वस्तु के गुण एवं विशेषताओं का ज्ञान कराना।
5. विक्रय संवर्द्धन विधियों की जानकारी देना।
6. विक्रेताओं को नवीन विक्रय तकनीको से अवगत कराना।
7. विक्रेताओं के मनोबल को बढ़ाना।
8. संस्था को छोड़ने वाले विक्रेताओं के पद को सम्भालने हेतु प्रशिक्षित विक्रेता तैयार करना।

विक्रय प्रशिक्षण के प्रकार – विक्रय प्रशिक्षण मुख्य रूप से तीन प्रकार का होता है।

1. **प्रारम्भिक प्रशिक्षण** – इस प्रशिक्षण में निम्न बातों के ज्ञान पर विशेष ध्यान दिया जात है। 1. संस्था के लक्ष्य एवं नीतियाँ 2. विक्रय कला के सिद्धान्त, तकनीकि एवं विभिन्न विक्रय पद्धतियाँ 3. ग्राहको के स्वभाव एवं प्रवृत्ति का ज्ञान 4. वस्तु के बारे में जानकारी 5. वितरण प्रणालियों का ज्ञान 6. विक्रय बाजार एवं अनुसंधान 7. विक्रय पेशे की जानकारी। 8. ग्राहको के मनोविज्ञान का अध्ययन करना आदि।
2. **क्षेत्र प्रशिक्षण** – प्रारम्भिक प्रशिक्षण के बाद विक्रता को किसी वरिष्ठ विक्रेता के साथ फील्ड में भेजा जाता है। वरिष्ठ विक्रेता उसे आवश्यक मार्गदर्शन प्रदान कर उसकी विक्रय योग्यता में निखार लाता है। इसी कारण उसमें कार्य करने की प्रेरणा, लगन एवं उत्साह जागृत होता है।
3. **पुनश्चर्या प्रशिक्षण** – इसके अर्न्तगत पुराने विक्रेता के विक्रय ज्ञान को ताजा करने के उद्देश्य से उसे नवीनतम् विक्रय तकनीको विधियों एवं अभिनव विक्रय प्रक्रियाओं का ज्ञान करवाया जाता है। विक्रय क्षेत्र में होने वाले नवीन अनुसंधानों एवं वस्तु, ग्राहक रुचि फैशन, आदतें, बाजार, प्रतिस्पर्धा आदि में हुए परिवर्तनों से उसे अवगत कराया जाता है।

विक्रय प्रशिक्षण के सिद्धान्त

विक्रय प्रशिक्षण के सिद्धान्त इस प्रकार हैं –

1. **उद्देश्यों पर आधारित** – प्रशिक्षण एक उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया है यह स्पष्ट होना चाहिए कि विक्रेता को प्रशिक्षण देने का मूल लक्ष्य क्या है। प्रशिक्षण उद्देश्य को तीन भागो ये बांट सकते हैं 1. प्रबन्धक उद्देश्य 2. प्रशिक्षार्थी उद्देश्य 3. विभागीय उद्देश्य। उद्देश्य के अनुसार प्रशिक्षण ज्यादा प्रभावी होता है। उद्देश्यों के निर्धारित हो जाने पर कार्यक्रम का मूल्यांकन करना सुगम हो जाता है तथा इसे ठीक दिशा में चलाना संभव हो जाता है।
2. **विषय सामग्री का निर्धारण** – प्रशिक्षण योजना बनाते समय विक्रेताओं को दिये जाने वाले प्रशिक्षण की विषय सामग्री की सुनिश्चित करनी चाहिए। विषय सामग्री में सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक दोनो प्रकार की विषय वस्तु सम्मिलित की जानी चाहिए। इन विषयों में संस्था का इतिहास, नीतियाँ, उद्देश्य, वस्तु से सम्बन्धित जानकारी, विक्रय प्रक्रिया, विक्रय नीति, साख नीति, ग्राहक मनोविज्ञान, वितरण, विक्रय प्रतिवेदन, मूल्य निर्धारण, बिल बनाना, सरकारी नियम आदि सम्मिलित होनी चाहिए।
3. **प्रशिक्षण का क्षेत्र** – प्रशिक्षण विक्रय विभाग के समस्त कर्मचारियों को प्रदान किया जाना चाहिए। केवल बड़े पदों पर कार्य करने वाले विक्रय कर्मचारीयों को ही प्रशिक्षण कार्यक्रम में शामिल करना सही नही हैं बल्कि निचले स्तर के कर्मचारियों को प्रशिक्षण की आवश्यकता ज्यादा जरुरी है।
4. **प्रशिक्षण विधियाँ** – प्रशिक्षण विधियों को चयन संस्था की आवश्यकता एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखकर किया जाता है। प्रशिक्षण विधि मितव्ययी, विक्रेताओं के अनुरूप व सन्तोषजनक होनी चाहिए।
5. **प्रशिक्षण का दायित्व** – प्रशिक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत यह भी सुनिश्चित होना चाहिए कि प्रशिक्षण का दायित्व स्वयं निस्था का है या विक्रय विभाग का। प्रशिक्षण के कार्य में बाहरी संस्थायें उतनी रुचि नही लेती जितनी स्वंय की संस्था ले सकती है। अत: प्रशिक्षण का दायित्व स्वयं संस्था को ही ग्रहण करना चाहिए।
6. **योग्य प्रशिक्षक** – प्रशिक्षण की विषय वस्तु के अनुरूप प्रशिक्षक पूर्णत: सक्षम एवं प्रभावशाली होने चाहिए अन्यथा प्रशिक्षण के उद्देश्यों की पूर्ति न हो सकेगी।
7. **मितव्ययी** – प्रशिक्षण कार्यक्रम में प्रशिक्षण पर कितना ध्यान व्यय किया जाना है, उसकी पूर्ति किस प्रकार होगी, यह पूर्व निश्चित होना चाहिए। संस्था की वित्तीय स्थिति को ध्यान में रखकर प्रशिक्षण कार्यक्रम तैयार करना चाहिए।
8. **विविधता** – प्रशिक्षण कार्यक्रम ऐसा हो जो विक्रेताओं को विक्रय के विभिन्न पहलुओं का अनुभव प्रदान करने में समर्थ हो। विक्रेताओं को व्यवहारिक व सैद्धान्तिक दोनों प्रकार का ज्ञान कराया जाना चाहिए।
9. **सरलता** – प्रशिक्षण कार्यक्रम सरल होने चाहिए ताकि विक्रेता उसे सरलता से ग्रहण कर सके तथा उसका संचालन भी प्रभावशाली ढ़ंग से किया जा सके। जटिल प्रशिक्षण से प्रशिक्षर्थियों की रुचि कम हो जाती है तथा इससे कोई लाभ नही होता है।

10. **अभिप्रेरणा** – प्रशिक्षण में प्रेरणा का विशेष स्थान होता है। एक अच्छे प्रशिक्षण कायक्रम में यह होता है कि वह प्रशिक्षार्थियों को सीखने व ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रेरणा प्रदान करता है।
11. **सहभागिता** – विक्रेताओं को जो वो सीखते है करने का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए। इस सिद्धान्त को प्रशिक्षण योजना में लागू किया जाना चाहिए। प्रशिक्षण में विक्रेताओं की सक्रिय भागीदारी होनी चाहिए।
12. **नवीन ज्ञान का समावेश** – प्रशिक्षण योजना में विक्रय की नवीन एवं आधुनिक तकनीको का समावेश होना चाहिए।

विक्रय प्रशिक्षण की पद्धितयाँ

विक्रेताओं को प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए कई पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है। इनको दो वर्गो में बांटा जाता है।

1. सामूहिक प्रशिक्षण पद्धति 2. वैयक्तिक प्रशिक्षण पद्धति

1. **सामूहिक प्रशिक्षण पद्धतियाँ** – जब अधिक व्यक्तियों को एक साथ अथवा समूहों में विभाजित करके विक्रय प्रशिक्षण दिया जाता है तब ऐसे प्रशिक्षण को सामूहिक विक्रय प्रशिक्षण कहा जाता है। यह निम्नलिखित है –
   1. **प्रवचन पद्धति** – प्रवचन एक औपचारिक एवं संगठित वार्ता है जो किसी समूह के सम्मुख अपने विचारों को किसी कक्ष या खुले स्थान पर भाषण के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। प्रशिक्षणार्थी प्रवचन कर्ता की बात को सुनते तथा लिखते है और प्रश्नोत्तर द्वारा अपनी शंकाओं का समाधान करते है। प्रवचन को प्रभावी व रुचिपूर्ण बनाने के लिए, प्रोजेक्टर्स, टेपरिकार्ड, स्लाइड्स प्रदर्शनों का भी प्रयोग किया जाता है।
   2. **समूह परिचर्या** – इस पद्धति में प्रशिक्षक, समूह संचालन अथवा कोई समूह सदस्य किसी विक्रय समस्या अथवा विषय पर अपने विचार प्रस्तुत करता है। उसके उपरान्त समूह के सभी सदस्य बारी-बारी से उस विषय पर अपने विचार प्रकट करते है। यह समस्या प्रशिक्षण पाठ्यक्रम का एक अंग होती है तथा इसके अनेक पहलुओं पर विचार किया जाता है। सभी विक्रयकर्ता अपने दृष्टिकोणों एवं विचारों का आदान-प्रदान करते हुए एक दूसरे की शंकाओं का समाधान करते हुए सर्वसम्मति से समस्या का समाधान करने में सफल हो जाते है। समूह परिचर्चा के लिए कई विषयों का चयन किया जा सकता है – ग्राहक प्रेरणायें एवं व्यवहार विक्रय प्रस्तुतीकरण, सम्भावी ग्राहको की खोज एवं सम्पर्क, विक्रय संवर्धन कार्यक्रम, नवीन विक्रय तकनीकि, विक्रयकर्ता की बदली भूमिका, विपणन अनुसंधान, ग्राहक शिकायतो का मनोविज्ञान एवं निवारण आदि।
   3. **विक्रय सम्मेलन पद्धति** – यह विचार-विमर्श पर आधारित एक प्रशिक्षण की पद्धति है जिसका उद्देश्य एक समूह के ज्ञान एवं अनुभव से सबको लाभ प्रदान करना है। सम्मेलन में विभिन्न विषयों पर आपसी विचार विमर्श एवं अनुभवो के आदान-प्रदान द्वारा सीखने पर दिया जाता है। सम्मेलन में भाग लेने वाले प्रशिक्षार्थी अपने विचारा ज्ञान एवं दृष्टिकोण को प्रकट करने के लिए स्वतन्त्र होता है इसमें विचार विनिमय अनौपचारिक रूप से किया जाता है। सम्मेलनों के तीन प्रकार होते है – 1.

निर्देशित सम्मेलन 2. समस्या समाधान मूलक सम्मेलन की सफलता बहुत कुछ भाग लेने वालो की इच्छा पर निर्भर करती है।

4. **समस्या अध्ययन पद्धति** – इस विधि में प्रशिक्षणार्थियों के सम्मुख एक चुनौती रखी जाती है जिसे स्वीकार करके वह समस्या का सही हल खोजने के लिए उत्प्रेरित होता है इस विधि के द्वारा विक्रेताओं की विश्लेषणात्मक योग्यता एवं तर्क शक्ति विकसित होती है। इस पद्धति का मुख्य उद्देश्य स्व-शिक्षण अथवा स्वत: सीखना है। इस पद्धति में प्रशिक्षणार्थी को निम्न अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है। 1. समस्या का अध्ययन करना 2. तत्वों का संग्रहण करना 3. समस्या के मूल तत्वों को परिभाषित करना 4. समस्या के संदर्भ में निर्णय लेना 5. सम्पूर्ण समस्या को अपने शिक्षण का आधार बनाना।
5. **भूमिका निर्वाह पद्धति** – इस पद्धति में प्रशिक्षार्थियों को नाटकीय तौर पर विभिन्न पद सौपे जाते है तथा फिर उन्हें अपनी भूमिका निभाने के लिए कहा जाता है। भूमिका निर्वाह के दौरान प्रशिक्षार्थियों के आचरण, भावों, संवेगो, उत्तेजना, आत्म-नियन्त्रण, अभिव्यक्ति को परखा जाता है। अन्त में प्रशिक्षक कुछ सामान्य निष्कषो के साथ प्रशिक्षार्थियों को कार्य निष्पादन की सही विधियों का ज्ञान कराते है। भूमिका निर्वाह पद्धति को नाट्य खेलना, वास्तविकता, व्यवहार, मनोनाट्य भी कहा जाता है।
6. **विशेष पाठन पद्धति** – विशेष पाठन कार्यक्रम प्रशिक्षण की एक विधि है जिसमें व्यक्ति किसी विशेष विषय पर अपना भाषण पढ़ता है तथा अन्य उसे सुनते है तथा उस पर विचार-विमर्श करते है यह विधि भी आपसी विचार-विमर्श द्वारा प्रशिक्षण की विधि है। ऐसे कार्यक्रम संस्थाओं द्वारा अपने विभाग में ही नये व पुराने विक्रेताओं के लिए आयोजित किये जाते है।
7. **गोलमेज पद्धति** – यह वार्ता प्रशिक्षणार्थियों द्वारा एक प्रशिक्षक के निर्देशन में एक गोलमेज के इर्द-गिर्द बैठकर की जाती है। प्रशिक्षण पाठ्यक्रम के विभिन्न विषयों पर ये वार्तायें आयोजित की जाती है। तथा प्रश्नोत्तर तथा विचार-विमर्श के द्वारा यह प्रशिक्षण सम्पन्न किया जाता है।
8. **सचेतनता पद्धति** – विक्रता को अपने ग्राहक की भावनाओं, विचारो, मनोवृत्तियों, भावात्मक प्रतिक्रियाओं के प्रति सचेतनता रखनी होती है। इस दृष्टि से प्रशिक्षण की यह विधि अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस विधि में प्रशिक्षार्थियों को अपने व्यवहार से दूसरे पर पड़ने वाले प्रभावों के प्रति जागरूक करना है। इस प्रशिक्षण का प्रमुख उद्देश्य प्रशिक्षणार्थियों में मानवीय व्यवहार की योग्यता का विकास करना है।
9. **विक्रय नाट्य प्रशिक्षण** – इस विधि में नये विक्रय कत्ताओं के समक्ष विक्रय प्रक्रिया, विक्रय वार्ता एवं विक्रय प्रदर्शन को नाटकीय ढ़ंग से प्रस्तुत किया जाता है। इसमें प्रशिक्षक, विक्रय प्रबन्धक तथा पुराने विक्रयकर्ता विक्रय व्यवहारों एवं कार्यों को अभिनव के रूप में प्रस्तुत करते है। इस प्रकार नाट्य प्रदर्शन को देखकर नये विक्रेता अपनी भूमिका, कार्य व विक्रय व्यवहारों के बारे में महत्वपूर्ण बाते सीखते प्रशिक्षण की यह पद्धति प्रभावी होने के साथ-साथ अत्यन्त रोचक भी है। विक्रय क्षेत्र में इसका प्रयोग लगातार बढ़ रहा है।

10. **विशेष पाठ्यक्रम** – विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं प्रबन्ध संस्थाओं द्वारा विपणन, विक्रय प्रबन्ध, विक्रयकला, विज्ञापन एवं प्रचार, विपणन अनुसंधान आदि विषयों के प्रशिक्षण हेतु विशिष्ट पाठ्यक्रम तैयार किये गये है। व्यवसायिक संस्थायें अपने विक्रयकताओं प्रशिक्षण के लिए इन पाठ्यक्रमों में प्रवेश दिला कर प्रशिक्षण दिलवा सकती है।
11. **व्यक्तिक प्रशिक्षण पद्धतियाँ** – वैयक्तिक प्रशिक्षण पद्धतियाँ निम्न प्रकार की हैं –
    1. **कार्य पर प्रशिक्षण** – प्रशिक्षण की इस विधि में नये विक्रय कर्ता को पुराने विक्रयकर्ता की देखरेख में प्रशिक्षण दिया जाता है। इसमें विक्रयकर्ता स्वयं कार्य करते हुए सीखता है। वस्तुत: यह विधि कार्य करने करके दिखाने, अभ्यास करने तथा अपने कार्य का मूल्यांकन करने का एक मिश्रित रूप है। इस विधि में प्रक्रिया चार्ट, क्रियात्मक प्रदर्शन, मैन्युअल आदि का भी प्रयोग किया जाता है।
    2. **कार्य हेर-फेर प्रशिक्षण** – इस विधि के द्वारा विक्रेता को विभिन्न विभागों से संबन्धित कार्यों का प्रशिक्षण देने का प्रयास किया जाता है। विक्रेता को एक विभाग से दूसरे विभागों में विभिन्न स्थानों पर कार्य करने का भेजा जाता है जैसे – बही खाते विभाग, अनुसंधान विभागा, निर्माण विभाग, विज्ञापन, क्रय पैंकिग व जनसम्पर्क विभाग। विक्रेता को पूर्व नियोजित कार्यक्रम के अनुसार कार्य कराया जाता है। इससे उसे विक्रय में सम्बन्धीत सभी बातो का व्यवहारिक ज्ञान हो जाता है। सभी विभागों का अनुभव होने के बाद उसे प्रमुख विक्रय कार्य में लगा कर प्रशिक्षण दिया जाता है।
    3. **व्यक्तिक परिचर्चा** – इस विधि में विक्रयकर्ता एवं विक्रय प्रबन्धक या अन्य बड़े अधिकारी आपस मिल बैठकर विक्रय कर्ताओं की विक्रय समस्याओं, शंकाओं आदि पर चर्चा करके उसे दूर करते है। यह चर्चा निजी तौर पर की जाती है इसमें विक्रयण की प्रभाविता, मार्ग नियोजन, माँग सारणीयन ग्राहकों से भेंट, विक्रय समस्याओं के निवारण आदि विषयों पर विस्तार से विचार-विमर्श किया जाता है।
    4. **पत्राचार पाठ्यक्रम** – यह विधि विक्रय कर्ता को उनकी नियुक्ति से लेकर सेवा समाप्ति तक प्रशिक्षण देने के लिए काम में लायी जा सकती है। इस विधि का प्रयोग अनुभवी कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण देने के लिए किया जाता है। इस विधि का प्रयोग विक्रेताओं को नवीनतम जानकारी देने, नवीन अनुसंधानो के निष्कर्षो को बताने तथा तकनीकि परिवर्तनो से अवगत कराने के लिए भी किया जाता ह। कई संस्थाये, बीमा कम्पनियाँ, तकनीकि औद्योगिक संस्थाये पत्राचार द्वारा अपने विक्रयकर्ता को प्रशिक्षण उपलब्ध करवाती है।
    5. **कार्यक्रमिक निर्देशन** – यह विधि पत्राचार से मिलती जुलती है। इसमें प्रशिक्षण की विषय-सामग्री को क्रमांकित निर्देशन ईकाइयों में विभाजित कर दिया जाता है। तत्पश्चात् इसे पुस्तक या माइक्रो फिल्म के रूप में बदल लिया जाता है। प्रत्येक सामग्री ढ़ांचे में किसी विषय की विस्तृत व्याख्या तथा विक्रेता के ज्ञान के परीक्षण के लिए एक समस्या या प्रश्न दिया जाता है, प्रशिक्षणार्थी अपने उत्तरों का मूल्यांकन अन्य सामग्री ढ़ाँचे से करते है। इस

प्रकार अपना मूल्यांकन वह प्रशिक्षण पाठ्य-सामग्री की सहायता से स्वयं करते है। विक्रय प्रशिक्षण में इस पद्धति का प्रयोग कम होता है।

6. **प्रशिक्षण सहायता** – प्रशिक्षण की विभिन्न विधियों में प्रशिक्षण सामग्री व उपकरणों का प्रयोग बढ़ता जा रहा है प्रशिक्षण सहायता व उपकरणों में फिल्म पट्टियों, स्लाइड्स, मूवीज, स्वर रिकार्डिंग उपकरण, पोस्टर्स, चाटर्स टेलिविजन, कैमरे को शामिल किया जाता है। इसके द्वारा प्रशिक्षण प्रविधि को प्रभावशाली रुचिकर और लाभप्रद बनाया जा सकता है।

विक्रेताओं का पारिश्रमिक

विक्रेता की निपुणता व योग्यता पर विक्री की मात्रा निर्भर करती है तथा विक्रय की यात्रा पर व्यवसाय की सफलता। इसी कारण अच्छी संस्थायें प्रतिभाशाली तथा प्रशिक्षित विक्रेताओं की नियुक्ति करती है। अच्छे विक्रेताओं को आकर्षित करने के लिए उन्हें पर्याप्त पारिश्रमिक कार्य की अच्छी दशाये, प्रगति के अवसर तथा पदोन्नति आदि के माध्यम से प्रभावित करने का प्रयास किया जाता है। आज को अर्थ व्यवसाय में जहाँ सुख-सुविधा, सम्पन्नता का माध्यम ही धन हो वहाँ विक्रेताओं को दिया जाने वाला पारिश्रमिक उनकी सेवाओं को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण घटक है। इस दृष्टि से विक्रेताओं का पारिश्रमिक एवं उनके निर्धारण की पद्धति एक महत्वपूर्ण समस्या होता है।

विक्रेताओं के पारिश्रमिक योजना के उद्देश्य

विक्रेताओं की पारिश्रमिक देने की योजना बनाते समय उनके उद्देश्यों को सुनिश्चित करना आवश्यक होता है। इस योजना के निम्नलिखित उद्देश्य हो सकते है।

1. प्रत्येक विक्रय क्षेत्र में संस्था की वर्तमान तथा भावी स्थिति को मजबूत बनाना।
2. अधिकतम लाभकारी विक्रय को प्रोत्साहित करना।
3. स्वामीभक्त विक्रेता वर्ग का निर्माण एवं उसमें स्थायीत्व लाना।
4. न्यूतम लागत पर उपभोक्ता तक माल पहुँचना।
5. विक्रेताओं को उनकी सेवा का उचित प्रतिफल मिल रहा है ऐसा उनमें विश्वास पैदा करना।
6. परिस्थितियों के अनुसार सरलता से पारिश्रमिक योजना का संचालन करना।
7. विक्रेताओं पर प्रभावशाली नियन्त्रण रखना।
8. विक्रेता को संस्था के अनुरूप उपयुक्त बनाना।
9. अधिक कुशल विक्रेता को अधिक पारिश्रमिक देना।
10. विक्रय के अतिरिक्त अन्य दायित्वों को लेने के लिए विक्रेताओं को प्रेरित करना।

अच्छी पारिश्रमिक योजना की विशेषताएँ अथवा आवश्यक तत्व

अच्छे विक्रेताओं को आकर्षित करने अभिप्रेरित करने तथा बनाये रखने के लिए क्षतिपूरक योजना का निर्माण करना सरलपूर्ण कार्य नही है। अच्छी योजना का निर्माण विभिन्न पहलुओं को दृष्टि में रखकर किया जाना चाहिए। विक्रेताओं को अच्छी पारिश्रमिक योजना में निम्नलिखित तत्वों का समावेश करना चाहिए।

1. **उचित पारिश्रमिक** – पारिश्रमिक देने की योजना इस प्रकार होनी चाहिए जिससे विक्रेताओं को उचित पारिश्रमिक प्राप्त हो सके कम से कम इतना अवश्य मिले कि वह अपने परिवार का भरण

पोषण कर सकें। जीवन की जरुरी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उचित पारिश्रमिक होना चाहिए।

2. **आय में स्थिरता** – अच्छी पारिश्रमिक योजना विक्रेता की आय में स्थिरता लाती है। जब उसे एक निश्चित मात्रा में पारिश्रमिक प्राप्त होने का पूरा-पूरा विश्वास होता है। तो अपनी आय के अनुसार अपना रहन-सहन का स्तर रखने में समर्थ होता है।
3. **विक्रेताओं को लाभ** – विक्रेताओं को पारिश्रमिक देने की योजना विक्रेताओं की वर्तमान ही नही बल्कि भावी आवश्यकताओं एवं परिस्थितियों को भी ध्यान में रखकर बनानी चाहिए। उनको मकान, महँगाई, वाहन, बिमारी भत्ता व पेंशन आदि की व्यवस्था कर उन्हें लाभप्रद बनाना चाहिए।
4. **न्यायपूर्ण** – पारिश्रमिक देने की योजना न्यायपूर्ण होनी चाहिए समान योयता एवं अनुभव के विक्रेताओं की समान मात्रा में ही पारिश्रमिक मिलना चाहिए। उनमें जाति, धर्म के कारण भेदभाव नही होना चाहिए।
5. **विक्रय बढ़ाने वाली** – विक्रेताओं को पारिश्रमिक देने की योजना विक्रेताओं को अधिक से अधिक विक्रय करने के लिए प्रोत्साहन प्रदान करने वाली होनी चाहिए। इससे संस्था की प्रगति तो होती ही है, साथ ही विक्रेता भी अधिक अर्जित करने लगता है।
6. **योग्यता पर आधारित** – पारिश्रमिक निर्धारण की योजना इस प्रकार की होनी चाहिए जो अधिक कुशल एवं योग्य विक्रेताओं को अधिक पारिश्रमिक प्रदान करें तथा कम कुशल को कम पारिश्रमिक प्रदान करें।
7. **पदोन्नति के लिए प्रावधान** – एक अच्छी पारिश्रमिक योजना के अन्तर्गत योग्य निष्ठावान व नियमित सेवा में रहने वाले विक्रेताओं के लिए पदोन्नति की व्यवस्था होनी चाहिए।
8. **कार्य क्षमता में वृद्धि** – अधिक शिक्षित एवं प्रशिक्षित तथा अधिक विक्रय करने वालो को अधिक पारिश्रमिक देने की व्यवस्था होनी चाहिए इससे विक्रेता बराबर अपनी कार्यक्षमता को बढ़ाने का प्रयास करते रहेंगे।
9. **सरलता** – पारिश्रमिक योजना सरल होनी चाहिए। एक जटिल पारिश्रमिक की योजना विक्रेताओं को सन्तुष्ट नही रख सकती है तथा उसके प्रशासन में बाधाएं उत्पन्न होती है।
10. **मितव्ययिता** – पारिश्रमिक की योजना मितव्यायी होना आवश्यक है। पारिश्रमिक का हिसाब रखना उसकी गणना करना तथा समायोजन करने आदि पर अधिक व्यय नही पड़ने चाहिए योजना का प्रशासनिक व्यय कम से कम होना चाहिए।
11. **प्रतियोगी** – पारिश्रमिक समान व्यवसाय में लगी संस्थाओं के विक्रेताओं को दिये जाने वाले विक्रेताओं के पारिश्रमिक की तुलना में कुछ ज्यादा आकर्षक होना चाहिए इससे प्रतियोगी संस्था की तुलना में अधिक श्रेष्ठ विक्रेता प्राप्त करने एवं अधिक विक्रय करने में सफलता मिलती है।
12. **लोच** – पारिश्रमिक योजना लोचपूर्ण होनी चाहिए अर्थात वह विभिन्न विक्रय क्षेत्रों, विभिन्न विक्रय विधियों तथा विक्रेताओं की विभिन्न आवश्यकताओं के अनुरूप परिवर्तनीय होनी चाहिए।

विक्रेताओं के पारिश्रमिक को निर्धारित करने वाले घटक

विक्रेताओं का पारिश्रमिक निर्धारित करते समय विभिन्न तत्वों को ध्यान में रखना आवश्यक है। इनके कारण विभिन्न उपक्रमों में तथा विभिन्न स्थानों पर विभिन्न वस्तुओं के विक्रेताओं की विभिन्न पारिश्रमिक दरें निर्धारित की जाती है। पारिश्रमिक निर्धारित करते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखा जाता है।

1. **विक्रेता की योग्यता** – विक्रेता को पारिश्रमिक उसकी शिक्षा एवं प्रशिक्षण को देखकर देना चाहिए। अधिक शिक्षित विक्रेता को कम शिक्षित वाले विक्रेता की तुलना में अधिक पारिश्रमिक दिया जाना चाहिए।
2. **अनुभव** – विक्रेता पद पर कार्य करने के अनुभवी व्यक्ति को कम अनुभवी या नये विक्रेता की तुलना में अधिक पारिश्रमिक निर्धारित किया जाना चाहिए।
3. **रहन-सहन की लागत** – देश में रहन-सहन की लागत का स्तर भी पारिश्रमिक निर्धारण को प्रभावित करता है। यदि महंगाई अधिक है तो पारिश्रमिक भी उसके अनुसार मिलना चाहिए।
4. **अन्य संस्थाओं में पारिश्रमिक** – जिस क्षेत्र में संस्था स्थापित है उसमें स्थापित अन्य संस्थाओं के द्वारा क्या पारिश्रमिक दिया जा रहा है यह भी देखना होता है। यदि अन्य संस्था की तुलना में कम परिश्रमिक विक्रेताओं को दिया जायेगा तो अच्छे विक्रेता पाना असम्भव हो जायेगा।
5. **संस्था की स्थिति** – संस्था की स्थिति भी विक्रेता पारिश्रमिक को प्रभावित करती है। एक नयी संस्था एक पुरानी जमी हुई संस्था के बराबर पारिश्रमिक नही दे सकती है। अत: उसे अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार ही पारिश्रमिक कर देना चाहिए।
6. **विज्ञापन की स्थिति** – यदि संस्था द्वारा विज्ञापन पर अधिक व्यय किया जाता है तथा विज्ञापन के माध्यम से मांग बढ़ाने का अधिक प्रयास किया जाता है तो इससे विक्रेता का काम और सरल हो जाता है।
7. **वस्तु का मूल्य** – वस्तुओं की किमत कम है तो उन्हें अधिक मात्रा में अधिक व्यक्तियों द्वारा क्रय किया जाता है लेकिन अधिक कीमत वाली वस्तुओं की विक्री कम होती है। ज्यादा मूल्य की वस्तुओं के लिए प्रयास ज्यादा करनी पड़ती है। अत: अधिक मूल्य की वस्तुआं के विक्रेता को अधिक पारिश्रमिक ज्यादा दिया है।
8. **प्रतिस्पर्धा की दशा** – जिस वस्तु का विक्रय करने के लिए उसमें प्रतिस्पर्धा बहुत है तो ऐसे वस्तु के विक्रेता को अधिक पारिश्रमिक निर्धारित किया जायेगा जिससे वह अधिक परिश्रम करके अधिक विक्रय करने का प्रयास करे।
9. **सुविधाओं की मात्रा** – यदि विक्रेताओं को संस्था की तरफ से सभी सुविधायें जैसे – मकान, वाहन, सवेतन अवकाश, नि:शुल्क चिकित्सा आदि तो विक्रेताओं को कम वेतन या पारिश्रम के रूप में कमीशन देना भी उचित माना जाता है जबकि इन सुविधाओं को न देने वाली संस्था को अधिक पारिश्रमिक देना होता है।
10. **वस्तु का महत्व** – यदि वस्तु रोज तथा सामान्य उपयोग की है तो उसकी माँग खुद ही बड़ी मात्रा में होती है। अत: विक्रय अधिक होता है जबकि सीमित उपयोग वाली वस्तुओं का विक्रय कम होता

है। अत: अधिक मांग वाली विक्रय पर कम पारिश्रमिक देना भी उचित है जबकि कम मांग वाली वस्तु के विक्रेता को अधिक पारिश्रमिक दिया जाता है।

11. **विक्रय की मात्रा** – पारिश्रमिक के निर्धारण में विक्रय की मात्रा एक महत्वपूर्ण घटक है। संस्था का प्रमुख उद्देश्य ही विक्रय बृद्धि करना होता है अत: अधिक बिक्री करने वाले विक्रेता को अधिक पारिश्रमिक दिया जाता है।
12. **नई वस्तु एवं बाजार** – नये बाजारों में नये उत्पादों को बेचना एक सरल कार्य नही है। इस कार्य के लिए विक्रेता में विशेष योग्यता होनी चाहिए। अत: नये बाजार में नये उत्पाद का विक्रय करने वाले विक्रेता का पारिश्रमिक भी अधिक होना चाहिए।
13. **देश की स्थिति** – देश में प्रचलित मूल्य-स्तर, मुद्रा-प्रसार की मात्रा आदि से भी विक्रेता का पारिश्रमिक प्रभावित होता है। यदि देश में मुद्रा-प्रसार अधिक है तथा महंगाई का साम्राज्य है तो विक्रेता को अपेक्षाकृत अधिक पारिश्रमिक देना होगा क्योंकि ऐसे में जीवन-स्तर की लागते बहुत अधिक बढ़ जाती है।

पारिश्रमिक भुगतान की पद्धतियाँ

विक्रेताओं के लिए पारिश्रमिक भुगतान की अनेक पद्धतियाँ प्रचालित है। ये पद्धतियाँ निम्नलिखित है।

1. **केवल वेतन पद्धति** – इस पद्धति में विक्रेताओं को एक निश्चित समय पर एक निश्चित धन राशि वेतन के रूप में दी जाती है। इस राशि का भुगतान साप्ताहिक, पाक्षिक अथवा मासिक आधार पर किया जाता है। पारिश्रमिक भुगतान की यह सर्वाधिक प्रचलित विधि है। हमारे देश में विक्रेताओं को मासिक आधार पर भुगतान किया जाता है। जबकि अमेरिका तथा अन्य देशो में साप्ताहिक आधार पर भुगतान किया जाता है। इस पद्धति के अन्तर्गत विक्रेताओं को निम्नलिखित तीन प्रकार से भुगतान किया जा सकता है।
    1. **निश्चित वेतन पद्धति** – इसमें विक्रेताओं को एक निश्चित समय के उपरान्त एक निश्चित वेतन दिया जाता है जिसमें कोई परिवर्तन नही होता है। यह विधि बहुत कम प्रचलन में है।
    2. **वेतन एवं वृद्धि विधि** – इस विधि के अनुसार विक्रेताओं की नियुक्ति एक निश्चित वेतन श्रृंखला में की जाती हैं जिसमें विक्रेताओं को प्रतिवर्ष एक निश्चित वेतन वृद्धि प्राप्त होती है।
    3. **वेतन एवं भत्ता विधि** – इस विधि में विक्रेताओं को एक निश्चित वेतन के साथ-साथ विभिन्न व्ययों जैसे-यात्रा, भोजन, चिकित्सा आदि व्ययो को जो उसने अपने कार्य के दौरान किये है के लिए का भुगतान किया जाता है। ये भत्ते एक सीमा तक निश्चित भी किये जा सकते है।
2. **केवल कमीशन पद्धति** – यह पारिश्रमिक प्रदान करने की यह ऐसी पद्धति है जिसमें पारिश्रमिक का भुगतान निश्चित समय के आधार पर न करके विक्रयकर्ताओ के द्वारा प्राप्त कुल क्रयादेश के आधार पर किया जाता है। यह पद्धति वेतन विधि के ठीक विपरीत है जिसमें विक्रेता द्वारा उपलब्ध किये गये परिणामों के आधारों पर पारिश्रमिक का भुगतान किया जाता है। अत: विक्रेता जितना कार्य करेगा

उसका पारिश्रमिक उतना अधिक होगा। यह पारिश्रमिक ही कमीशन कहलाता है। तथा इसके साथ विक्रेता द्वारा किये गये विभिन्न व्ययों, जैसे यात्रा, प्रवास आदि का भी भुगतान किया जा सकता है। कमीशन प्राय: निम्न दो आधारो पर दिया जा सकता है।

1. **स्थिर आधार पर कमीशन** – इसमें विक्रय की सम्पूर्ण मात्रा पर कमीशन को दर स्थिर रहती है अर्थात चाहे विक्रयकर्ता अपने निश्चित अभ्यंश से कम विक्री करे या अधिक लेकिन उसे कमीशन का भुगतान एक ही दर से किया जाता है।
2. **प्रगतिशील आधार पर कमीशन** – इस पद्धति में विक्रय की अलग-अलग मात्रा के अनुसार कमीशन की दरें भी भिन्न-भिन्न होती है। इसमें विक्रय को विभिन्न वर्गो में बांट दिया जाता है एवं उनकी कमीशन दरें भी अलग-अलग होती है। इस प्रकार अधिक विक्रय करने वाले विक्रेता को अधिक कमीशन दिया जाता है तथा कम विक्रय वाले विक्रेता को कम कमीशन प्रदान किया जाता है। भारत में विभिन्न संस्थाओं जैसे-जीवन बीमा निगम, औषधि निर्माण संस्थाओं में आदि में ये पद्धति को अपनाया जाता है।

3. **वेतन तथा कमीशन पद्धति** – इस पद्धति के अनुसार विक्रेताओं को निश्चित वेतन के साथ-साथ कमीशन का भी भुगतान किया जाता है। यह 'केवल वेतन' – 'केवल कमीशन' दोनों योजनाओं का मिश्रण है। इस लिए इस पद्धति को 'संयुक्त मिश्रण' पद्धति भी कहा जाता है। इस पद्धति में विक्रेताओं को निश्चित वेतन की राशि तय की जाती है जो उन्हें प्रति माह मिलती है। इसका साथ ही कमीशन की दरे भी विक्रेताओं के लिए निर्धारित की जाती है। ये दरे बिक्री की मात्रा से सम्बद्ध होती है। इस प्रकार निश्चित वेतन विक्रेताओं को आर्थिक सुरक्षा प्राप्त हो जाती है तथा कमीशन उन्हें अधिक से अधिक विक्रय करने की प्रेरणा देता है। इस पद्धति में पारिश्रमिक को समय और निष्पादन दोनों से जोड़ दिया जाता है इसमें विक्रेताओं को उपयुक्त आय और प्रेरणा दोनों ही प्राप्त हो जाते है।
4. **आहरण लेखा एवं कमीशन पद्धति** – यह पद्धति 'सीधी कमीशन पद्धति' का ही एक संशोधित रूप है। इसमें संस्था द्वारा प्रत्येक विक्रयकर्ता का एक अहरण खाता खोल दिया जाता है इसमें विक्रेता द्वारा अर्जित कमीशन क्रेडिट कर दिया जाता है। इस खाते से विक्रेता को जब भी आग्रेम राशि जरुरत होती है दे दी जाती तथा उसके खाते में डेबिट कर दी जाती है। ऐसी निकाली जाने वाली धन राशि को 'गारण्टोड आहरण राशि' कहा जाता है। विक्रेता को अहरण खाते से एक निश्चित राशि निकालने का ही अधिकार होता है और विक्रेता द्वारा ली गई अग्रिम राशि आहरण खाते में क्रेडिट शेष से स्वत: करती जाती है और पारिश्रमिक का शेष विक्रेता को मिल जाता है।

   इस पद्धति के विकास के पीछे मूल भावना यह थी कि विक्रेता को अपनी आवश्यकताओं को पूर्ति के लिए अग्रिम धन राशि की जरुरत पड़ती ही है। अत: विक्रेता की इस अग्रिम राशि के सम्बन्ध के लिए यह आहरण खाता खोल दिया जाता है। इसमें से दी राशि को अल्पावधि का ऋण मान किया जाता है जिसका अर्जित कमीशन के साथ समायोजन होता है।
5. **लाभ भागिता पद्धति** – पारिश्रमिक भुगतान की यह विधि अपन आप में सम्पूर्ण पद्धति नही है। बल्कि एक पूरक पद्धति है जिसका प्रयोग किसी अन्य पद्धति नही है। बल्कि एक पूरक पद्धति है जिसका प्रयोग किसी अन्य पद्धति के साथ ही किया जा सकता है। यह प्रेरणात्मक विधि है इसके

अन्तर्गत प्रत्येक विक्रयकर्त को संस्था के लाभो में से एक हिस्सा पारिश्रमिक के रूप में दिया जाता है। यह लाभ प्रत्येक वर्ष के अन्त में कुल लाभो के एक निश्चित प्रतिशत के आधार पर अथवा क्षेत्रीय विक्रय के आधार पर अथवा वार्षिक विक्रय के आधार पर दिया जाता है।

6. **विशिष्ट पारिश्रमिक पद्धति** – इस पद्धति में विशिष्ट कार्यों को करने के लिए विशिष्ट पारिश्रमिक का भुगतान किया जाता है। विशिष्ट कार्य प्रतिदिन के सामान्य कार्यो के अतिरिक्त होते हैं उदाहरण के लिए विक्रेता से नये ग्राहकों की खोज, विक्रय संवर्द्धन, जन सम्पर्क, शिकायतो का समाधान, बाजार अनसुंधान, बकाया राशि की वसूली तथा अन्य किसी विशिष्ट विक्रय कार्यों का सम्पादन करवाने के लिए विशिष्ट पारिश्रमिक के भुगतान का पारस्परिक समझौता किया जा सकता है। विशिष्ट कार्य को करने के लिए अस्थायी विक्रेताओं को रखा जा सकता है अथवा स्थायी विक्रेताओं से ही अतिरिक्त समय से ये कार्य करवाये जा सकते है। इन कार्यों के लिए उन्हें भिन्न दर से पारिश्रमिक दिया जाता है।
7. **बोनस पद्धति** – बोनस प्राय: उन कार्यों के निष्पादन के लिए दिया जाता है जिसके लिए विक्रेताओं को किसी प्रकार का पारिश्रमिक व कमीशन प्राप्त नही होता है। ऐसे कार्यो में गैर-विक्रय कार्य, जैसे लाभप्रद विक्रय विचार प्रस्तुत करना, ग्राहकों के हितो की रक्षा करना, संस्था की छवि में सुधार करना, अतिशीघ्र प्रतिवेदन प्रस्तुत करना, कोई उपयोगी सुझाव देना, ख्याति निर्माण करना आदि सम्मिलित किया जाता है। इसके अतिरिक्त बोनस ऐसे विक्रेताओं को भी दिया जा सकता है जिनके ग्राहक आदेशों की संख्या अधिकतम हो अथवा जिनके विरुद्ध ग्राहकों की शिकायते बहुत कम हो। बोनस की राशि एवं समयाविधि के निर्णय भी अत्यन्त महत्वपूर्ण होते है। सामान्यत: संस्था द्वारा बोनस तब दिया जाता है जबकि संस्था में अत्यधिक लाभ हुआ हो। इसी प्रकार बोनस की घोषणा प्राय: होली, दिवाली या नव वर्ष के अवसर पर की जाती है।
8. **अन्य पद्धतियाँ** – पारिश्रमिक भुगतान की अन्य प्रमुख विधियाँ निम्निलिखित है।
    1. अभ्यंश पद्धति – यह पद्धति ‘वेतन एवं कमीशन पद्धति’ का ही एक संशोधित रूप है। इसमें प्रत्येक विक्रेता के लिए विक्रय क्षेत्र तथा एक निश्चित अवधि में विक्रय की मात्रा निर्धारित कर दी जाती है जिसे विक्रय अभ्यंश कहा जाता है। इस पद्धति में विक्रेता को निश्चित वेतन के साथ-साथ कमीशन भी दिया जाता है किन्तु विक्रेता को ऐसा कमीशन तभी दिया जाता है जबकि वह निर्धारित अभ्यंश के बराबर माल का विक्रय कर लेता है।
    2. **अनुषंगी लाभ विधि** – इस पद्धति में विक्रेता को उसके सेवा-काल तथा सेवा-निवृत्ति के पश्चात् विभिन्न वांछित सुविधाये प्रदान की जाती है जिन्हें ‘अनुषंगी लाभ’ कहा जाता है। इन सुविधाओं में मुख्य रूप से पेशन, अवकाश वेतन, बीमा, बोनस, बिमारी लाभ, भविष्य निधि, मकान भत्ता, गेच्युटी, प्रशिक्षण शिक्षा, यात्रा भत्ता, मनोरंजन, पुस्तकालय आदि को सम्मिलित किया जाता है।

3.7. सारांश

विक्रेता के चयन से आशय विभिन्न प्रार्थियों में से संस्था की आवश्यकता के अनुसार योग्य प्रार्थियों को छाँटना एवं नियुक्त करना है। चयन की प्रक्रिया में कार्य करने के इच्छुक व्यक्तियों में से योग्यतम व्यक्तियों का चुनाव किया जाता है तथा अयोग्य व्यक्तियों को अस्वीकृत कर दिया जाता है। विक्रेताओं की चयन प्रक्रिया एक लम्बी श्रृंखला है जिसमें विक्रेताओं के शारीरिक एवं मानसिक योग्यता का विभिन्न प्रकार से परीक्षण किया जाता है तथा योग्य पाने पर ही उनका चुनाव किया जाता है। विक्रेता के चयन के पश्चात् उसे कार्य पर लगाने से पहले उसे प्रशिक्षित किया जाता है जिससे कि उसके गुणों एवं योग्यता को और अधिक विकसित किया जा सके। प्रशिक्षण के द्वारा विक्रेता को विक्रय-कला के सिद्धान्तों, विधियों एवं व्यवहार का समुचित ज्ञान कराया जाता है। उसे व्यवसाय की विक्रय नीति, कार्य प्रणाली, विक्रय तकनीकों, बाजार अनुसंधान आदि के बारे में विस्तृत जानकारी दी जाती है।

विक्रेताओं को निरन्तर अभिप्रेरित करके उनके मनोबल, कार्य लगन, उत्साह एवं आंतरिक शक्ति को उत्प्रेरित किया जा सकता है। अभिप्रेरणा एक आन्तरिक इच्छा या भावना है जो किसी व्यक्ति को पूर्व निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये उत्प्रेरित करती है। यह किसी व्यक्ति की उन इच्छाओं, आकांक्षाओं एवं आवश्यकताओं को समझने एवं संतुष्ट करने की प्रक्रिया है जो उसे किन्ही कार्यों के लिये गति, शक्ति एवं उत्साह प्रदान करती है।

अच्छी पारिश्रमिक योजनओं के द्वारा विक्रेताओं को अधिक विक्रय के लिये प्रेरित किया जा सकता है। श्रेष्ठ पारिश्रमिक योजनाएँ विक्रय कर्मचारियों के प्रयासों को सर्वाधिक उत्पादक क्रियाओं की ओर प्रवाहित करने में सहायता करती है जिससे विक्रय संगठन के उद्देश्यों की पूर्ति में मदद मिलती है।

निरंतर विक्रय प्रबंधक का एक महत्वपूर्ण कार्य है जिसके द्वारा यह ज्ञात किया जाता है कि समस्त विक्रय कार्यों का निष्पादन योजनाबद्ध तरीके से किया जा रहा है या नही। यदि विक्रेकता अपने लक्ष्यों की प्राप्ति योजनाओं के अनुसार नही कर रहे है तो उनके क्या कारण है तथा उन्हें कैसे दूर किया जा सकता है।

3.8. अभ्यासार्थ प्रश्न

1. विक्रेताओं की भर्ती के विभिन्न स्रोतों की व्याख्या कीजिए।
2. विक्रेताओं की भर्ती की आवश्यकता क्यों होती है? विक्रेताओं की भर्ती के लिये किये जाने वाले कार्यों का वर्णन कीजिए।
3. विक्रयकत्ताओं के चयन से आप क्या समझते है? एक अच्छी चयन प्रक्रिया का महत्व स्पष्ट कीजिए।
4. विक्रेता के चयन से क्या अभिप्राय है? विक्रेताओं के चयन में ध्यान देने योग्य बातों का वर्णन कीजिए।
5. विक्रयकर्त्ताओं के प्रशिक्षण की पद्धतियों का वर्णन कीजिए।
6. विक्रेता प्रशिक्षण से आप क्या समझते है? विक्रेताओं को प्रशिक्षण प्रदान किये जाने के क्या लाभ है?

7. अभिप्रेरण से क्या आशय है? विक्रेताओं को अभिप्रेरित करने की आवश्यकता क्यों होती है?
8. विक्रेताओं को अभिप्रेरित करने की विधियों का वर्णन कीजिए।
9. एक उत्तम पारिश्रमिक योजना के आवश्यक तत्वों की विवेचना कीजिए।
10. विक्रेताओं को पारिश्रमिक देने की विभिन्न विधियों का वर्णन कीजिए।

3.9. संदर्भ ग्रंथ

11. जैन. एस. सी., विपणन प्रबंधन, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2012
12. मालवीय अंजनी, विपणन प्रबंधन, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2012
13. Kotler Philip, Gary Armstrong, Principles Of Marketing, Prentice Hall Of India Pvt. Ltd, New Delhi, 2010
14. Bose S. Biplab, Marketing, Himalaya Publishing House, New Delhi, 2010.
15. सुधा जी. एस., विक्रय संवर्द्धन एवं विक्रय प्रबंध, रमेश बुक डिपो, जयपुर।

इकाई – 4 बिक्री के प्रयास को नियंत्रित करना

इकाई की रूपरेखा

4.1. उद्देश्य
4.2. बिक्री बजट
4.3. बिक्री बजट के लिए शर्तें
4.4. बिक्री कोटा
4.5. विक्रय कोटा निर्धारित करने के कारण
4.6. कोटा निर्धारित करने के सिद्धान्त
4.7. विक्रय कोटा निर्धारण के ढ़ंग
4.8. विक्रय कोटा की सीमायें
4.9. बिक्री इलाका
4.10. बिक्री नियंत्रण एवं लागत विश्लेषण
4.11. सारांश
4.12.अभ्यासार्थ प्रश्न
4.13. संदर्भ ग्रंथ सूची

4.1. उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात –

1. बिक्री बजट के अर्थ, उसकी शर्ते, उसको तैयार की विधि के बारे में जानकारी हो सकेगी।
2. विक्रय कोटा का अर्थ, उसके निर्धारण को प्रभावित करने वाले घटक तथा विधियों को जान सकेंगे।
3. विक्रय के विभिन्न प्रकार एवं उसके सिद्धान्तों से अवगत हो सकेंगे।
4. विक्रय प्रदेश का अर्थ, उद्देश्य एवं महत्व को समझ सकेंगे।
5. विक्रय प्रदेश के स्थापना की प्रक्रिया एवं सिद्धान्तों से अवगत हो सकेंगे।
6. विक्रय क्रियाओं पर नियंत्रण का अर्थ, उसके तत्व, महत्व तथा तकनीक क बारे में जानकारी हो सकेंगी।
7. विक्रय विश्लेषण का अर्थ, उद्देश्य, उसका उपयोग आदि के बारे में जान सकेंगे।

4.2. Sales Budget/ बिक्री बजट

एक बिक्री बजट भविष्य की वित्तीय अवधि के लिए बिक्री के प्रबंधन का अनुमान है। एक व्यवसाय विभाग के लक्ष्यों को निर्धारित करने, आय का अनुमान लगाने और उत्पादन आवश्यकताओं को निर्धारित करने के लिए बिक्री बजट का उपयोग करता है। बिक्री बजट अन्य ऑपरेटिंग बजट और कंपनी के समग्र मास्टर बजट दोनों को प्रभावित करता है।

एक बिक्री बजट इकाइयों में बिक्री के साथ-साथ बिक्री से अनुमानित कमाई का अनुमान लगाता है। किसी भी व्यवसाय के लिए बजट महत्वपूर्ण है। बजट के बिना कंपनियों के प्रदर्शन में सुधार नहीं कर सकते हैं। बजट के दौरान एक मास्टर बजट बनाने में पहला कदम बिक्री बजट बनाना है।

बिक्री बजट विकसित करते समय प्रबंधन आर्थिक स्थितियों, बाजार प्रतिस्पर्धा, उत्पादन क्षमता और बिक्री खर्चों का ध्यानपूर्वक विश्लेषण करता है। ये सभी कारक कंपनी के भविष्य के प्रदर्शन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। असल में, बिक्री बजट वह प्रबंधन है जो उत्पाद के बिक्री के द्वारा राजस्व एकत्रित करने में मदत करता है।

प्रबंधन अक्सर बिक्री और राजस्व अनुमानों में मदद के लिए विभिन्न विभागों में कर्मचारियों का उपयोग करता है। उदाहरण के लिए, प्रबंधन भविष्य के वर्ष के लिए उचित बिक्री लक्ष्य स्थापित करने के लिए बिक्री विभाग या विक्रेता से परामर्श करेगा। व्यक्तिगत बिक्री कर्मियों के पास उच्च स्तर के प्रबंधन की तुलना में मौजूदा रुझानों के साथ-साथ ग्राहक क्षेत्र का अधिक अनुभव और अधिक ज्ञान होता है। विभिन्न विभागों से जानकारी करने के बाद एक बिक्री का बजट का मसौदा तैयार किया जा सकता है।

बिक्री बजट न केवल कंपनी के लिए लक्ष्य निर्धारित करता है, बल्कि यह अन्य कंपनी के व्यापक बजट के लिए एक ढांचा भी प्रदान करता है। हर दूसरा बजट बिक्री बजट पर आधारित है। यही कारण है कि बिक्री बजट मास्टर बजट के लिए शुरुआती बिंदु है। एक कंपनी को पता होना चाहिए कि यह कितना उत्पाद बेचेगा परंतु इससे पहले उसे क्रय बजट, विनिर्माण बजट और पूंजीगत व्यय बजट निर्धारित कर लेना चाहिए, जिससे यह अनुमान लगाया जा सके कि बिक्री से कितना राजस्व एकत्रित उत्पन्न होगा।

बिक्री बजट मूल बातें

एक बिक्री बजट भविष्य की लेखांकन अवधि के लिए बिक्री का अनुमान है। बिक्री बजट अक्सर पहले, दूसरे, तीसरे और चौथे वित्तीय तिमाही के अनुमानों में विभाजित होते हैं। बिक्री बजट के महत्वपूर्ण घटकों का अनुमान इकाई की बिक्री, प्रति यूनिट मूल्य और छूट और रिटर्न के लिए भत्ता के आधार पर लगाते है। प्रति यूनिट मूल्य से गुणा अनुमानित इकाई बिक्री बजट की सकल बिक्री के बराबर होती है। बजट की सकल बिक्री कम अनुमानित बिक्री छूट और रिटर्न अवधि के लिए बजट की शुद्ध बिक्री है।

बिक्री बजट बनाना

बिक्री की भविष्यवाणी करना और मांग का अनुमान लगाना मुश्किल है। बिक्री बजट बनाने के लिए, प्रबंधक बाजार कारकों, वर्तमान आर्थिक स्थितियों और व्यापार-विशिष्ट उत्पादन क्षमता पर विचार करते हैं। यथार्थवादी बिक्री बजट बनाने के लिए, प्रबंधन को विभिन्न पदों पर विभिन्न स्तरों पर बिक्री कर्मचारियों को

सहायता प्रदान करने की आवश्यकता होती है। बिक्री प्रतिनिधियों के पास ग्राहक चिंताओं और प्रवृत्तियों की महत्वपूर्ण जानकारी होती है, जो प्रबंधन को भावी प्रदर्शन की भविष्यवाणी करने में सहायता कर सकती हैं।

बिक्री बजट और अन्य बजट

हालांकि बिक्री बजट बिक्री विभाग के लिए सबसे उपयोगी है, लेकिन इसके अन्य उपयोग भी हैं। बिक्री बजट कई परिचालन बजटों में से एक है जो कंपनी के लिए मास्टर बजट बनाने में योगदान देता है। मास्टर बजट में प्रत्यक्ष श्रम, प्रत्यक्ष सामग्री, तैयार माल, विनिर्माण उपरि, उत्पादन, बिक्री और प्रशासनिक व्यय आिद शामिल होता है। बिक्री बजट में अनुमान सीधे तौर पर उत्पादन बजट में अनुमानित उत्पादों की मात्रा को प्रभावित करते हैं। परिणाम स्वरूप यह प्रत्यक्ष सामग्री, प्रत्यक्ष श्रम और विनिर्माण ओवरहेड बजट को प्रभावित करता है।

वास्तविक एवं लचीला बिक्री बचट

लेखांकन अवधि के अंत में, प्रबंधन अक्सर वास्तविक बजट या लचीले बिक्री बजट विश्लेषण करता है। प्रबंधन या तो लचीला बजट या स्थिर बजट का उपयोग करके प्रदर्शन का विश्लेषण कर सकता है। एक स्थिर बजट वास्तविक परिणामों की तुलना बजट अनुमानों से करता है, भले ही कितनी इकाइयां बेची गयी हो। एक लचीला बजट बेची गई इकाइयों की वास्तविक मात्रा के लिए राजस्व आंकड़ा समायोजित करता है। उदाहरण के लिए, एक व्यवसायी ने 10 इकाइयों की बिक्री 5 डॉलर प्रति डॉलर इकाई तय की लेकिन केवल नौ इकाइयां बेचीं। एक स्थिर बजट वास्तविक परिणामों की तुलना $ 50 राजस्व बजट से करेगा, जबकि लचीला बजट के लिए वास्तविक राजस्व आंकड़ा 45 डॉलर होगा।

बिक्री बजट एक प्रभावी व्यापार योजना

क्या हम सही तरीके से योजना बना रहे हैं - क्या हम पैसे कमाएंगे? आपको कैसे मालूम? इसका जवाब आपके व्यवसाय के लिए ऑपरेटिंग या मास्टर बजट के विकास और विश्लेषण में है। ऑपरेटिंग बजट का पहला और सबसे बुनियादी घटक बिक्री बजट है, जिसमें अपेक्षित इकाइयों और बिक्री योजना से अपेक्षित राजस्व सूचीबद्ध है। आपके बिक्री पूर्वानुमान जितना अधिक सटीक होगा, उतना ही प्रभावी ढंग से आप व्यवसाय का प्रबंधन कर सकते हैं।

बिक्री बजट आने वाले लेखांकन या बजट अवधि के लिए एक व्यापार की बिक्री अपेक्षाओं को याद करता है और बिक्री योजना के लिए सकल राजस्व को जोड़ता है। यह दोनों इकाइयों और डॉलर में व्यक्त किया जाता है। सीमित उत्पाद श्रेणियों और क्षेत्रों के साथ छोटी कंपनियां समग्र रूप से व्यापार के लिए बिक्री बजट विकसित कर सकती हैं। उत्पादों की एक श्रृंखला के साथ बड़ी कंपनियां आमतौर पर सादगी के लिए उत्पाद श्रेणियों और / या भौगोलिक क्षेत्रों में बजट को जोड़ती हैं और समय पर काम पूरा करती हैं। बिक्री बजट आमतौर पर मासिक या तिमाही प्रारूप में तैयार और प्रस्तुत किया जाता है (एक वार्षिक प्रारूप थोड़ा क्रियाशील अंतर्दृष्टि प्रदान करता है और अवसर को हाइलाइट नहीं करता है)।

कई विभाग बिक्री बजट में योगदान देते हैं। बेशक, अधिकांश इनपुट बिक्री टीम से आता है, जो ग्राहकों के साथ दिन-दर-दिन आधार पर काम करता है। विपणन प्रचार जानकारी प्रदान करता है, जो बिक्री के समय और मात्रा दोनों को प्रभावित कर सकता है।

इंजीनियरिंग द्वारा विक्सित किये गए नए उत्पाद और रिलीज तिथियों के साथ-साथ पुराने उत्पादों को बंद करने में अंतर्दृष्टि हो सकती है। कार्यकारी दल योजनाबद्ध डिवीजनों या अधिग्रहणों के आधार पर इन आंकड़ों की समीक्षा और संशोधन कर सकता है। एक यथार्थवादी और सफल बिक्री बजट की कुंजी पिछले वर्ष और पिछली तिमाही के बजट के साथ इसकी तुलना है।

एक साधारण बिक्री बजट का एक उदाहरण

यदि हम आर्ट क्राफ्ट पोटरी का उपयोग हमारे उदाहरण के रूप में करते हैं, जो बजट पर लेख से आता है- ऑपरेटिंग बजट कैसे विकसित करें, निम्नलिखित जानकारी का उपयोग बिक्री बजट को विकसित करने के लिए किया जा सकता है:

आर्ट क्राफ्ट पोटरी के लिए क्वार्टर 1 से 4 के लिए निम्नलिखित जानकारी दी गई है। मिट्टी के बर्तनों के प्रति टुकड़े की कीमत Rs. 10.00 है। हमें साल के लिए प्रत्येक तिमाही के साथ बिक्री बजट की आवश्यकता है। इन्हें क्षेत्र में बिक्री के लोगों द्वारा प्रदान किए गए बिक्री आंकड़े पूर्वानुमानित हैं।

तिमाही	1	2	3	4	Year
इकाई	1,000	1,200	1,500	2,000	5,700
बिक्री मूल्य प्रति इकाई	X 10	X 10	X 10	X 10	X 10
बिक्री बजट	10,000	12,000	15,000	20,000	57,000

एक बिक्री योजना एक विपणन योजना के साथ सह-अस्तित्व में होती है, और साथ में वे वर्तमान ज्ञान के आधार पर एक निश्चित अवधि के लिए बनायीं जाती है,

- उद्देश्यों (व्यापक रूप से कहा गया)
- लक्ष्य (सीमित और मापनीय)
- आपके लक्षित बाजार की परिभाषा
- रणनीतियों और रणनीति जो सर्वोत्तम काम कर सकती हैं और क्यों
- बिक्री टीम कोटा और प्रेरणा
- बजट
- समय

4.3. बिक्री बजट के लिए शर्तें

यह बजट बजट अवधि में प्राप्त होने वाली बिक्री की मात्रा और मूल्यों का पूर्वानुमान है। आम तौर पर, बिक्री बजट कार्यात्मक बजट की तैयारी के लिए प्रारंभिक बिंदु है। यह बजट उत्पादों, बिक्री क्षेत्रों या क्षेत्रों, विक्रेता या एजेंट के अनुसार, ग्राहकों के प्रकार आदि के आधार पर तैयार किया जा सकता है। निम्नलिखित विधियों में से किसी एक या अधिक की सहायता से एक बिक्री बजट तैयार किया जा सकता है:

(i) **पिछली बिक्री का विश्लेषण:** पिछली बिक्री का विश्लेषण यह पता लगाने के लिए किया जाता है कि भविष्य में क्या परिवर्तन होने की संभावना है। हालांकि, पिछले बिक्री के अलावा, बिक्री प्रबंधक को भविष्य की बिक्री को प्रभावित करने वाले अन्य कारकों पर विचार करना चाहिए, उदाहरण के लिए, मौसमी उतार-

चढ़ाव, बाजार की वृद्धि, व्यापार चक्र इत्यादि। सांख्यिकीय पद्धति का इस्तेमाल बिक्री प्रक्षेपण के लिए किया जा सकता है।

(ii) **बाजार विश्लेषण:** बाजार विश्लेषण का उद्देश्य किसी उत्पाद के लिए संभावित बाजार मांग, ग्राहकों, फैशन, रुझान, लोगों की क्रय शक्ति, प्रतिस्पर्धियों की गतिविधियों और उपभोक्ताओं द्वारा भुगतान की जाने वाली कीमतों के लिए संभावित बाजार की मांग का पता लगाना है।

(iii) **सेल्समैन की रिपोर्ट:** सेल्समैन- जो बाजार के साथ घनिष्ठ संपर्क में हैं- से बिक्री प्रबंधक को अपेक्षित बिक्री, ग्राहकों के स्वाद और वरीयताओं, संभावित प्रतिस्पर्धा आदि के रूप में एक रिपोर्ट जमा करने के लिए कहा जा सकता है।

(iv) **सामान्य व्यापार संभावनाएं:** ऊपर या नीचे की बिक्री की संभावना सामान्य व्यापार संभावनाओं पर निर्भर करती है। राजनीतिक या आर्थिक स्थितियों में बदलाव बिक्री की मात्रा को प्रभावित करने के लिए बाध्य है। इस संबंध में मूल्यवान जानकारी वित्तीय पत्रों और पत्रिकाओं, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय आर्थिक आंकड़ों, अंतर्राष्ट्रीय संबंधों, राजनीतिक प्रभावों, सरकारी नीतियों आदि से जानी जा सकती है।

(v) **व्यापार की शर्तें:** नीतियों और व्यापार के तरीकों में परिवर्तनों पर भी विचार किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, नए उत्पाद या नए डिजाइन की शुरूआत, विज्ञापन पर अतिरिक्त खर्च, बेहतर डिलीवरी, बिक्री के बाद की सेवाओं आदि का बिक्री पूर्वानुमान पर कुछ बाजार प्रभाव पड़ता है जिसे सटीकता की उचित डिग्री के साथ माना जाना चाहिए।

(vi) **विशेष शर्तें:** कभी-कभी, व्यवसाय के बाहर कुछ विशेष स्थितियां इसकी बिक्री को प्रभावित कर सकती हैं। उदाहरण के लिए, विशेष क्षेत्र के विकास से कारों, स्कूटर, चक्र या गांव के विद्युतीकरण की मांग हो सकती है, रेडियो, टेलीविजन इत्यादि की बिक्री पर असर पड़ सकता ह

बिक्री बजट की तैयारी के तरीके

1. पिछली बिक्री का विश्लेषण

पिछले 5 से 10 साल के बिक्री का विश्लेषण किया जाता है। जैसे लंबी अवधि की प्रवृत्ति, मौसमी प्रवृत्ति, चक्रीय प्रवृत्ति तथा अन्य कारक लंबी अवधि की प्रवृत्ति कई वर्षों में एक व्यवसाय की किस्मत के आंदोलन का प्रतिनिधित्व करती है। मौसमी प्रवृत्ति कई प्रकार के व्यवसाय को प्रभावित कर सकती है और इसलिए इस कारक को कई वर्षों में लगातार महीनों के आंकड़ों का अध्ययन करते समय ध्यान में रखा जाना चाहिए। चक्रीय प्रवृत्ति व्यापार चक्र के प्रभाव के कारण व्यापार गतिविधि में उतार-चढ़ाव का प्रतिनिधित्व करती है।

चक्रीय प्रवृत्ति का अध्ययन करने के लिए दीर्घकालिक और मौसमी प्रवृत्तियों के प्रभावों को नजरअंदाज करना वांछनीय है। अन्य कारकों में उद्योग हड़ताल या गंभीर आग या बाढ़ शामिल हैं।

ऐसे विश्लेषण से, भविष्य के रुझानों का सुझाव देना संभव होगा। ऐसी बिक्री का विश्लेषण करने में, व्यापार इकाइयों और वाणिज्यिक खुफिया इकाइयों, सरकारी प्रकाशन इत्यादि द्वारा उत्पादित सांख्यिकीय रिपोर्ट से काफी मदद प्राप्त की जा सकती है।

2. खुद के बिक्री कर्मचारियों द्वारा फील्ड अनुमान

प्रत्येक क्षेत्र में विक्रेता को अगले कुछ महीनों या वर्षों में अपनी बिक्री को प्रभावित करने वाले कारकों का अंतरंग ज्ञान होना चाहिए। वह शायद अपने ग्राहकों की दुकानों में बेकार स्टॉक के बारे में अनुमान लगा सकता है। वह भविष्य की बिक्री का अनुमान लगाने की स्थिति में है। जब इस तरह के अनुमान कई सालों से उपलब्ध होते हैं, तो वर्ष के लिए वास्तविक बिक्री की तुलना अनुमानित बिक्री और एक सुधार कारक से की जा सकती है ताकि प्रत्येक विक्रेता की प्रवृत्ति को अधिक अनुमान लगाने की अनुमति मिल सके।

3. संभावित बाजार का विश्लेषण:

लोग बाजार अनुसंधान बाजार की स्थिति, क्षेत्र में आबादी, फैशन के रुझान, ग्राहकों द्वारा आवश्यक उत्पाद डिज़ाइन का प्रकार, लोगों की शक्ति खरीदना, प्रतिस्पर्धियों की गतिविधियों और उपभोक्ताओं को भुगतान की जाने वाली कीमतों पर रिपोर्ट कर सकते हैं।

4. बिक्री को प्रभावित करने वाले कारकों के प्रभाव का अध्ययन करना:

कंपनी नीति या विधियों में कोई भी बदलाव का हमेशा विचार किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, विशेष छूट, विशेष विक्रेता, उत्पाद का एक नया डिज़ाइन, नए या अतिरिक्त विज्ञापन अभियान, बेहतर डिलीवरी का परिचय, बिक्री के बाद सेवा का बिक्री बजट पर कुछ बाजार प्रभाव होना चाहिए। ऐसे पूर्वानुमान तैयार करते समय, बिक्री प्रबंधक को विभागीय प्रबंधकों और अन्य बिक्री कर्मचारियों, बजट अधिकारी और एकाउंटेंट की राय पर विचार करना चाहिए। यह देखा जाएगा कि बिक्री बजट की तैयारी में कई कारक शामिल हैं और शर्तों के उच्च स्तर के ज्ञान, और ज्ञात तथ्यों से कटौती करने की क्षमता और बजट अनुमानों पर बिक्री के संभावित अनुमान के विभिन्न अनुमान शामिल हैं। यदि बिक्री मुख्य बजट कारक है, तो बिक्री बजट पहले तैयार किया जाता है। यदि उत्पादन महत्वपूर्ण कारक है, तो उत्पादन बजट पहले बनाया जाना चाहिए और बिक्री बजट द्वारा लगाए गए सीमाओं के भीतर बिक्री बजट तैयार किया जाना चाहिए।

उदाहरण :

एबी कंपनी लिमिटेड दो उत्पादों ए और बी बनाती है, और उन्हें दो डिवीजनों - नॉर्थ और साउथ के माध्यम से बेचती है। बजट समिति को बिक्री बजट जमा करने के उद्देश्य से, निम्नलिखित जानकारी उपलब्ध कराई गई है:

Product	North	South
A	4,000 at Rs. 9	6,000 at Rs. 9
B	3,000 at Rs. 21	5,000 at Rs. 21

Actual sales of the current year were:

Product	North	South
A	5,000 at Rs. 9	6,000 at Rs. 9
B	2,000 at Rs. 21	4,000 at Rs. 21

बाजार के अध्ययन से पता चलता है कि उत्पाद, ए, लोकप्रिय है लेकिन कम कीमत वाला है। यह देखा गया है कि अगर ए की कीमत 1 रुपये बढ़ी है तो उसे अभी भी तैयार बाजार मिल जाएगा। दूसरी तरफ, बी ग्राहकों

के लिए अधिक मूल्यवान है और यदि बी की बिक्री मूल्य 1 रुपये कम हो जाती है तो बाजार अधिक अवशोषित कर सकता है। प्रबंधन उपरोक्त मूल्य परिवर्तनों को प्रभावित करने पर सहमत हो हो सकता है। एक सही उत्पाद की बाजार के अध्ययन के हिसाब से सही लॉन्चिंग की तैयारी उसकी सफलता को दुगुनी कर देती है।

4.4. बिक्री कोटा

कोटा से आशय

वस्तुओं के विक्रय क्षेत्रों का निर्धारण एवं कोटा दो ऐसे उपकरण है जिनका उपयोग प्रत्येक प्रगतिशील उद्योगपति के द्वारा किया जाता है। "कोटा से अर्थ विक्रय लक्ष्य के उस भाग से है जिसको एक विशिष्ट दुकानदार या विक्रयकर्ता या डीलर के द्वारा एक निश्चित अवधि में पूरा करना पड़ता है।" यह कोटा रुपयो की मात्रा, वस्तुओं या इकाईयों की संख्या या शुद्ध लाभ की मात्रा में निर्धारित किया जाता है। कोटा के क्षेत्र में कुछ विद्वानों की परिभाषायें इस प्रकार है –

1. जे. आर. डॉबमैन के अनुसार, कोटा एक निष्पादन है जिसकी यथोचित रीति से आशा की जाती है। विशेष रूप से यह विक्रय की एक अनुमानित मात्रा है जिसको उद्देश्य के रूप में पूर्व निर्धारीत समय में प्राप्त किया जाता है।"
2. कण्डिफ व स्टिल के अनुसार – "कोटा एक परिणाम रूप में वर्णित लक्ष्य है जिसको एक विशिष्ट विपणन इकाई जैसे विक्रयकर्ता या क्षेत्र को दिया जाता है।"
3. अमरीकन मार्केटिंग एसोशियसन ने विक्रय कोटा का अर्थ "एक विक्रय लक्ष्य से लगाया है जो विक्रय प्रयत्नो के प्रबन्ध के व्यवहार में एक विपणन इकाई को दिया गया है।"

इन परिभाषाओं से यह अर्थ निकलता है कि विक्रय क्षेत्र में कोटा

(1.) संस्था की कुल अनुमानित बिक्री का एक हिस्सा है जो

(2.) एक विक्रयकर्ता, शाखा, डीलर, वितरक आदि को एक निर्धारित समय में बेचने के लिए दिया जाता है। (3.) यह एक लक्ष्य है जिसको पूरा करने का उनका उत्तरदायित्व होता है।

विक्रय कोटा निर्धारण को प्रभावित करने वाले घटक

विक्रय कोटा निर्धारण में बहुत से घटक प्रभाव डालते है। यह घटक निम्न प्रकार से है -

1. गत वर्ष की बिक्री,
2. भावी विक्रय अनुमान
3. बाजार सम्भाव्यताएँ
4. वस्तु सुधार
5. विज्ञापन एवं विक्रय संवर्द्धन बजट
6. उत्पादन मात्रा
7. प्रतियोगिता
8. उपभोक्ता की क्रय शक्ति आदि।

4.5. विक्रय कोटा निर्धारित करने के कारण

व्यवसाय में विक्रय कोटा का निर्धारण विभिन्न कारणों से किया जाता है, लेकिन इसका मुख्य कारण निर्धारित विक्रय करने के लिए विक्रयकर्ता, डीलर, वितरक आदि को प्रयत्नशील बनाये रखना है और साथ ही उनकी कार्यक्षमता को भी निर्धारित करते रहना है जिससे की उनकी आवश्यक प्रतिफल या दण्ड दिया जा सके। विक्रय को निर्धारित करने के निम्नलिखित कारण हैं -

1. **भावी आवश्यकताओं का अनुमान लगाने के लिए** – बिक्री का भावी अनुमान कोटा के आधार पर ही लगाया जाता है। जब बिक्री का अनुमान लग जाता है तो विज्ञापन, विक्रय संवर्द्धन, कर्मचारी साज सज्जा, व्यय, स्टाक, पूँजी आदि की आवश्यकताओं का अनुमान लगाया जा सकता है।
2. **क्षेत्रीय उद्देश्य की स्थापना के लिए** – कोटा निर्धारित करने से प्रत्येक क्षेत्र की क्षमता का पता लग जाता है। जिन क्षेत्रों में बिक्री निर्धारित कोटा से कम होती है वे कमजोर क्षेत्र कहलाते है। ऐसे क्षेत्र का पता लगाकर उस सम्बन्ध में उचित प्रयत्न किये जा सकते है।
3. **विक्रयकर्ताओं के लक्ष्य को बताने के लिए** – विक्रय कोटा निर्धारित करने का एक कारण विक्रयकर्ताओं के लक्ष्यों को रुपयो, ईकाइयों या बिन्दुओं में निर्धारित कर उनको कार्य करते रहने के लिए प्रेरित करते रहना है जिससे वे अच्छे से अच्छा कार्य कर सके। ऐसा करने से उनपर उचित नियन्त्रण भी किया जा सकता है।
4. **विक्रयकर्ता के कार्य का मूल्यांकन करने के लिए** – विक्रय कोटा निर्धारित करने से विक्रयकर्ता के कार्यों का मूल्यांकन किया जा सकता है। इसके लिए उसके कार्य की तुलना पूर्व निर्धारित कोटे से की जा सकती है। ऐसा करने से उसके वेतन, कमीशन, भत्ते आदि में उचित समायोजन किया जा सकता है। उसको पदोन्नति दी जा सकती है या उसकी अवनति की जा सकती है। विक्रयकर्ताओं की कमियों का पता लगाकर उसके सम्बन्ध में उचित कदम उठाये जा सकते है।
5. **बाजार का ज्ञान करने के लिए** – विक्रय कोटा निर्धारित करने का एक कारण प्रबन्धको को बाजार का सम्पूर्ण ज्ञान कराना है। यदि कोटे निर्धारित किये जायें तो प्रबन्धको को बाजार का पूरा ज्ञान ही नही हो सकता है।

विक्रय कोटा के प्रकार

विक्रय कोटा कितने प्रकार का है यह निश्चित नही है। विभिन्न संस्थायें विभिन्न प्रकार के कोटो का उपयोग करती है। साधारणतया कोटे तीन प्रकार के होते है -

1. **विक्रयकर्ता का कोटा** – ऐसा कोटा निर्धारित करने की परम्परा व्यवसाय में बहुत ही अधिक पायी जाती है। इसमें प्रत्येक विक्रयकर्ता का विक्रय कोटा निर्धारित कर दिया जाता है जिसको पूरा करना सेवाओं को चालू रखने के लिए आवश्यक होता है। कभी कभी प्रत्येक विक्रयकर्ता का कोटा उसके वेतन और भत्तो के आधार पर निर्धारित कर दिया जाता है। यदि वेतन और भत्ते कम होते है तो कोटा कम होता है, लेकिन इसके विपरीत यदि वेतन और भत्ते अधिक होते है तो कोटा भी अधिक होता है।
2. **डीलर या वितरक कोटा** – जब एक निर्माता अपनी वस्तु के विक्रय के लिए अपने डीलर या वितरक का कोटा निर्धारित कर देता है तो ऐसे कोटे को डीलर या वितरक का कोटा कहते है। ऐसे डीलर या

वितरक के लिए डीलरशिप या डिस्ट्रीब्यूटरशिप को चालू रखने के लिए अपना कोटा पूरा करना आवश्यक होता है।

3. **शाखा का कोटा** – जब एक शाखा की एक निर्धारित समय में एक पूर्व-निर्धारित मात्रा का विक्रय करना आवश्यक होता है तो ऐसा कोटा शाखा का कोटा कहलाता है। शाखा प्रबन्धक इस कोटे की पूर्ति अपने विक्रयकर्ताओं के माध्यम से करता है। इसी प्रकार यदि निर्माता का मण्डलीय कार्यालय है तो मण्डल के आधार पर भी मण्डलीय कोटा निर्धारित किया जाता है।

इसके विपरीत, यदि विक्रय संगठन जिला व राज्य आधार पर है तो जिले का कोटा और राज्य का कोटा निर्धारित किया जा सकता है।

आमतौर पर कोटों के तीन स्वरूप होते है (1.) रूपयो में (2.) इकाइयों में (3.) बिन्दुओं में।
कोटे को रुपयो व इकाइयों में व्यक्त करना बहुत आसान है : जैसे, एक लाख की बिक्री प्रतिमाह करने का कोटा या 10 कुण्टल माल प्रति माह बेचने का कोटा या 100 इकाई प्रति माह बेचने का कोटा। लेकिन बिन्दु में प्रत्येक क्रिया पर बिन्दु दिये जाते है और एक विक्रयकर्ता को कुछ पूर्व निर्धारित बिन्दु प्राप्त करना आवश्यक होता है जो कोटा कहलाता है।

4.6. कोटा निर्धारित करने के सिद्धान्त

कोटा निर्धारित करने समय कुछ सिद्धान्तो को ध्यान में रखना चाहिए जिससे कि कोटे व्यवहारिक हो सके और लक्ष्य को प्राप्त कर सके तथा असफलताओं का मुँह न देखना पड़े। यह सिद्धान्त निम्नलिखित है।

1. **सरलता** – कोटा निर्धारित करने का तरीका सरल होना चाहिए जिससे कि उसको विक्रयकर्ता व अन्य सम्बन्धित व्यक्ति आसानी से समझ सके।
2. **निश्चितता** – कोटा निर्धारण का दूसरा सिद्धान्त निश्चितता है। कोटो का निर्धारण भौगोलिक, व्यक्तिगत, रुपये, इकाईयों आदि किसी भी रूप में हो लेकिन उनमें निश्चितता अवश्य होनी चाहिए। इसका कारण यह है कि विक्रयकर्ता को यह पता स्पष्ट रूप से होना चाहिए कि उसको किस लक्ष्य को प्राप्त करना है।
3. **समानता** – कोटे को निर्धारित करते समय समानता के सिद्धान्त को ध्यान में रखना चाहिए। कोटा इतना ऊँचा नही होना चाहिए कि उसको प्राप्त करना असम्भव हो। जिन क्षेत्रो में विक्रय सम्भाव्यता अधिक हो वहाँ कोटा अधिक तथा जहाँ विक्रय सम्भाव्यता कम है वहाँ कम।
4. **वस्तुनिष्ठता** – कोटा निर्धारित करने का एक सिद्धान्त वस्तुनिष्ठता भी है। इसके अनुसार कोटा ऐसे तथ्यों पर आधारित होना चाहिए जो विपणन अनुसंधान के ठोस तरीके से एकत्रित किये गये हो।
5. **लोचशीलता** – कोटे में लोचशीलता भी होनी चाहिए जिससे उसको आर्थिक व व्यवसायिक परिस्थितियों के अनुसार ढ़ाला जा सके।
6. **स्थिरता** – कोटा निर्धारित करने के तरीके व कोटे में परिवर्तन समय-समय पर नही करना चाहिए बल्कि उसमें स्थायित्व होना चाहिए।

7. **पीछ करना** – कोटा निर्धारण का एक सिद्धान्त पीछा करने का है। इसका अर्थ यह है कि जो कोटा एक निश्चित समय के लिए निर्धारित किया गया है उसकी तुलना विक्रयकर्ता की उपलब्धि से अवश्य को जानी चाहिए जिससे की वेतन में समायोजन, पदोन्नति, प्रेरणा, आदि दी जा सके।

4.7. विक्रय कोटा निर्धारण के ढ़ंग

विक्रय कोटा निर्धारित करने के दो ढ़ंग है जो निम्नलिखित है -

1. **बिना कुल बिक्री के अनुमान के आधार पर** – विक्रय कोटा निर्धारण के इस तरीके में सर्वप्रथम विक्रयकर्ता, शाखा प्रबन्धक, डीलर, वितरक, आदि से कहा जाता है कि वे आगामी समय में होने वाली बिक्री के लिए अपने-अपने क्षेत्र का अनुमान लगाकर दें। वे अपने-अपने क्षेत्र की विभिन्न सूचनाओं के आधार पर अपना-अपना विक्रय अनुमान लगाकर संस्था को देते है। इसके बाद एक विक्रय सम्मेलन बुलाया जाता है जिसमें सभी विक्रयकर्ता, शाखा प्रबन्धक, डीलर, वितरक आदि एकत्रित होते है। इस विक्रय सम्मेलन में आमतौर पर अनुमानित विक्रय के आधार पर प्रत्येक क्षेत्र का कोटा अन्तिम रूप में निर्धारित कर दिया जाता है। अब यह कोटे उच्चस्तरीय कार्यकारी प्रबन्धको को उनके अनुमोदन हेतु प्रस्तुत कर दिये जाते है जो उनको वैसे ही स्वीकार कर लेते है या उनको संशोधित करके स्वीकार कर लेते है।
2. **कुल बिक्री के अनुमान के आधार पर** – इस तरीके में सर्वप्रथम संस्था की कुल भावी बिक्री का अनुमान लगाया जाता है। उसके बाद उस अनुमानित कुल भावी बिक्री को विभिन्न क्षेत्रो, विक्रयकर्ताओं, आदि में बाँट दिया जाता है। भावी बिक्री का अनुमान निम्नलिखित तरीके से लगाया जाता है।
    - (i) कुछ संस्थाये गत वर्ष की बिक्री को आधार मानकर उसमें मनमाना प्रतिशत जोड़कर भावी अनुमान लगा लेती है जबकि कुछ गत वर्षो की बिक्री का औसत निकाल कर उसमें मनमाना प्रतिशत जोड़कर देती है। यह तरीका अच्छा नही होता है। इसका कारण यह है कि इसमें प्रतिशत जोड़ने का ठोस आधार नही होता है।
    - (ii) दूसरा तरीका यह है कि जिसमें गत वर्ष में उद्योग व कम्पनी की बिक्री में जो आनुपातिक स्थिति रही है उसी के आधार पर बिक्री का अनुमान लगा लेते है। यदि बिक्री बढ़ती है तो बढ़ने का और अगर घटती है तो घटने का। यह तरीका वैसे तो अच्छा है लेकिन एक कमी है, वह यह कि इसमें पिछली बिक्री का आधार उचित मानकर चलते है।
    - (iii) तीसरा तरीका वह है कि जिसमें आंकड़े एकत्रित किये जाते है और फिर सभी बातो को ध्यान में रखकर तर्कपूर्ण ढ़ंग से अनुमान लगाया जाता है। आजकल अधिकांश प्रगतिशील संस्थायें एक आधार को मानकर ही अपना विक्रय अनुमान लगाती है।

4.8. विक्रय कोटा की सीमायें

विक्रय कोटा के संबन्ध में कुछ विद्वानों का मत है कि इसका उपयोग सीमित मात्रा में किया जाना चाहिए। इस सन्दर्भ में कोटा प्रणाली की आलोचना इस आधार पर की जा सकती है -

1. इसके ग्राहक के पास आवश्यकता से अधिक वस्तु जमा हो जाती है और उस पर काफी दबाब डालकर विक्रय किया जाता है।
2. दूसरे साधारणतया यह देखा जाता है कि कोटे का निर्धारण किसी विपणन अनुसंधान के आधार पर न करके मनमाने ढ़ंग से किया जाता है जो या तो अधिक या कम होते है जो विक्रयकर्ता व संस्था दोनो के लिए अनुचित है।
3. सही कोटा निर्धारित करना असम्भव है। इसका कारण यह कि बहुत सी बाते ऐसी है जो कभी भी स्थिर नही रहती जैसे – सरकारी कर, प्रतियोगिता, मौसम, हड़ताले व तालाबन्दी, स्टाइल में परिवर्तन आदि। यह सभी वह घटक है जो वस्तु के विक्रय को प्रभावित करते हैं जबकि कोटा इन सबमे स्थिरता को मानकर चलता है। आजकल इस सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि आधुनिक उन्नत सांख्यिकी व बाजार विश्लेषण तकनीकि से इन सभी बातो को ध्यान में रखकर कोटा निर्धारित किया जाता है। जो वास्तविकता से मेल खा सकता है।

कुल बिक्री के भावी अनुमान को विक्रयकर्ताओं, डीलर, शाखाओं, क्षेत्रों, आदि को किस प्रकार बांटा जाय ? इसके बांटने के निम्न तरीके हैं -

1. **सबसे सरल व आसान तरीका यह है** कि जिस दर से भावी बिक्री का अनुमान संस्था ने लगाया है उसी दर से उस क्षेत्र, विक्रेता, विक्रयकर्ता, आदि की गत वर्ष की बिक्री में वृद्धि करके नया कोटा निर्धारित कर दिया जाय। उदाहरण के लिए यदि संस्था ने अपनी कुल बिक्री में 20 प्रतिशत की वृद्धि का अनुमान लगाया है तो विक्रयकर्ता, शाखा, वितरक, आदि की गत वर्ष की बिक्री को आधार मानकर उसमें 20 प्रतिशत से वृद्धि करके नया कोटा निर्धारित कर दिया जायेगा। यह तरीका अधिक अच्छा प्रतीत नहीं होता है। इसका कारण यह है कि इसमें आर्थिक, सामाजिक व अन्य परिवर्तनों को ध्यान में नहीं रखा जाता है।
2. **विक्रय का कोटा निर्धारित करने का यह दूसरा तरीका है।** इसमें सबसे पहले उस सम्बन्धित वर्ष के लिए सम्पूर्ण बिक्री का अनुमान लगाया जाता है, फिर यह पता लगाया जाता है कि गत वर्ष में उद्योग की कुल बिक्री का कितना प्रतिशत सम्बन्धित क्षेत्र में बिका। इसके बाद भावी विक्रय अनुमान में उसी प्रतिशत का गुणा करके जो फल आता है उसे उस क्षेत्र के कोटे के रूप में निर्धारित कर दिया जाता है। यह इस बात पर आधारित है कि किसी क्षेत्र में गत वर्ष में जितने प्रतिशत बिक्री हुई है उसमें अगले वर्ष कोई अन्तर नहीं पड़ेगा और उतने ही प्रतिशत बिक्री अगले वर्ष भी हो जायेगी। इस प्रकार यह तरीका भी गत वर्ष की बिक्री पर आधारित है। इसमें यह अवगुण है कि भावी प्रतियोगिता व अन्य परिवर्तनशील बातों को ध्यान में नहीं रखा जाता है।

3. **विक्रय कोटा निर्धारित करने का एक तरीका यह भी है** कि जिसमें पहले संस्था की कुल बिक्री का अनुमान लगाया जाता है और फिर उस कुल बिक्री को गत वर्ष की कुल बिक्री का जितना प्रतिशत क्षेत्र में बिका है उसके आधार पर विभिन्न क्षेत्रों में बांटकर कोटा निर्धारित कर दिया जाता है।
   यह तरीका ऊपर वाले तरीके जैसा ही है अन्तर सिर्फ इतना है कि दोनों के कोटे निर्धारित करने के आधार अलग-अलग हैं। पहले वाले में आधार सम्बन्धित क्षेत्र में उद्योग की बिक्री का प्रतिशत है जबकि दूसरे में संस्था की कुल बिक्री का आधार। यह बात दोनों में ही पायी जाती है कि पिछली बिक्री को आधार मानकर ही कोटा निर्धारित करते हैं। अत: इस तरीके में भी वही अवगुण हैं कि इसमें भावी प्रतियोगिता व अन्य परिवर्तनशील बातों को ध्यान में नहीं रखा जाता है।
4. **कोटा निर्धारित करने का यह चौथा व अन्तिम तरीका है** जिसमें विभिन्न सूचनाएं एकत्रित की जाती हैं और उनका सहसम्बन्ध ज्ञात किया जाता है। इसके लिए उन घटकों को चुना जा रहा है जो संस्था की बिक्री से सहसम्बन्ध रखते हैं और फिर उनके आधार पर एक अनुक्रमांक बना दिया जाता है। इस अनुक्रमांक के आधार पर विभिन्न क्षेत्रों का कोटा निर्धारित कर दिया जाता है।

4.9. ब्रिकी इलाका

विक्रय प्रदेश का प्रबन्ध विक्रय नियोजन एवं नियन्त्रण का मूल आधार है। विक्रय क्षेत्रो का उचित निर्धारण करके विक्रय अवसरों में वृद्धि की जा सकती है तथा विभिन्न ग्राहकों को सेवा प्रदान करने व सम्भावी ग्राहकों की खोज करने में संस्था की तुलनात्मक शक्तियों एवं कमियों का पता लगाया जा सकता है। विक्रय प्रयत्नों को विक्रय अवसरों से समायोजित करने, विपणन व्यूहरचनाओं को प्रभावी बनाने, विक्रय नियोजन को यर्थाथपूर्ण बनाने तथा विक्रयकर्ताओं के निष्पादन का उचित मूल्यांकन करने में विक्रय क्षेत्र प्रबन्धक का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

विक्रय प्रदेश से आशय एवं परिभाषा – विक्रय क्षेत्र ग्राहकों का एक व्यापक भौगोलिक वितरण है जो कि राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक हो सकता है। ‘विक्रय प्रदेश’ उसका एक भाग होता है। जी. बी. गाइल्स के अनुसार, “एक विक्रय प्रदेश किसी बड़े विक्रय क्षेत्र का हिस्सा हो सकता है।’’

बी.आर. केनफील्ड के अनुसार – “विक्रय प्रदेश एक भौगोलिक क्षेत्र है जिसमें वर्तमान और सम्भावित ग्राहक सम्मिलित होते है जिनकी सेवा एक विक्रयकर्ता, शाखा डीलर या वितरक प्रभावी ढंग से एवं मितव्ययितापूर्वक कर सके।’’

स्टिल एवं कंडिफ के अनुसार – “एक विक्रय प्रदेश एक विशेष प्रकार के ग्राहकों एवं सम्भावित ग्राहको का समुदाय है जो कि एक विक्रेता को सुपुर्द किया जाता है।’’

इससे यह स्पष्ट है कि विक्रय प्रदेश विद्यमान तथा सम्भाव्य ग्राहको का समूहीकरण है। यह विशेष भौगोलिक क्षेत्र में बसे ग्राहकों की सेवा का दायित्व किसी विशिष्ट विक्रयकर्ता, शाखा कार्यालय, व्यापारी या वितरक को सौपने की प्रक्रिया है।

विक्रय प्रदेश की स्थापना के उद्देश्य, आवश्यकता एवं महत्व

विक्रय प्रदेश की स्थापना से विक्रय नियोजन एवं नियन्त्रण को प्रभावकारी बनाया जा सकता है। अनेक उद्देश्यों की पूर्ति जैसे विक्रय कार्यों को सार्थक बनाने, विक्रय पूर्वानुमान करने, सम्भावित ग्राहको की खोज करने तथा विक्रय कोटा निर्धारित करने आदि के लिए विक्रय प्रदेशों के निर्धारण की आवश्यकता होती है। विक्रय प्रदेशों के निर्धारण की आवश्यकता या महत्व के निम्न कारण है -

1. **प्रभावशाली विक्रय नियोजन** – विक्रय प्रदेश, नियोजन के पहलुओं को प्रदेशीय आधार प्रदान करने में सहायक है। विक्रय प्रदेश के आधार पर इकाई स्तर पर विक्रय योजनायें बनाई जा सकती है। इसके द्वारा संस्था के निम्नतम स्तर पर कार्य करने वाली इकाई को भी विक्रय नियोजन में शामिल किया जा सकता है।
2. **विक्रय कर्मचारियों के दायित्वों का निर्धारण** – विक्रय प्रदेशों की स्थापना करके विक्रयकर्ताओं के उत्तरदायित्वों एवं कार्यों का स्पष्ट निर्धारण किया जा सकता है। इनसे मध्यस्थो, वितरको, शाखा आदि को भी दायित्व सौपे जा सकते है।
3. **अधिकतम बाजार कवरेज प्राप्त करना** – विपणन क्षेत्र का सघन कवरेज न होने पर संख्या का बहुत सा व्यवसाय प्रतिस्पर्धियों को मिल जाता है। विक्रय प्रदेशों की स्थापना कर देने पर विक्रेताओं के विक्रय प्रयासो का बिक्री अवसरो के साथ लाभदायक संयोजन किया जा सकता है।
4. **विक्रय शक्ति निष्पादन के मूल्यांकन में सुधार करना** – विक्रय प्रदेश की स्थापना से जहाँ एक ओर विक्रेताओं के निष्पादन मूल्यांकन में सहायता मिलती है वही दूसरी ओर मूल्यांकन के आधारों, तकनीको व दृष्टिकोणों में भी सुधार होता है। विक्रय प्रदेश नियोजन के फलस्वरूप फर्म के सम्पूर्ण बाजार को विभिन्न इकाइयों में बाँट दिया जाता है इससे प्रत्येक इकाई की विशिष्ट स्थिति, समस्याओं, उत्पाद-स्वीकरण, ग्राहक सन्तुष्टि, विक्रय सम्भावनाओं विक्रेता के विक्रय एवं लागत दायित्व आदि के बारे में विक्रय प्रबन्धकों को पर्याप्त एवं सही जान हो जाता है।
5. **लाभो में वृद्धि** – विक्रय प्रदेशों की स्थापना से संस्था के लाभों में वृद्धि की जा सकती है। साथ ही विक्रेताओं को मिलने वाले पारिश्रमिक एवं पुरस्कारों को भी बढ़ाया जा सकता है। अपने विक्रय प्रदेश में अधिकतम विक्रय करके विक्रयकर्ता पदोन्नति प्राप्त करने में सफल हो जाते है।
6. **ग्राहकों के अनुरूप विक्रयकर्ताओं की नियुक्ति** – विक्रय प्रदेश की स्थापना से ग्राहकों के विभिन्न वर्ग बन जाते है, जैसे – उपभोक्ता ग्राहक, स्त्री-पुरुष ग्राहक, औद्योगिक ग्राहक, संस्था ग्राहक आदि। इससे फर्म प्रत्येक ग्राहक वर्ग की आवश्यकता के अनुसार विक्रयकर्ताओं की नियुक्ति कर सकती है।
7. **विपणन अनुसन्धान निष्कर्षों का प्रभावी उपयोग करना** – विक्रय प्रदेशों के आवंटन के पश्चात विपणन अनुसंधान के द्वारा प्रत्येक विक्रेता की विक्रय सम्भावनाओं के बारे में सही-सही अनुमान लगाना सम्भव हो जाता है। विक्रय कोटा का निर्धारण करके प्रत्येक विक्रेता का अभिप्रेणात्मक पारिश्रमिक निश्चित किया जा सकता है। प्रतिस्पर्धा का प्रभाव देश के विभिन्न भागों में अलग-अलग होता है किन्तु विक्रय प्रदेश के विभाजन के बाद अनुसन्धानकर्ता प्रतिस्पर्धात्मक शक्तियों एवं दुर्बलताओं का अधिक प्रभावी मूल्यांकन कर सकते है।

8. **विज्ञापन एवं वैयक्तिक विक्रय में सम्बन्ध स्थापित करना** – अधिकाधिक विक्रय एवं लाभों की प्राप्ति के लिए विज्ञापन एवं वैयक्तिक विक्रय प्रयासों में समन्वय होना आवश्यक है। विक्रय प्रदेश की स्थापना करके विज्ञापन एवं वैयक्तिक विक्रय प्रयासों को समन्वित करके उसमें सहक्रियात्मक प्रभाव उत्पन्न किया जा सकता है। विक्रय प्रदेशों के वितरण से प्रत्येक विक्रेता के पास निश्चित वितरको के सम्बन्ध में उत्तरदायित्व आ जाता है तथा विक्रेता वितरण से विज्ञापन संदेश पहुचने से पूर्व नियमित रूप से सम्पर्क करता रहता है।
9. **स्वतन्त्र कार्यक्षेत्र** – विक्रय प्रदेशों के निर्धारण से सभी विक्रयकर्ताओं को स्वतंत्र कार्यक्षेत्र प्राप्त हो जाता है। इससे एक दूसरे के कार्यक्षेत्र में हस्तक्षेप की सम्भावनायें समाप्त हो जाती है। उनमें आपसी मतभेद उत्पन्न नही होते है तथा आपसी सहयोग का वातावरण निर्मित होता है।
10. **मुकाबला क्षमता बढ़ाना** – विक्रय प्रदेश की स्थापना करके प्रतिस्पर्धी संस्थाओं के साथ अधिकाधिक मुकाबला करने की क्षमता में वृद्धि की जा सकती है। इससे प्रत्येक प्रदेश स्तर पर स्पर्धा में विजय प्राप्त की जा सकती है।

विक्रय प्रदेश की स्थापना की प्रक्रिया

विक्रय प्रदेशों की स्थापना करने के लिए एक क्रमबद्ध प्रक्रिया अपनानी होती है इस प्रक्रिया में निम्नलिखित कदम उठाने होते है -

1. **आधारभूत इकाइयों का चयन** – आधारभूत इकाइयाँ विक्रय प्रदेशों का सबसे छोटा हिस्सा होती है। इसको मिलाकर ही विक्रय प्रदेश का निर्माण होता है। विक्रय प्रदेश की स्थापना करने में उपयुक्त आधारभूत इकाइयों का चयन एक महत्वपूर्ण कदम है। इनका चयन करते समय ये ध्यान रखा जाना चाहिए कि ये इकाइयाँ प्रबन्धकीय आकार वाली हो ताकि ये मितव्ययिता से कवर की जा सके। इसका एक रूप होना भी आवश्यक है, यद्यपि इनके भौगोलिक आकार में सामान्यत: परिवर्तन नही होते है। एक संस्था आधारभूत इकाइयों के रूप में देश, राज्य, जिले या व्यापार क्षेत्र का चयन कर सकती है।
2. **बुनियादी इकाइयों में विद्यमान विक्रय सम्भावनाओं का निर्धारण** – बुनियादी इकाइयों की विक्रय सम्भावनाओं का पता लगाना विक्रय प्रदेश की स्थापना का दूसरा महत्वपूर्ण कदम है। इसके लिए प्रबन्धकों को बुनियादी इकाइयों के वर्तमान एवं भावी ग्राहकों की पहचान करके सम्भावित बिक्री का पूर्वानुमान करना होता है। प्रत्येक बुनियादी इकाई एक विशिष्ट भौगोलिक बाजार खण्ड होती है। इसमें रहने वाले ग्राहको की पहचान करने के लिए विभिन्न प्रकार की सूचनाओं जैसे – ग्राहको का लिंग, आयु, वर्ग, प्रकृति, रुचियां क्रय शक्ति आवश्यकताओं आदि का संकलन करना होता है। उपभोक्ता वस्तुओं की दशा में उपभोक्ताओं की संख्या अधिक होने के कारण उनसे प्रत्यक्ष सम्पर्क कर पाना सम्भव नही होता। किन्तु औद्योगिक वस्तुओं के विक्रय की दशा में क्रेताओं से प्रत्यक्ष सम्पर्क करके आवश्यक जानकारी प्राप्त की जा सकती है।
3. **विक्रय प्रदेशों का अस्थायी निर्धारण** – विक्रय सम्भावना को निश्चित कर लेने के बाद संस्था के सम्पूर्ण बाजार को प्रारम्भिक तौर पर अलग-अलग प्रदेशों में बाँटने का कार्य किया जाता है ताकि

विक्रय प्रदेश की संख्या, विक्रयकर्ताओं की संख्या, आवश्यक शाखाओं तथा मध्यस्थो की संख्या आदि को प्रारभिक रूप में ज्ञात किया जा सकें। इस अस्थायी निर्धारण के आधार पर ही प्रबन्धक स्थायी प्रदेशों की स्थापना की तैयारी करते है, आवश्यक विक्रयकर्ता मध्यस्थ नियुक्त करते है तथा साधन सुविधायें जुटाने की योजना बनाते है।

4. **बुनियादी इकाइयो का प्रायोगिक विक्रय प्रदेश में संयोजन** – प्रत्येक इकाई की विक्रय सम्भावना एवं विक्रय कवरेज का निर्धारण करने के पश्चात नियोजनकर्ता को इस चरण में प्रायोगिक विक्रय प्रदेशों की स्थापना करनी होती है। इसके लिए उन बुनियादी इकाइयों को मिलाकर प्रायोगिक विक्रय प्रदेश स्थापित किये जाते है जो विक्रय सम्भावनाओं को भावी बिक्री में बदलने की क्षमता रखती है। इस चरण में विक्रय प्रदेशों का निर्माण प्रायोगिक तौर पर किया जाता है जिनमें बाजार कवरेज की समस्या को ध्यान में रखते हुए भविष्य में समायोजन किये जा सकते है। सामान्यत: यह ध्यान रखा जाता है कि इन प्रदेशों की बिक्री सम्भावनायें समान हो। प्रायोगिक विक्रय प्रदेशों के निर्धारण में प्राय: निकटस्थ नियन्त्रण इकाइयों का समूहीकरण किया जाता है।
5. **प्रायोगिक विक्रय प्रदेशों का समायोजन एवं पुर्नवितरण** – इस चरण में प्रायोगिक विक्रय प्रदेशों में आवश्यक समायोजन एवं उनका पुर्नवितरण करके उन्हें अन्तिम रूप दिया जाता है। प्रायोगिक बिक्री प्रदेशो की बिक्री सम्भावनाओं तथा कवरेज कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए उनके आकार एवं आकृति में परिवर्तन किया जाता है। सवोत्तम प्रादेशिक व्यवस्था की प्रप्ति के लिए विक्रय प्रदेशों की स्थापना इस प्रकार की जानी चाहिए कि सभी प्रदेशों में अभिवृत्ति बिक्री का व्यय समान हो।
6. **बिक्री कर्मचारियो को विक्रय प्रदेशों का कार्य-भार सौंपना** – विक्रय प्रदेशों का स्वरूप निर्धारित हो जाने के बाद प्रदेश के आवश्यकता के अनुरूप उचित विक्रय कर्ताओं की नियुक्ति की जाती है तथा उन्हें उपयुक्त विक्रय प्रदेश का कार्य भार सौप दिया जाता है।

विक्रय प्रदेशों की स्थापना के सिद्धान्त

विक्रय नियोजन एवं नियन्त्रण की प्रभावशीलता बहुत कुछ ''विक्रय प्रदेशों'' के उपयुक्त आबंटन पर निर्भर करती है। इसके समुचित वितरण पर ही संस्था के विक्रय लक्ष्यों की प्राप्ति निर्भर करती है। विक्रय प्रबन्ध को विक्रय क्षेत्र का आबंटन करते समय निम्नलिखित बातो पर विशेष ध्यान देना चाहिए -

1. **समान वितरण क्षेत्र** – विक्रय प्रदेशों का आबंटन करते समय विक्रय प्रबन्धक को यह ध्यान रखना चाहिए कि सभी विक्रेताओं को दिये जाने वाले विक्रय प्रदेश अत्यधिक बड़े या छोटे न हो। समान वितरण से न केवल विक्रेताओं का कार्यभार उपयुक्त रहता है, वरन् ग्राहकों को सन्तोषप्रद सेवायें भी प्रदान की जा सकती है।
2. **कार्य दोहराव की समाप्ति** – विक्रय प्रदेशों के वितरण में कार्य के दोहरेपन को समाप्त किया जाना चाहिए। एक ही कार्य एक ही विक्रय प्रदेश में एक ही विक्रयकर्ता को सौंपा जाना चाहिए।
3. **आय में समानता** – विक्रय प्रदेशों का बंटवारा इस प्रकार किया जाना चाहिए कि समस्त विक्रेताओं की आय में लगभग समानता बनी रहें। आय की असमानता उत्पन्न होने पर उनको शिकायत करने का अवसर मिलेगा।

4. **अवसरो में समानता** – विक्रय प्रबन्धक इस बात का ध्यान रख सकते है कि जहाँ तक सम्भव हो सभी विक्रेताओं के कार्यों व विक्रय अवसरों में समानता बनी रहे।
5. **नियन्त्रण योग्य** – विक्रय प्रदेश का वितरण एवं विस्तार इस प्रकार किया जाना चाहिए कि उनका प्रबन्ध एवं नियन्त्रण न्यूनतम व्ययो पर किया जा सके।
6. **तुलनात्मक** – विक्रय प्रदेशों का आबंटन इस प्रकार से किया जाना चाहिए कि उनकी विक्रय सम्भावनाओं का तुलनात्मक अध्ययन सम्भव हो सके ताकि प्रत्येक विक्रेता के निष्पादन एवं उपलब्धियों का मूल्यांकन किया जा सके।
7. **मितव्ययी** – विक्रय प्रदेशों का विभाजन इस प्रकार होना चाहिए कि प्रबन्धक व विक्रयकर्ता की यात्राओं आदि में आने वाली लागत न्यूनतम बनी रहे। इसमें न्यूनतम व्ययों पर अधिकतम सेवा प्रदान करने के सिद्धान्त का पालन किया जाना चाहिए।
8. **कुशल निष्पादन** – विक्रय प्रदेशों का वितरण इस प्रकार किया जाना चाहिए कि प्रत्येक विक्रेता को अपने नियमित कार्यो को कुशलता पूर्वक करने की अभिप्रेरणा प्राप्त हो सके।
9. **नये विक्रयकर्ता को वितरण** – नये विक्रयकर्ताओं को प्रारम्भ में ही सम्पूर्ण विक्रय प्रदेश का भार नही सौपा जाना चाहए। उन्हें पहले अनुभवी विक्रयकर्ताओं के साथ रखा जा सकता है ताकि वे विक्रय तकनीकि को ठीक से सीख सके।
10. **प्रतिस्पर्धा** – प्रत्येक विक्रय प्रदेश का आकार तथा कार्य भार इतना अवश्य होना चाहिए कि वह उसमें विक्रयकर्ताओं एवं मध्यस्थों के लिए प्रतिस्पर्धा या चुनौती प्रस्तुत कर सके।
11. **निश्चितता** – प्रत्येक विक्रय प्रदेश का आकार या स्वरूप निश्चित होना चाहिए। यदि प्रदेश का भौगोलिक आधार पर विभाजन किया जाता है तो उसकी सीमायें की स्पष्ट होनी चाहिए।
12. **मूल्यांकन में सुविधा** – विक्रय प्रदेश इस प्रकार निर्धारित करना चाहिए ताकि प्रत्येक प्रदेश तथा उसमें कार्यरत विक्रयकर्ताओं के कार्यों व प्रगति का सही मूल्यांकन आसानी से किया जा सके।

विक्रय क्रियाओं पर नियन्त्रण का अर्थ

'नियन्त्रण' से आशय घटनाओं को योजनाओं के अनुरूप बनाने से है। अन्य शब्दों में कोटलर लिखते है कि नियन्त्रण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा वास्तविक परिणामें को इच्छित परिणामों के निकट लाने के प्रयास किये जाते है। इस प्रकार नियन्त्रण "निष्पादन, मूल्यांकन, जाँच पड़ताल, सत्यापन प्रमाप-निर्धारण, निर्देशन एवं विचलन को दूर करने की कार्यवाही है जिससे संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके।

"विक्रय क्रियाओं से नियन्त्रण से आशय विक्रय योजनाओं लक्ष्यों व नीतियों के अनुसार विक्रय क्रिया-कलापों, प्रक्रियाओं व विक्रय कर्मचारियों के कार्यो को निर्देशित करने निर्धारित प्रमापों के आधार पर उनका मूल्यांकन करने तथा उचित पर्यवेक्षण करने से है। अत: यह स्पष्ट है कि – विक्रय क्रिया नियन्त्रण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा विक्रय विभाग को वास्तविक उपलब्धियों को अपेक्षित उद्देश्यों के अनुसार ढालने की कोशिश की जाती है।

विक्रय क्रियाओं के संचालन पर नियन्त्रण बनाये रखने के लिए विक्रय के क्षेत्रों में निष्पादन मानक स्थापित किये जाते है। वास्तविक परिणामों की तुलना निर्धारित प्रमापों से की जाती है, विचलन एवं उसके

कारणो को ज्ञात किया जाता है तथा उन्हें दूर करने का प्रयास किया जाता है। विक्रय शक्ति नियन्त्रण विक्रय संचालन नियन्त्रण का महत्वपूर्ण घटक है।

विक्रय क्रिया नियन्त्रण के तत्व

विक्रय क्रिया नियंत्रण के प्रमुख तत्व निम्नलिखित है -

1. यह विक्रय के क्षेत्र में सम्मिलित सभी क्रियाओं पर लागू होता है।
2. इसमें 'विक्रय शक्ति नियन्त्रण' भी शामिल है क्योंकि विक्रय कर्मचारियों के द्वारा सम्पूर्ण विक्रय का निष्पादन किया जाता है।
3. यह विक्रय के क्षेत्र में निष्पादन मूल्यांकन, जाँच परीक्षण एवं विक्रय क्रियाओं के दोषों व विचलन को दूर करने की प्रक्रिया है।
4. इसका प्रमुख उद्देश्य न्यूनतम लागत पर विक्रय लक्ष्यों को प्राप्त कर लाभो में वृद्धि करना है।
5. विक्रय नियन्त्रण व्यापक अर्थ में क्रियाओं, कार्यो, घटनाओं, तकनीको व विक्रय कर्मचारियों सभी पर लागू होता है।
6. यह एक सतत प्रक्रिया है।
7. यह केवल ऋणात्मक प्रक्रिया नही है। इसमें भावी विक्रय क्रियाओं व कार्यक्रमों में सुधार करने का लक्ष्य भी सम्मिलित होता है।
8. यह दूसरों के कार्यों में हस्तक्षेप नही है, वरन विक्रय लक्ष्यों की प्राप्ति में उन्हें सहयोग, मार्गदर्शन एवं सहायता प्रदान करने का साधन है।
9. विक्रय क्रियाओं पर नियन्त्रण समस्त विक्रय नियोजन का आधार है।

विक्रय क्रियाओं पर नियन्त्रण की आवश्यकता एवं महत्व

विक्रय क्रियाओं एवं संचालन पर नियन्त्रण किये बिना कोई भी विक्रय संगठन अपनी योजनाओं कार्यक्रमो, लक्ष्यों व नीतियो का प्रभावी क्रियान्वयन नही कर सकता है। विक्रय क्रियाओं पर नियन्त्रण की आवश्यकता एवं महत्व निम्न है –

1. **दोष व त्रुटियों में सुधार -** विक्रय संगठन में उपयोग की जाने वाली नियन्त्रण प्रणाली से विक्रय कार्यक्रमों, विक्रय योजनाओं व विक्रय संरचना में पायी जाने वाली त्रुटि परिलक्षित हो जाते है। अत: इन दोषो और त्रुटियों को दूर करके कार्य क्षमता में वृद्धि की जा सकती है।
2. **प्रशिक्षण की आवश्यकता का निर्धारण** – विक्रय नियंत्रण द्वारा सम्पूर्ण विक्रय संगठन में विद्यमान कमजोर बिन्दुओं का पता चल जाता है। विक्रय कर्मचारियों की अकार्यकुशलता भी ज्ञात जाती है। अत: इन कमियों को दूर करने के लिए आवश्यक निर्देशन व प्रशिक्षण की आवश्यकता का निर्धारण किया जा सकता है।
3. **सुगम समन्वय** – विक्रय क्रियाओं के वास्तविक परिणामों व विक्रयकर्ताओं के निष्पादन का ज्ञान हो जाने के कारण विभिन्न क्रियाओं में समन्वय स्थापित करना सरल हो जाता है।

4. **अभिप्रेरण** – विक्रय कर्मचारियों को सहायता व मार्गदर्शन के साथ विक्रय क्रियाओं के नियन्त्रण द्वारा हस्तक्षेप और दण्ड दिया जाता है।
5. **विक्रय लक्ष्यों की प्राप्ति** – विक्रय क्रियाओं पर नियंत्रण बनाये रखने से विक्रय उद्देश्यों को प्राप्त करना आसान हो जाता है। इससे विक्रय कार्यों के संचालन को विशिष्ट लक्ष्यों की ओर निर्देशित किया जा सकता है।
6. **विक्रय नियोजन में सहायक** – विक्रय कार्य कलापो पर नियन्त्रण स्थापित किये बिना विक्रय उद्देश्यों को प्राप्त करना आसान हो जाता है। नियन्त्रण के अभाव में श्रेष्ठ योजनायें, आदर्श लक्ष्य व लाभकारी नीतियाँ भी मात्र कागजी बनी रहती है।
7. **न्यूनतम व्यय पर अधिकाधिक विक्रय** – अनावश्यक व्ययों को लागतो पर घटाने के लिए विक्रय क्रियाओं पर नियन्त्रण करना जरूरी है तथा लाभो में वृद्धि की जा सकती है।
8. **कार्यक्षमता का ज्ञान** – कर्मचारियों की योग्यता एवं निष्पादन क्षमता की जानकारी प्रबन्धक को विक्रय नियन्त्रण से होती है। इससे विक्रय कर्मचारियों को सौपें जाने वाले कार्यों व दायित्वों में आवश्यक समायोजन किया जा सकता है।

अन्य लाभ – कुछ अन्य कारण भी है जिसकी वजह से विक्रय क्रियाओं पर नियन्त्रण की आवश्यकता होती है तथा उसका महत्व बढ़ जाता है जैसे –

1. संस्था की प्रतियोगिता क्षमता में वृद्धि हो जाती है।
2. विक्रय पूर्वानुमानों, विक्रय प्रदेशों, विक्रय अंकेक्षण आदि को सुदृढ़ बनाया जा सकता है।
3. विक्रय कर्मचारियों की शिकायतो एवं ग्राहको की असन्तुष्टियों पर तुरन्त ध्यान देना सम्भव हो जाता है।
4. संचालकीय एवं विक्रय लागतो में कमी की जा सकती है।
5. विक्रय लक्ष्यों, कार्यक्रमों व प्रमापो को व्यावहारिक, प्रेरणा दायक एवं निष्पादन योग्य बनाया जा सकता है।
6. संस्था व विक्रेताओं के मध्य कुशल संचालन व्यवस्था बनाये रखा जा सकता है।

विक्रय नियन्त्रण तकनीक

एक व्यवसाय के लिए विक्रय नियन्त्रण आवश्यक है। इस नियन्त्रण को करने की कई तकनीक है। विक्रय को नियन्त्रण करने के तीन ढ़ंग है। 1. लेखा तकनीक 2. विक्रय विश्लेषण तकनीक 3. वितरण लागत विश्लेषण तकनीक।

I. **लेखा तकनीक** – इस पद्धति से विक्रय नियन्त्रण करने के लिए उन लेखा पुस्तकों का सहारा लिया जाता है जो कि व्यवसाय में विद्यमान हैं, लेकिन कभी-कभी पुस्तकों से ऐसा नही मिल पाता जो विक्रय नियन्त्रण के लिए आवश्यक होता है। इसके लिये दो तरीके काम में लाये जाते है। 1. विवरण विश्लेषण तथा 2. बजट तकनीक।

1. **विवरण विश्लेषण** – प्रत्येक संस्था दो प्रकार का विवरण तैयार करती है – एक तो आर्थिक विवरण और दूसरा लाभ-हानि विवरण। इन दोनों का विश्लेषण विक्रय कार्य की कुशलता को आंकने का आधार बनाते है। और भविष्य के लिए इसके आधार पर योजना बनाई जाती है। इन विवरणों में कुल बिक्री, शुद्ध लाभ, विक्रय-व्यय विज्ञापन व्यय, संवर्द्धन व्यय, स्टॉक आदि का उल्लेख होता है। इसका विश्लेषण कर इसके पिछले वर्षों के आकड़े से तुलना करके आगे के लिए विक्रय नियन्त्रण किया जा सकता है।

इन विवरणों का अध्ययन करके विक्रय की प्रवृत्ति व्ययों एवं उनसे लाभ को भी आंका जा सकता है। इन विवरणों से और अच्छे निष्कर्ष निकालने के लिए प्रतिशत और अनुपात का प्रयोग किया जा सकता है। इसके लिए कुल विक्रय का कितना प्रतिशत विक्रय पर व्यय हुआ यह जाना जा सकता है। यदि व्ययों में कमी होती है तो यह उन्नति का एक अच्छा चिन्ह है, लेकिन इसके विपरीत यदि व्ययों में वृद्धि होती है या व्ययो का प्रतिशत बढ़ता है तो अच्छी प्रवृत्ति नही है। इससे यह स्पष्ट होता है कि इन विवरणों का विश्लेषण विक्रय नियन्त्रण का एक प्रभावशाली ढ़ंग है।

2. **बजट तकनीक** – विक्रय कार्यों के नियन्त्रण में लेखा तकनीक के अर्न्तगत दूसरा तरीका बजट तकनीक है। विक्रय नियन्त्रण के उद्देश्य से साधारणतया विक्रय व्यय बजट, बिक्रय-मात्रा बजट, विज्ञापन बजट तथा विक्रय आय बजट बनाये जाते है। विक्रय व्यय बजट आगामी वर्ष के व्ययो का एक सम्भावित अनुमान है जबकि विक्रय मात्रा बजट – सम्भावित बिक्री का अनुमान है। कभी-कभी एक विक्रय मात्रा बजट को ग्राहको क्षेत्रो, वस्तुओं, विक्रयकर्ताओं आदि में बांट दिया जाता है। बहुत सी संस्थायें विज्ञापन बजट बनाती है जिसमें आगामी वर्ष में विज्ञापन पर होने वाले व्यय का अनुमान होता है। इस अनुमान को विभिन्न वस्तुओं, क्षेत्रो व विज्ञापन साधनों में बाट दिया जाता है। विक्रय बजट उस समय अधिक प्रभावशाली होते है जबकि विक्रय-व्यय अनुमान व विक्रय-आय अनुमान दोनो को एक साथ एक ही बजट में विक्रय आय-व्यय बजट के रूप में रखा जाता है। छोटी संस्थायें बजट तकनीक को नही अपनाती है जबकि बड़ी बड़ी संस्थायें इसको अपनाती है। जो संस्थायें बहुत बड़ी होती है वे अपने बजट बहुत विस्तृत रूप से बनाती है।

विक्रय नियन्त्रण को प्रभावशाली बनाने के लिए मात्रा बजट प्रथम चरण या सीढ़ी है। यदि संस्था कई वस्तुओं को बेचती है तो इस कुल विक्रय की मात्रा को वस्तुओं, ग्राहको व क्षेत्रों के अनुसार बांट दिया जाना चाहिए एक संस्था जितना अधिक नियन्त्रण करना चाहती है उतना ही अधिक उसको बजट का विश्लेषण करना होगा लेकिन यह विश्लेषण उस संस्था के आर्थिक साधन व लेखा सुविधा पर निर्भर करेगा। विक्रय-व्यय बजट का उद्देश्य व्यय किये गये प्रत्येक रुपये पर अधिक लाभ प्राप्त करना है।

II. विक्रय विश्लेषण तकनीक –

इसमें संस्था के विक्रय रिकार्ड का व्यवस्थित ढ़ंग से एवं गहराई से अध्ययन किया जाता है कि ऐसी सूचनायें इनसे प्राप्त की जायं जिन्हें नियोजन, निर्देशन एवं विक्रय कार्य सम्पादन के संबंध में काम में लाया जा सके। विक्रय विश्लेषण तकनीक से विक्रय क्रियाओं पर नियन्त्रण नही किया जा सकता है। विक्रय विश्लेषण तकनीक उन विभिन्न कारणों के प्रभाव को मापने के लिए किया जाता है जिनका विक्रय की मात्रा लागत व

लाभ पर प्रभाव पड़ता है, वास्तव में विक्रय विश्लेषण तकनीक का प्रमुख कार्य प्रबन्धको को विक्रय प्रयत्नों व व्ययो के संबंध में निर्देशन देने में सहायता करना है।

विक्रय विश्लेषण तकनीक के अनुसार, नियन्त्रण करने के लिए सूचनाएं संस्था के बीजक, ग्राहक आर्डर फार्म विक्रय नियन्त्रण रिकार्ड, विक्रयकर्ता रिपोर्ट, आदि से प्राप्त की जाती है। जिससे विक्रयकर्ता, डीलर, वितरक, शाखा प्रबन्धक आदि से बातचीत करने व उनमें सुधार करने का आधार मिल जाता है। जिससे उनके प्रशिक्षण व पुन: प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की जा सकती है। विक्रय विश्लेषण तकनीक के अर्न्तगत अन्य तरीके जैसे, क्षेत्रीय विश्लेषण, वस्तु पंक्ति विश्लेषण ग्राहक विश्लेषण व विक्रयकर्ता कार्य-विश्लेषण आते है।

III. वितरण लागत विश्लेषण तकनीक

इसमें वस्तुओं को बेचने पर हुए व्ययो का विश्लेषण किया जाता है। यह व्यय तीन प्रकार के होते है -

1. बिक्री प्राप्त करने के व्यय
2. आदेश पूरा करने के व्यय
3. विक्रय को बनाये रखने के व्यय

विक्रय प्राप्त करने के व्ययो में विज्ञापन, विक्रय संवर्द्धन, वैयक्तिक विक्रय व्यय, आदेश पूरा करने में पैकिंग व्यय, गाड़ी भाड़ा, रेल भाड़ा, माल की डिलेवरी के व्यय व माल के विक्रय को बनाये रखने के लिए व्यय आते है। यह सभी व्यय विपणन व्यय कहलाते है लेकिन कुछ विद्वान इसको वितरण व्यय कहते है। सभी वितरण व्ययो का जोड़ लगाकर उनका विश्लेषण किया जाता है, पिछले वर्षो के व्ययो से तुलना की जाती है व निष्कर्ष निकालकर सुधार हेतु प्रयत्न किये जाते है जिससे कि व्यय कम से कम हो। इन व्ययो में विज्ञापन व्यय, विक्रय संवर्द्धन व्यय, पैकिंग व सुपदंगी व्यय आदि आते है।

वास्तव में वितरण लागत विश्लेषण तकनीक विक्रय कार्य सम्पादन के नियन्त्रण हेतु काम में लायी जाती है। ऐसा करने से वितरण लागत घटती है व विक्रय क्रियाओं की कुशलता बढ़ती है। इन व्ययों का विश्लेषण तुलना का अवसर देता है जिससे प्रमाप निर्धारित किये जा सकते है और जिसके आधार पर आगे के लिए विक्रय बजट बनाये जा सकते है।

वितरण लागत का विश्लेषण उन क्षेत्रो की जानकारी देता है जो अधिक लाभकारी नही है। यह डूबत ऋण व बसूली के व्ययो आदि में कटौती करने का अवसर भी देता है।

4.10. विक्रय विश्लेषण का अर्थ एवं उद्देश्य

विपणन प्रबंध में वस्तु के विक्रय के पश्चात भी कुछ क्रियाएँ करना आवश्यक है जिससे विक्रय योजना में आवश्यकतानुसार सुधार किया जा सके तथा अनुमानो के आधार पर विक्रय किया जा सके। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिये विक्रय विश्लेषण किया जाता है। स्टाण्टन के अनुसार, ''एक फर्म के आन्तरिक रिकार्ड का सावधानी पूर्वक अध्ययन विक्रय विश्लेषण कहलाता है।''

जाँनसन के अनुसार – ''विक्रय विश्लेषण शब्द का आशय विक्रय लागत और लाभ संबंधी आकड़ों का विश्लेषण करने से है जिनको फर्म के अपने आन्तरिक विक्रय रिकार्ड से प्राप्त किया जाता है।''

इस प्रकार "विक्रय विश्लेषण विक्रय संबंधी आकड़ों का एक सावधानीपूर्वक अध्ययन है।" यह आकड़े स्वयं संस्था द्वारा एकत्रित किये जाते है जो उस संस्था से सम्बन्धित होते है। जैसे संस्था की कुल बिक्री की मात्रा विभिन्न क्षेत्रो में बिक्री, विभिन्न विक्रयकर्ताओं की कुल बिक्री, विभिन्न वस्तुओं की कुल बिक्री, आदि।

उद्देश्य

(i) "विक्रय विश्लेषण का उद्देश्य संस्था की विपणन शक्ति व कमजोरियों का पता लगाना है।"

(ii) "विक्रय विश्लेषण का उद्देश्य तथ्यपूर्ण सूचनाओं को एकत्रित करना है जिससे कि उनको विक्रय कार्य के नियोजन निर्देशन एवं नियन्त्रण में आधार मानकर प्रयोग में लाया जा सके।"

विक्रय विश्लेषण का उपयोग – विक्रय विश्लेषण का उपयोग विक्रय प्रयत्नो पर नियंत्रण करने के लिए किया जाता है। विक्रय विश्लेषण से इस बात का पता लग जाता है कि विक्रयकर्ता, डीलर, शाखा प्रबन्धक आदि से किस आधार पर बात की जाय, उनको प्रशिक्षण या पुन: प्रशिक्षण किस दृष्टि को ध्यान में रख कर दिया जाय ?

विक्रय विश्लेषण से प्रबन्ध को यह पता लग जाता है कि उसकी वस्तुयें किस स्थान व किस मात्रा में बिक रही है, बिक्री किस स्थानों पर कम और किन स्थानों पर अधिक है ? इन सब का पता लगने पर इस सम्बन्ध में उचित कदम उठाये जा सकते है, लाभो को बढ़ाया जा सकता है। विक्रय विश्लेषण मध्यस्थों को भी यह बता देता है कि उनका विक्रय की दृष्टि से कौन-सा स्थान है ?

विक्रय विश्लेषण से विभिन्न वस्तुओं, क्षेत्रों व ग्राहको की लाभप्रदता का पता लगाया जा सकता है और उस ओर आवश्यक कदम उठाकर समुचित प्रयत्न किये जा सकते है। जब संस्था के विक्रयकर्ता को इस बात की जानकारी होती है कि यहाँ पर विक्रय विश्लेषण होता है तो वे अपने कार्य को उचित ढ़ंग से करने का प्रयत्न करते है।

विक्रय रिकार्ड – विक्रय विश्लेषण के लिए विक्रय संबन्धी रिकार्ड की आवश्यकता होती है जिसको संस्था के द्वारा एक व्यवस्थित ढ़ंग से एकत्रित किया जाता है। कुछ संस्थायें इस कार्य के लिए अपने यहाँ अलग से सांख्यिकी विभाग की स्थापना कर लेती है जबकि कुछ इसका उत्तरदायित्व विक्रय भाग को सौंप देती है। यह दोनों ही विभाग समय-समय पर विक्रय संबन्धी रिपोर्ट अपने प्रबन्ध को देते रहते है जिसमें सम्बन्धित समय की पिछले वर्ष की बिक्री भी दी रहती है जिससे दोनो की तुलना की जा सकती है।

कुछ विक्रय रिकार्ड दैनिक विक्रय रिपोर्ट से भी तैयार किया जाता है। यह दैनिक रिपोर्ट जितनी अधिक विस्तृत होगी उतनी अधिक सूचनायें इसमें होगी।

विक्रय मात्रा के विश्लेषण के आधार

विक्रय रिकार्ड जो संस्था के पास उपलब्ध है उसका विश्लेषण किस आधार पर किया जाय कि उससे लाभदायक निष्कर्ष सके। संस्था जिस प्रकार का उत्तर चाहती है उसी के अनुसार आधार निश्चित कर विश्लेषण तैयार किया जाता है, लेकिन साधारणतया निम्न आधारो पर विश्लेषण किया जाता है -

1. **कुल विक्रय विश्लेषण** – यदि कोई नियोक्ता अपनी बिक्री की प्रवृत्ति का पता लगाना चाहता है तो वह वर्ष विशेष को कुल बिक्री से तुलना करके अपनी विक्रय प्रवृत्ति का पता लगा सकता है। यदि

संस्था की बिक्री गिर रही है तो प्रबन्धको को उद्योग की प्रवृत्ति का पता लगाना चाहिए। उद्योग की प्रवृत्ति की तीन स्थितियाँ हो सकती है – एक तो कुल बिक्री घट रही है, दूसरे कुल बिक्री बढ़ रही है तीसरा बिक्री में कोई परिवर्तन नही है। इन तीनों ही स्थितियों में प्रबन्ध के समक्ष भिन्न-भिन्न समस्यायें हैं। जैसे यदि उद्योग को कुल बिक्री घट रही तो यह पता लगाना है क अल्पकालिक है या दीर्घकालीन इसी प्रकार यदि उद्योग की बिक्री बढ़ रही है, लेकिन संस्था की घट रही है तो समस्या यह है कि पता लगाया जाय कि ऐसा क्यों हो रहा है।

2. **क्षेत्रीय विश्लेषण** – बिक्री को विश्लेषित करने का एक ढ़ंग क्षेत्रीय विश्लेषण भी है। इसमें पहले यह पता लगाया जाता है कि विभिन्न क्षेत्रों में सम्बन्धित समय में कितनी बिक्री हुई है फिर उस बिक्री को अपने पूर्व-निर्धारित लक्ष्य से मिलाया जाता है। विक्रय का क्षेत्रीय आधार पर विश्लेषण इस बात को बताता है कि उस क्षेत्र की वास्तविक बिक्री अधिक हुई है व किस क्षेत्र में कम। जिन क्षेत्रों में बिक्री कम हुई है उसका पता लगाया जा सकता है व सुधार करके बिक्री को बढ़ाया जा सकता है।
3. **वस्तु पंक्ति विश्लेषण** – जब एक संस्था कई वस्तुओं का निर्माण व विक्रय कार्य करती है तो वह अपनी कुल बिक्री का विश्लेषण वस्तु पंक्ति के आधार पर करती है जिससे यह पता लग सके कि किस वस्तु की कितनी बिक्री है और वह वस्तु संस्था के लाभो में कितना योग दे रही है। उदाहरण के लिए, विक्रय विश्लेषण यह बता सकता है कि संस्था की 20 प्रतिशत वस्तुओं की बिक्री संस्था की कुल बिक्री के 60 प्रतिशत के बराबर है। विक्रय विश्लेषण यह भी बात सकता है कि संस्था की कुल बिक्री में योग देने वाली वस्तुयें संस्था के लाभो में अधिक योग नही देती है। इस प्रकार विक्रय विश्लेषण यह बताता है कि संस्था को उन वस्तुओं के विक्रय संवर्द्धन एवं विज्ञापन आदि पर व्यय करना चाहिए जो लाभो में अधिक योग देती है। इस प्रकार संस्था को उन वस्तुओं के बारे में सोचना चाहिए जो बिकती तो है लेकिन उनका लाभो में योग नाममात्र का है। इनको मृत वस्तुयें कहते है। ऐसी वस्तुओं को वस्तु–पंक्ति से हटाने से पूर्व इनकी इस स्थिति में आने के कारणो की खोजबीन करनी चाहिए।

   वस्तु–पक्ति के आधार पर विक्रय विश्लेषण करने का यह तरीका क्षेत्र आधार पर भी हो सकता है जिसमें एक क्षेत्र की कुल बिक्री को उस संस्था की वस्तु-पंक्ति के आधार पर विश्लेषित किया जाता है। इससे प्रबन्धक को यह पता लग जाता है क किस क्षेत्र में कौन सी वस्तु मजबूत व कौनसी कमजोर है।
4. **ग्राहक विश्लेषण** – वस्तु को क्रय करने वाले ग्राहक कई प्रकार के होते है जैसे, थोक विक्रेता, फुटकर विक्रेता, श्रृंखला-बद्ध दुकाने, सुपर बाजार, सरकारी विभाग, औद्योगिक क्रेता, विभागीय भण्डार आदि। बिक्री का विश्लेषण इस आधार पर की किया जा सकता है। इसका कारण यह है कि इसमें लाभ की दृष्टि से सभी क्रेता महत्वपूर्ण नही है। अत: इस बात की आवश्यकता है कि लाभकारी व अलाभकारी ग्राहको को वर्गीकृत करके उनका पता लगाया जाय जिससे संस्था अधिक लाभकारी ग्राहको की ओर ध्यान दे सके।

   ग्राहको का विश्लेषण यह बताता है कि किसी क्षेत्र विशेष में वस्तु की बिक्री कम क्यों है ? साथ ही ग्राहको की व्यक्तिगत बिक्री की तुलना करके उनकी प्रवृत्ति का पता लगा सकते है कि वे पहले से

ज्यादा क्रय कर रहे हैं या कम। यदि उनके द्वारा कम क्रय किया जा रहा है तो इस ओर व्यक्तिगत ध्यान देकर बिक्री को बढ़ाने का प्रयत्न किया जा सकता है। ग्राहकों के विश्लेषण के आधार पर संस्था अपना भावी नियोजन कर सकती है।

5. **विक्रयकर्ता कार्य विश्लेषण** – विक्रयकर्ताओं के कार्यों में उन्नति के लिए विक्रय का विश्लेषण किया जा सकता है। इसके लिए पहले प्रमाप निर्धारित करना होगा फिर उस प्रमाप की तुलना विक्रयकर्ता की वास्तविक उपलब्धि से करनी होगी। प्रमाप के लिए साधारण तया कोटे का उपयोग किया जाता है। जिसको विक्रयकर्ता को एक निश्चित समय से पूरा करना आवश्यक होता है। कोटा निर्धारित करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कोटा व्यवहारिक हो अन्यथा विक्रय विश्लेषण से अधिक अच्छे परिणामों का पता नही चलेगा। विक्रयकर्ता कार्य विश्लेषण इस बात के लिए विक्रयकर्ता को विवश कर देता है कि वह उचित मात्रा में व्यवसाय अवश्य करें अन्यथा उसकी सेवायें समाप्त हो जायेंगी। यह विश्लेषण अच्छे विक्रयकर्ताओं को उचित पारिश्रमिक दिलाने में भी सहायक होते है।

4.11. सारांश

विक्रय कोटा विक्रय लक्ष्यों की प्राप्ति का एक प्रभावी उपाय है। विक्रय कोटा का निर्धारण विपणन योजना एवं विक्रय नियंत्रण प्रणाली का एक महत्वपूर्ण अंग है। यह विक्रय क्रियाओं को निर्देशित करने का एक महत्वपूर्ण अंग है। यह विक्रय क्रियाओं को निर्देशित करने का एक महत्वपूर्ण उपकरण है। प्रत्येक व्यावसायिक संस्था अपने विक्रेताओं, वितरकों अथवा शाखाओं को विक्रय कोटा सौंपने की नीति अपनाती है। इसी आधार पर विक्रय कर्मचारियों के कार्यों का मूल्यांकन किया जाता है जो उनके पारिश्रमिक, पदोन्नति, आधिकार एवं सुविधाओं का आधार निर्मित करता है।

एक बिक्री बजट भविष्य की लेखांकन अवधि के लिए बिक्री का अनुमान है। बिक्री बजट अक्सर पहले, दूसरे, तीसरे और चौथे वित्तीय तिमाही के अनुमानों में विभाजित होते हैं। बिक्री बजट के महत्वपूर्ण घटकों का अनुमान इकाई की बिक्री, प्रति यूनिट मूल्य और छूट और रिटर्न के लिए भत्ता के आधार पर लगाते है। प्रति यूनिट मूल्य से गुणा अनुमानित इकाई बिक्री बजट की सकल बिक्री के बराबर होती है। बजट की सकल बिक्री कम अनुमानित बिक्री छूट और रिटर्न अवधि के लिए बजट की शुद्ध बिक्री है।

विक्रय प्रदेशों का प्रबंध विक्रय नियोजन एवं नियंत्रण का मूल आधार है। विक्रय क्षेत्रों का उचित आवंटन एवं निर्धारण करके विक्रय अवसरों में वृद्धि की जा सकता है तथा विभिन्न ग्राहकों को सेवा प्रदान करने तथा संभावित ग्राहकों की खोज करने के संबंध में संस्था की तुलनात्मक शक्तियों एवं कमियों का पता लगाया जा सकता है। विक्रय प्रयत्नों को विक्रय अवसरों से समायोजित करने, विपणन व्यूहरचनाओं को प्रभावी बनाने, विक्रय नियोजन को यथार्थपूर्ण बनाने तथा विक्रयकर्ताओं के कार्य-निष्पादन का उचित मूल्यांकन करने में विक्रय क्षेत्र प्रबंधन का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

4.12. अभ्यासार्थ प्रश्न

1. बिक्री बजट से आप क्या समझते है? इसके मूल तत्वों तथा आवश्यक शर्तों का वर्णन कीजिए।
2. बिक्री बजट से क्या आशय है? बिक्री बजट को तैयार करने के तरीकों का वर्णन कीजिए।
3. विक्रय कोटा से क्या समझते है? कोटा निर्धारित करना क्यों आवश्यक होता है?
4. विक्रय कोटा निर्धारित करने के सिद्धान्तों एवं कोटा के विभिन्न प्रकार की व्याख्या कीजिए।
5. विक्रय प्रदेश का क्या अर्थ है? विक्रय प्रदेश की स्थापना के उद्देश्य एवं महत्व की व्याख्या कीजिए।
6. विक्रय प्रदेश की स्थापना की प्रक्रिया एवं उसके सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।
7. विक्रय क्रियाओं पर नियंत्रण से क्या आशय है? उसके प्रमुख तत्वों एवं महत्व को समझाइए।
8. विक्रय नियंत्रण तकनीकों की व्याख्या कीजिए।
9. विक्रय विश्लेषण से आप क्या समझते है? विक्रय विश्लेषण के विभिन्न आधार क्या है?

4.13. संदर्भ ग्रंथ सूची

16. जैन. एस. सी., विपणन प्रबंधन, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2012
17. मालवीय अंजनी, विपणन प्रबंधन, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2012
18. Kotler Philip, Gary Armstrong, Principles Of Marketing, Prentice Hall Of India Pvt. Ltd, New Delhi, 2010
19. Bose S. Biplab, Marketing, Himalaya Publishing House, New Delhi, 2010.
20. सुधा जी. एस., विक्रय संवर्द्धन एवं विक्रय प्रबंध, रमेश बुक डिपो, जयपुर।

इकाई – 5 अंतरराष्ट्रीय बिक्री प्रबंधन

इकाई की रूपरेखा

5.1. उद्देश्य

5.2 प्रस्तावना

5.3. अंतरराष्ट्रीय विपणन की प्रमुख क्रियाएँ

5.4. अंतरराष्ट्रीय विपणन की प्रकृति

5.5. अंतरराष्ट्रीय बिक्री प्रबंधन

5.6. अंतरराष्ट्रीय व्यापार एवं अंतरराष्ट्रीय विपणन

5.7. अंतरराष्ट्रीय विपणन तथा घरेलू विपणन

5.8. अंतरराष्ट्रीय तथा घरेलू विपणन में अंतर

5.9. अंतरराष्ट्रीय विपणन : आवश्यकता एवं महत्व

5.10. महत्व

5.11. अंतरराष्ट्रीय विपणन में चुनौतियाँ एवं समस्याएँ

5.12. सारांश

5.13. अभ्यासार्थ प्रश्न

5.14. संदर्भ ग्रंथ

5.1. उद्देश्य

1. अंतरराष्ट्रीय विपणन के अर्थ तथा उनकी प्रमुख क्रियाओं को समझ सकेंगे।
2. अंतरराष्ट्रीय विपणन की प्रकृति एवं क्षेत्र के बारे में जान सकेंगे।
3. अंतरराष्ट्रीय विपणन एवं घरेलू विपणन में अन्तर स्पष्ट कर सकेंगे।
4. अंतरराष्ट्रीय विपणन की आवश्यकता एवं महत्व को समझ सकेंगे।
5. अंतरराष्ट्रीय विपणन से जुड़ी समस्याओं के बारे में जान सकेंगे।

5.2 प्रस्तावना

जब विपणन का कार्य एक देश के भीतर ही किया जाता है तो इसे राष्ट्रीय विपणन कहते है, लेकिन जब विपणन कार्य देश के भीतर के अतिरिक्त अन्य देश या देशों में किया जाता है तो इसे अंतरराष्ट्रीय विपणन कहते है। दूसरे शब्दों में, जब विपणन क्रियाएँ राष्ट्रीय दीवारों को लाँघ कर अन्य देशों में भी जाने लगती है तो इसे अंतरराष्ट्रीय विपणन कहते है। उदाहरण के लिये, भारत में चाय का उत्पादन होता है, लेकिन जब चाय की बिक्री देश में ही की जाती है तो यह चाय का देशी विपणन कहलाता है, परंतु जब चाय देश से बाहर अन्य देशों को भेजी जाती है तो इसे चाय का अंतरराष्ट्रीय विपणन कहते है।

वे संस्थाएँ जो अंतरराष्ट्रीय व्यापार में लगी है उनके लिये यह आवश्यक है कि वे विदेशी ग्राहकों की आवश्यकताओं का ठीक से पता लगाये और फिर उनकी आवश्यकता के अनुसार वस्तु बनाकर वहाँ भेजे जिसके लिये उन्हें एकीकृत विपणन को अपनाने की आवश्यकता होगी। एक अंतरराष्ट्रीय विपणनकर्ता को उस देश के कानूनी, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक आयाम तो कानूनी, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक आयाम को भी ध्यान में रखना पड़ता है।

अंतरराष्ट्रीय विपणन की परिभाषा – अंतरराष्ट्रीय विपणन विश्व में विभिन्न देशों के मध्य व्यापार प्रवृत्ति-आयात एवं निर्यात प्रवृत्तियाँ से सम्बन्धित है। इसमें विभिन्न देशो की व्यापार नीतियों एवं व्यापार व्यवहारों पर विचार भी सम्मिलित है क्योंकि ये अंतरराष्ट्रीय बाजार में क्रेता-विक्रेता सम्बन्धों को निर्धारित एवं नियंत्रित करती है। टेपस्ट्रा वर्न ने अंतरराष्ट्रीय विपणन को 'राष्ट्रीय सीमाओं के बाहर किये जाने वाले विपणन' की संज्ञा दी है। इसके अनुसार "अंतरराष्ट्रीय विपणन एक व्यापक शब्द है जिसमें राष्ट्रीय सीमाओं के पार विपणन से सम्बन्धित समस्याओं को कवर करने के साथ विभिन्न राष्ट्रीय बाजारों में उत्पन्न विपणन समस्याओं को सम्मिलित किया जाता है। इसमें उस घरेलू फर्म के स्थिति पर विचार किया जाता है जो निर्यात कर रही है। साथ ही उन कर्मो की आवश्यकताओं पर भी विस्तार से विश्लेषण किया जाता है जो असेम्बल, लाइसेंस या विदेशी बाजारों में उत्पादन करती है। इस प्रकार अंतरराष्ट्रीय विपणन में निर्यातक से लेकर बहुराष्ट्रीय कर्मो की विपणन समस्याओं को सम्मिलित किया जाता है।"

बैकमैन तथा डेविडसन के अनुसार, "अंतरराष्ट्रीय विपणन से आशय उन समस्त क्रियाओं के विपणन से है जो एक से अधिक राष्ट्रो मे उनके बाजारो की इच्छाओं तथा आवश्यकताओं का निर्धारण करने उत्पाद उपलब्धता की योजना बनाने, उत्पादों का प्रभावी स्वामित्व हस्तान्तरण करने, उनका भौतिक विपणन करने तथा अन्य आवश्यक विपणन क्रियाओं को सुविधा जनक बनाने से संबंध रखती है।"

5.3. अंतरराष्ट्रीय विपणन की प्रमुख क्रियाएं

अंतरराष्ट्रीय विपणन में मुख्यतया निम्न क्रियाएं की जाती है :

1. **बाजार एवं वस्तु का चुनाव** – अंतरराष्ट्रीय व्यापार में सबसे पहले बाजार को चुनने का कार्य किया जाता है। यह कार्य बहुत ही महत्वपूर्ण है। सारी व्यापारिक क्रियाएं इसी पर ही निर्भर हैं क्योंकि इसके उचित चुनाव से जाखिम में कमी हो जाती है। इसी प्रकार वस्तु का चुनाव भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। वस्तु के साथ ब्राण्ड नाम, पैकिजिंग व लेबिल भी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। यह सभी विदेशी बाजार के अनुरूप होने चाहिए। विदेशी बाजार विभिन्न प्रकार के होते हैं अत: वस्तु, जो वहां बेची जानी है, भी उस देश की आवश्यकता के अनुरूप होनी चाहिए।
2. **बाजार प्रदेश** – विदेशों के बाजारों में प्रवेश करना आसान नहीं है। अत: इसके लिए कई तरीके हैं जिनमें से एक है संयुक्त साहस। वर्तमान में यह पद्धति बहुत अधिक प्रचलित है। इसमें निर्यातकर्ता या आयातकर्ता एक संघ बना लेते हैं। कभी-कभी विदेशियों के सहयोग से उन देशों में सहयोग स्थापित कर लिए जाते हैं।
3. **वितरण माध्यम** – एक अंतरराष्ट्रीय विपणनकर्ता को वितरण माध्यम का पूरा ज्ञान होना चाहिए। यह ज्ञान दो प्रकार का होता है – एक तो देश के भीतर का वितरण माध्यम व दूसरे एक देश से दूसरे देश के लिए नया वितरण माध्यम है। इस कार्य में अनेकों मध्यस्थ आते हैं। जितने वितरण मध्यस्थ कम होते हैं लागत उतनी ही कम होती है।
4. **मूल्य** – मूल्य, वस्तु के बेचने में एक महत्वपूर्ण घटक है। वैसे तो देशी व अंतरराष्ट्रीय विपणन में मूल्य संबंधी सिद्धांत एक ही है, लेकिन फिर भी प्रत्येक देश की व प्रत्येक जिले की परिस्थितियों को ध्यान में रखकर ही मूल्य निर्धारित किया जाना चाहिए। मूल्य निर्धारण अलकालिक व दीर्घकालिक हो सकता है। जब व्यापार अल्पकालिक होता है तो लागत + का सिद्धांत अपनाया जाता है, लेकिन इसके विपरीत जब व्यापार दीर्घकालिक होता है तो बाजार अभिमुखी मूल्य नीति अपनाई जानी चाहिए।
5. **विपणन संचार** – विपणन संचार अंतरराष्ट्रीय व्यापार में एक महत्वपूर्ण घटक है। इसके लिए विज्ञापन, व्यापार संवर्द्धन व वैयक्तिक विक्रय का सहारा लिया जाता हे, लेकिन यह सब इस प्रकार होना चाहिए कि वह उस विदेशी बाजार व विदेशी श्रोतागण के अनुरूप हो। इसके लिए भाषा व चिन्ह भी उसी अनुरूप होने चाहिए।
6. **प्रक्रिया जटिलता** – विदेशी व्यापार में अनेक जटिलताएँ हैं। कहीं आयात-निर्यात लाईसेन्स की तो कहीं कस्टम व विदेशी विनिमय की। कहीं प्रलेखों की तो कहीं बीमा आदि की। एक विपणनकर्ता को इन प्रक्रिया जटिलताओं का पूरा-पूरा ज्ञान होना चाहिए। जिससे कि अंतरराष्ट्रीय विपणन में आसानी रहे।

7. **विपणन अनुसन्धान** – विपणन नियोजन का आधार विपणन अनुसंधान होता है। बिना उचित विपणन अनुसंधान के अंतरराष्ट्रीय व्यापार में कभी भी सफलता नहीं मिल सकती है। अत : आवश्यक है कि विदेशी व्यापार सम्बन्धी सभी आवश्यक सूचनाएं नियमित रूप से एकत्रित की जाएं तथा उन्हें समय-समय पर Up-to-Date किया जाए। इसके लिए छपे हुए साहित्य से सहायता ली जा सकती है या फिर स्वयं बाजार सर्वेक्षण किया जा सकता है।
8. **अंतरराष्ट्रीय विपणन के लिए संगठन** – सामान्यतया प्रारंभिक अवस्था में तो संस्था अपना माल स्वयं ही विदेशों को भेजती है, लेकिन जब व्यापार बढ़ जाता है तो अलग से एक विभाग – निर्यात विभाग के नाम से बना दिया जाता है जिसमें उस विभाग का प्रबंधक व उसके कुछ सहायक होते हैं, परंतु जब व्यापार में और वृद्धि हो जाती है और नए-नए देशों से व्यापार होने लगता है तो संस्था निर्यात विभाग के स्थान पर अंतरराष्ट्रीय डिवीजन बना देती है, लेकिन जब संस्था और आगे बढ़ जाती है तो वह बहुराष्ट्रीय निगम का रूप ले लेती है।

5.4. अंतरराष्ट्रीय विपणन की प्रकृति

अंतरराष्ट्रीय विपणन की प्रकृति कुछ सीमा तक स्वदेशी विपणन से मिलती है तो कुछ सन्दर्भो में यह मौलिकता एवं भिन्नता लिए हुए है। इसकी प्रकृति के प्रमुख बिन्दु निम्नलिखित है।

1. **बहुराष्ट्रीय विपणन प्रबंध** – अंतरराष्ट्रीय विपणन बहुराष्ट्रीय विपणन प्रबन्ध प्रयासो का योग है। इसमें एक फर्म के विभिन्न राष्ट्रीय विपणन कार्यक्रमों को प्रभावी बहुराष्ट्रीय कार्यक्रम में एकीकृत एवं समन्वित किया जाता है जो एक चुनौतीपूर्ण कार्य है।
2. **नियंत्रणीय एवं अनियंत्रणीय घटक** – स्वदेशी विपणन में आन्तरिक घटको का प्रबन्ध करते हुए फर्म के वातावरण में विद्यमान अनियंत्रणीय घटको का प्रत्युत्तर देने का प्रयास किया जाता है। अंतरराष्ट्रीय विपणन में भी लगभग ऐसा ही होता है; लेकिन इसमें नियंत्रणयोग्य तथा अनियंत्रणयोग्य घटक अंतरराष्ट्रीय दृष्टि से पृथक एवं विशिष्ट होते है जो अंतरराष्ट्रीय विपणन में व्यापक जटिलताएँ उत्पन्न करते हैं।
3. **विशिष्ट चातुर्य** – स्वदेशी विपणन के विपरीत अंतरराष्ट्रीय विपणन हेतु प्रबन्धक में विशिष्ट चातुर्य वांछित है। इसमें प्रबन्धक को राष्ट्र विशेष की आवश्यकताओं एवं परिस्थितियों के मद्देनजर विपणन क्रियाओं के निष्पादन हेतु व्यापक चातुर्य की आवश्यकता होती है।
4. **अवधारणा** – अंतरराष्ट्रीय विपणन की अवधारणा में निम्न तीन बिन्दु सम्मिलित है :

   (अ.) **अंतरराष्ट्रीय विपणन** – राष्ट्रीय सीमाओं से पार विपणन।

   (ब.) **विदेशी विपणन** – विदेशी राष्ट्रो में विपणन।

   (स.) **बहुराष्ट्रीय विपणन** – विविध बाजारों में विपणन में।

5. **संरक्षणवादी प्रकृति** – अंतरराष्ट्रीय विपणन की प्रकृति काफी सीमा तक संरक्षण वादी होती है। प्रत्येक देश अपने निर्यात को बढ़ाना चाहता है तथा आयातों को कम करना चाहता है। अत: इसी लक्ष्य को देखकर विपणन प्रयासों का नियोजन एवं क्रियान्वयन किया जाता है।
6. **सघन प्रतियोगिता** – इसके अन्तर्गत त्रि-स्तरीय प्रतियोगिता का सामना करना होता है। प्रथम, अपने देश के निर्यातको से; द्वितीय, अन्य देश के निर्यातको से एवं तृतीय, आयातक देश के उत्पादको से। यह स्थिति अंतरराष्ट्रीय विपणन में प्रतियोगिता को सधन कर देती है।
7. **साख अभिमुखी** – अंतरराष्ट्रीय विपणन साख-अभिमुखी होता है इसमें विकसित देशों का बड़ा भाग है। विकासशील देश मुख्यत: क्रय शक्ति नही रखते है अत: यह देश उन्हीं देशों से माल क्रय को वरीयता देते है जो भुगतान की अवधि को लम्बा रखते है एवं व्याज दर न्यूनतम रखते है।
8. **व्यापक जोखिम** – अंतरराष्ट्रीय विपणन कई प्रकार के जोखिमो से घिरा होता है। इसके अन्तर्गत अनुबंध करने एवं उसके निष्पादन में काफी समय लगता है। इसी दौरान आयातक या निर्यातक देश में राजनैतिक परिवर्तन आर्थिक परिवर्तन या वैधानिक परिवर्तन अंतरराष्ट्रीय विपणन को व्यापक रूप से प्रभावित करता है।
9. **प्रभुतापूर्ण प्रकृति** – अंतरराष्ट्रीय विपणन प्रभुतापूर्व प्रकृति का होता है। विश्व का कुल व्यापार के लगभग 75 प्रतिशत भाग पर विकसित देशो का प्रभुत्व है। विकसित देश अपनी तकनीकी एवं गुणवत्ता संबंधी श्रेष्ठता के कारण बेहतर उत्पाद एवं सेवायें प्रदान करने में समर्थ होते है। ये राष्ट्र शोध एवं विकास विज्ञापन, प्रचार आदि पर व्यापक धनराशि खर्च करके अपना प्रभुत्व बनाये रखने का प्रयास करते है।
10. **राजनीतिक प्रवृत्ति** – अंतरराष्ट्रीय विपणन में राष्ट्रो के मध्य राजनीतिक संबंधों की भी अहम भूमिका होती है। प्राय: विकसित देश उन विकासशील देशों को अपने यहाँ निर्यात हेतु प्रोत्साहन देते है जो उनके राजनैतिक एवं सामाजिक हितो की पूर्ति के लिए उपकरण बनने हेतु तैयार होते है।
11. **एकीकरण प्रकृति** – अंतरराष्ट्रीय विपणन ग्लोबल एकीकरण को प्रोत्साहित करता है। उदाहरण के लिए बोइंग कारपोरेशन अमेरिका है, किन्तु उसके द्वारा बनाया जाने वाले हवाई जहाजो के विभिन्न भागों का निर्माण विश्व के 29 देशों में किया जाता है। इससे इसकी एकीकरण प्रकृति सिद्ध होती है।

5.5. अंतरराष्ट्रीय बिक्री प्रबंधन

अंतरराष्ट्रीय विपणन में संलग्न् विपणन कम्पनियाँ मुख्यत: तीन प्रकार का व्यवसाय करती हे – आयात व्यापार, पुन:निर्यात व्यापार एवं निर्यात व्यापार। इस प्रकार अंतरराष्ट्रीय विपणन के क्षेत्र को निम्नलिखित भागो में विभाजित किया जा सकता है।

1. **आयात व्यापार** – आयात व्यापार में संलग्न अंतरराष्ट्रीय विपणन कम्पनियाँ दूसरे देशों से माल अथवा वस्तुओं का आयात करके उन्हें अपने देश में विक्रय करती है। ऐसा देश में उस वस्तु या माल की पर्याप्त उपलब्धता नही होने अथवा दूसरे देशों में उसकी तुलनात्मक लागत कम होने पर किया जाता है।
2. **पुन: निर्यात व्यापार** – पुन: निर्यात व्यापार में विपणन कम्पनियाँ दूसरे देशों से कच्चे माल अथवा अर्द्धनिर्मित माल का आयात करके, उसे निर्मित माल में परिवर्तित करती है। इसके पश्चात् निर्मित माल अथवा वस्तुओं का अन्य देशों को निर्यात करती है। उदाहरण जापान खनिज संसाधनों की दृष्टि से सम्पन्न नही है। जापान अनेक खनिज संसाधनों का आयात करता है। विपणन फर्में पहले आयात करती है एवं निर्मित माल तथा वस्तुओं को विश्व के अनेक देशो को निर्यात करती है।
3. **निर्यात व्यापार** – निर्यात व्यापार के अन्तर्गत विपणन कम्पनियाँ दूसरे देशों में माल, वस्तुओं अथवा सेवाओं का विक्रय करती है। अंतरराष्ट्रीय व्यापार में निर्यात का महत्वपूर्ण स्थान है। मोटे तौर पर अंतरराष्ट्रीय विपणन कम्पनी विदेशों में निम्नलिखित विधियों से परिचालनो का संचालन कर सकती है।

   (क.) **विदेश में शाखा की स्थापना** – इसके अन्तर्गत एक निर्यातक विदेश में अपनी शाखा खोल सकता है। यह शाखा निर्यात बाजार की आवश्यकताओं के अनुरूप उत्पादों का संयोजन एवं पैकिंग कर सकती है। कभी-कभी पूरा उत्पाद ही विदेश में स्थापित शाखा बना सकती है। विदेश में शाखा की स्थापना पर निर्यात बाजार की आवश्यकता के अनुरूप योग्य व चतुर विक्रयकर्ताओं की आवश्यकता होगी।

   (ख.) **संयुक्त साहस व सहयोग** – अंतरराष्ट्रीय विपणन के क्षेत्र में संयुक्त साहस एवं सहयोग का प्रभावी उपयोग हो सकता है। इसके अन्तर्गत निर्यातक कम्पनी किसी अन्य कम्पनी के साथ मिलकर कार्य करती है। ऐसी व्यवस्था को अपनाकर कम्पनी घरेलू विपणन एवं अंतरराष्ट्रीय विपणन दोनों का प्रभावी रूप से निष्पादन कर सकती है।

   (ग.) **अनुज्ञापन व्यवस्थाएँ** – इस व्यवस्था के अन्तर्गत निर्यातक कम्पनी अन्य देश की फर्म को अनुज्ञापत्र में वर्णित शर्तों के आधार पर विक्रय करने का अधिकार देती है। इसमें विदेशी फर्म को उत्पाद एवं ब्राण्ड का उपयोग करना होता है। विदेशी फर्म को निर्यातक कम्पनी के नाम, ख्याति एवं प्रतिष्ठा का लाभ मिलता है। निर्यातक कम्पनी विदेशी कम्पनी से विक्रय की कुल राशि का निश्चित प्रतिशत प्रतिफल के रूप में प्राप्त करती हैं।

   (घ.) **परामर्श सेवाएँ** – अंतरराष्ट्रीय विपणन के क्षेत्र में परामर्श सेवाएँ भी आती है। विकसित देश विकासशील देशों को अपने यहाँ आधारभूत उद्योगों की स्थापना के लिये परामर्श

सेवाओं का निर्यात करते है। इसके लिये निर्यातक कम्पनी अपने परामर्शदाता भेजती है जो निर्माण स्थल पर अपना मार्गदर्शन देते हैं।

(ङ.) **तकनीकी तथा प्रबंधकीय जानकारी** – अंतरराष्ट्रीय विपणन के क्षेत्र में तकनीकी एवं प्रबंधकीय जानकारी भी सम्मिलित है। निर्यातक देश अपने तकनीकी विशेषज्ञ को आयातक देशों में भेजकर वहाँ के व्यक्तियों को तकनीकी एवं प्रबंधकीय चातुर्य का ज्ञान कराते है।

5.6. अंतरराष्ट्रीय व्यापार एवं अंतरराष्ट्रीय विपणन

अंतरराष्ट्रीय व्यापार का तात्पर्य उस लेन-देन या क्रय-विक्रय से है जो दो या अधिक राष्ट्रों की सीमाओं के भीतर किया जाता है। इसके विपरीत, अंतरराष्ट्रीय विपणन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा अंतरराष्ट्रीय व्यापार संभव होता है। वर्न टपेस्ट्रा के अनुसार, अंतरराष्ट्रीय व्यापार तथा अंतरराष्ट्रीय विपणन में महत्वपूर्ण संबंध है, लेकिन दोनों एक-दूसरे के समानार्थी नहीं है। अंतरराष्ट्रीय व्यापार में अनेक विपणन कार्य सम्मिलित होते है, लेकिन अंतरराष्ट्रीय विपणन में अनेक व्यापार कार्य सम्मिलित नही होते है। अंतरराष्ट्रीय व्यापार जिसमें दो राष्ट्रों के मध्य वस्तुओं तथा सेवाओं का विनियम सम्मिलित होता है, बिना विपणन कार्य के संपन्न किया जाता है। इसी तरह सरकारी संस्थाओं द्वारा किये जाने वाला अंतरराष्ट्रीय व्यापार बिना विपणन प्रबंध के किया जाता है। संक्षेप में, अंतरराष्ट्रीय व्यापार एक व्यापक शब्द है जिसमें अंतरराष्ट्रीय विपणन सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त विदेशों में सहायक कम्पनी की स्थापना तथा संयुक्त साहस भी इसमें सम्मिलित है।

5.7. अंतरराष्ट्रीय विपणन तथा घरेलू विपणन

विपणन में वे क्रियायें सम्मिलित है जो वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन से उपभोग तक सम्बन्धित है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा वर्तमान एवं सम्बन्धित ग्राहको को उनकी आवश्यक संतुष्टि की वस्तुओं एवं सेवाओं के बारे में योजना बनाने, मूल्य निर्धारित करने, प्रवर्तन करने और वितरण करने का कार्य किया जाता है। कोटलर ने विपणन की एक संक्षिप्त एवं सारगर्भित परिभाषा देते हुए लिखा है कि “विपणन से आशय लाभदायक रूप से आवश्यकताओं को पूरा करना है। विपणन की यह परिभाषा ‘स्वदेशी विपणन’ तथा ‘अंतरराष्ट्रीय विपणन’ दोनों में समान रूप से लागू होती है। दोनों में ही विपणन की सफलता उपभोक्ता की आधारभूत आवश्यकताओं को पूरा करने पर निर्भर करती है। इसमें यह जानना आवश्यक है कि क्रेता क्या चाहता है तथा उसी के अनुरूप उनकी आवश्यकताओं को पूरा करना होता है। इसके अतिरिक्त दोनों प्रकार के विपणन में ख्याति का निर्माण (घरेलू तथा अंतरराष्ट्रीय बाजार) आवश्यकता है। यदि एक फर्म ख्याति का विकास करने में असफल रहती हे तो घरेलू बाजार के साथ अंतरराष्ट्रीय बाजार में उसकी वस्तुओं का बिकना

संदिग्ध रहता है। अन्त में, स्वदेशी तथा अंतरराष्ट्रीय विपणन में उत्पाद सुधार एवं अनुकूलन हेतु शोध एवं विकास को अपनाना आवश्यक होता है।

5.8. अंतरराष्ट्रीय तथा घरेलू विपणन में अन्तर

अंतरराष्ट्रीय तथा घरेलू विपणन में अन्तर को निम्नलिखित विवेचन से समझा जा सकता है।

(1.) **जोखिम की मात्रा** – घरेलू विपणन की तुलना में अंतरराष्ट्रीय विपणन में जोखिम की मात्रा अत्यधिक होती है। घरेलू विपणन में जहाँ एक पक्ष दूसरे पक्ष की प्रतिष्ठा की जानकारी आसानी से कर लेता है वही अंतरराष्ट्रीय विपणन में आयातकर्ता की विश्वसनीयता तथा प्रतिष्ठा के बारे में सही सूचना प्राप्त करने में काफी कठिनाइयाँ होती है। अंतरराष्ट्रीय विपणन में व्यापारिक सौदे एक लम्बी अवधि तक किये जाते है तथा ये सौदे बड़ी मात्रा में माल के निर्यात आयात के लिए किये जाते है। इन सौदो की मौद्रिक राशि भी काफी बड़ी मात्रा में होती है। इन सभी कारणों से घरेलू विपणन की तुलना में अंतरराष्ट्रीय विपणन में जोखिम बहुत अधिक होती है।

(2.) **उद्देश्यों की व्यापकता** – घरेलू विपणन में लाभार्जन एक प्रमुख उद्देश्य होता है। अंतरराष्ट्रीय विपणन में भी लाभार्जन सामान्यतया प्रमुख उद्देश्य होता है; परंतु कभी-कभी राजनैतिक उद्देश्य, लाभ उद्देश्य पर वरीयता प्राप्त कर लेते है। राजनैतिक कारणो से कई बार देश में किसी विशिष्ट वस्तु की देश में कभी के बावजूद सरकार निर्यात की अनुमति दे देती है।

(3.) **विपणन मिश्रण** – विपणन मिश्रण का क्रियात्मक पक्ष अंतरराष्ट्रीय विपणन में घरेलू विपणन की तुलना में पूर्णत: भिन्न होता है। घरेलू विपणन में जहाँ एक देश के लिए उत्पाद नियोजन एवं विकास किया जाता है वही अंतरराष्ट्रीय विपणन में मुख्य उत्पाद तो एक ही होता है, परन्तु प्रत्येक देश की आवश्यकतानुसार उसमें वांछित परिवर्तन किये जाते है। इसी प्रकार कीमत निर्धारण, वितरण, विज्ञापन, व्यक्तिगत विक्रय एवं विक्रय संवर्द्धन सभी में अंतरराष्ट्रीय विपणन में प्रत्येक देश की विशिष्ट परिस्थितियों को ध्यान में रखकर निर्णय लिये जाते है। इस प्रकार विपणन-मिश्रण का क्रियात्मक पक्ष अंतरराष्ट्रीय विपणन में घरेलू विपणन पूरी तरह से अलग होता है।

(4.) **प्रतियोगिता** – घरेलू विपणन में फर्म को द्वि-स्तरीय प्रतियोगिता का सामाना करना होता है। प्रथम, उसी उत्पाद में संल्गन अन्य उत्पादको से एवं द्वितीय, विदेशी निर्यातकर्ताओ से। अंतरराष्ट्रीय विपणन में यह प्रतियोगिता त्रिस्तरीय हो जाती है। इसमें एक फर्म को न केवल अपने देश की अन्य फर्मों से प्रतियोगिता का सामना करना पड़ता हे, वरन् जिस देश को निर्यात किया जा रहा है, वहाँ की विपणन फर्मों से एवं उसी देश की माल निर्यात करने वाली दूसरे देशों की कम्पनियों से की प्रतियोगिता करनी होती है। इसी लिए अंतरराष्ट्रीय विपणन मे फर्म को घरेलू विपणन की तुलना में तीव्र प्रतियोगिता का सामना करना पड़ता है।

(5.) **लागतो में भिन्नता** – तुलनात्मक लागत अंतरराष्ट्रीय विपणन का मूल आधार है। प्रत्येक देश में विभिन्न कारणों से विभिन्न वस्तुओं की उत्पादन लागत भिन्न-भिन्न होती है। अंतरराष्ट्रीय विपणन में फर्म उन्हीं वस्तुओं के विपणन की योजना बनाती है जिनका उत्पादन लागत उसके देश में अन्य देशों की तुलना में कम है। तुलनात्मक लागत कम होने से ही फर्म उन उत्पादों को प्रतियोगी मूल्यों पर दूसरे देशों को निर्यात करके लाभ कमाने की स्थिति में होगी। एक देश में किसी वस्तु की उत्पादन लागत अन्य देश की तुलना में कई कारणों से कम हो सकती है जो निम्नलिखित है।

(i) किसी वस्तु विशेष के लिए आवश्यक कच्चे माल की विशाल मात्र में उपलब्धता।

(ii) उस वस्तु-विशेष के उत्पादन हेतु विशिष्टीकरण एवं श्रम विभाजन के लाभो की प्राप्ति।

(iii) वस्तु विशेष के उत्पादन हेतु विशिष्ट प्रौद्योगिकी अथवा तकनीक उपलब्ध होना।

(iv) वस्तु विशेष के उत्पादन हेतु आवश्यक दक्ष श्रमिको की सस्ती दरो पर उपलब्धता।

इस प्रकार तुलनात्मक लागत का सिद्धान्त अंतरराष्ट्रीय विपणन का मूल आधार है। घरेलू विपणन में तुलनात्मक लागत का सिद्धान्त लागू नही होता है।

(6.) **उत्पादन के साधनो की गतिशीलता** – उत्पादन के पाँच साधन माने गये है। ये साधन क्रमश: श्रम, सामग्री, मशीन, पूँजी एवं साहस है। घरेलू विपणन में उत्पादन के साधनों की प्राय: अच्छी गतिशीलता होती है। उत्पादन के साधनों का एक उद्योग से दूसरे उद्योग एवं एक भौगोलिक क्षेत्र से दूसरे भौगोलिक क्षेत्रों की ओर जैसी गतिशीलता घरेलू विपणन में होती है, वैसी गतिशीलता अंतरराष्ट्रीय विपणन में नही दिखती है।

वैश्वीकरण के फलस्वरूप आज मशीन, पूँजी, सामग्री पूँजी एवं साहस की गतिशीलता में पिछले समय की तुलना में व्यापक बदलाव आया है। अंतरराष्ट्रीय विपणन सबसे कम गतिशीलता श्रम की है। श्रम की गतिशीलता को कम सम्पन्न एवं कम जनसंख्या वाले देश अपने हितो के प्रतिकूल मानते है। इसी प्रकार पूँजी की गतिशीलता को बढ़ाना विकासशील देश अपने राष्ट्रीय हितो के प्रतिकूल मानते है। घरेलू विपणन में तुलनात्मक रूप से उत्पादन के साधन अंतरराष्ट्रीय विपणन की तुलना में अधिक गतिशील होते है।

(7.) **बाजार विशेषताएं** – घरेलू विपणन में बाजार विशेषताओं में बहुत अधिक अन्तर नहीं होता है। घरेलू विपणन में प्राय: बाजार सजातीय होते है। उपभोग की प्रकृति, उत्पाद सम्बन्धी अपेक्षाओं वितरण वाहिकाओं एवं संवर्द्धन की दृष्टि से फर्म के एक विशिष्ट ग्राहक वर्ग के लिए बाजार विशेषताएं समान होती है। परन्तु अंतरराष्ट्रीय विपणन में प्रत्येक देश ही स्वयं में पृथक इकाई है। ग्राहकों की आय, रुचियाँ, सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों में विभिन्न देशों में व्यापक भिन्नताएँ दिखायी देती है। घरेलू विपणन में बाजार विशेषताओं में इतनी व्यापक भिन्नताएं नही होती इसलिए वहाँ फर्मो के लिए विपणन प्रबन्ध तुलनात्मक रूप से आसान है।

(8.) **संस्थागत सहयोग** – घरेलू विपणन में संस्थागत सहयोग जहाँ संकुचित होता है वहीं अंतरराष्ट्रीय विपणन में यह विस्तृत एवं व्यापक होता है। अंतरराष्ट्रीय विपणन में उपरोक्त संस्थाओं के अलावा अनेक संस्थानों के सहयोग की आवश्यकता होती है। इसमें मुख्य रूप से देश का केन्द्रीय बैंक, निर्यात-आयात बैंक, कन्टेनर कारपोरेशन, पोर्ट ट्रस्ट, निर्यात साख एवं बीमा, विश्व बैंक आदि संस्थायें महत्वपूर्ण है।

विश्व व्यापार संगठन की वर्तमान में अंतरराष्ट्रीय विपणन में महत्वपूर्ण भूमिका हो गयी है। विश्व व्यापार के सदस्य देशों की विपणन कम्पनियों में यदि व्यापारिक विवाद उत्पन्न हो जाते है, तो विश्व व्यापार संगठन के निर्धारित निकायों में सम्बन्धित पक्ष अपील दायर कर सकते है। सुनवाई के बाद ये निकाय अपना निर्णय देते है जिसे दोनो पक्षों को मानना होता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि घरेलू विपणन की तुलना में अंतरराष्ट्रीय विपणन में संस्थागत सहयोग अत्यन्त व्यापक है।

(9.) **विनिमय दरे** – घरेलू विपणन का विनिमय दर से कोई सम्बन्ध नही है। घरेलू विपणन में देश के क्रेता एवं विक्रेता वस्तुओं एवं सेवाओं का क्रय-विक्रय केन्द्रीय बैंक द्वारा जारी की गयी मुद्रा में कर सकते है। अंतरराष्ट्रीय विपणन में प्रत्येक देश की मुद्रा का दूसरे देश की मुद्रा से तुलनात्मक मूल्य निकाला जाता है, यही विनिमय दर है। 1973 तक अंतरराष्ट्रीय मुद्रा के द्वारा बनाये गये नियमों के अनुसार विनिमय दरें तय होती थी। सन 1973 के बाद विनिमय दरों का निर्धारण बाजार की शक्तियों पर छोड़ दिया गया है। वर्तमान में अधिकतर देशों की मुद्रा की विनिमय दरे अमेरिकी डालर पर आधारित है। यूरोपीय कामन मार्केट की यूरो अब भी महत्वपूर्ण मुद्रा है।

अन्तराष्ट्रीय विपणन में विनिमय दरो की महत्वपूर्ण भूमिका है। इसके आधार पर ही वस्तु अथवा सेवा का मूल्य निर्धारित होता है। निर्धारित मूल्यों पर ही निर्यातकर्ता एवं आयातकर्ता के पारस्परिक दायित्व उत्पन्न होते है। उदाहरण – यदि अमेरिकी डालर की तुलना में रूपया मजबूत होता है तो इससे आयातकर्ता विपणन फर्म को लाभ होगा; क्योंकि भुगतान तिथि पर उसे रिजर्व बैंक आफ इण्डिया को कम रुपये जमा कराने होगें। इसके विपरीत यदि अमेरिकी डालर की तुलना में रुपया कमजोर होता है, तो इससे निर्यातक विपणन फर्म को लाभ होगा क्योंकि उसे उसे जिस तिथि को भुगतान प्राप्त होना हैं उस दिन उसे प्रत्येक डालर पर ज्यादा रुपये मिलेंगे।

(10.) **सार्वभौमिक राजनैतिक सत्ताएँ** – देशी विपणन में क्रेता एवं विक्रेता को देश की सरकार द्वारा बनाये गये विभिन्न कानूनी के प्राँवधानो को ध्यान में रखना होता हे। देश में एक ही राजनैतिक सत्ता होने के कारण घरेलू विपणन आसान है। वही दूसरी आरे विश्व के प्रत्येक देश की अपनी राजनैतिक व्यवस्था है। प्रत्येक देश अपने राष्ट्रीय एवं नागरिकों के हितो के रक्षा के लिए विभिन्न कानून बनाता है। इस कारण अंतरराष्ट्रीय विपणन में कार्यरत फर्म को जिस देश से वह व्यापारिक व्यवहार स्थापित

करने जा रही है उस देश के कानूनो का उसके हितो पर पड़ने वाले प्रभावों का मूल्यांकन करना होता है। कानूनों की ऐसी व्यवस्थायें घरेलू विपणन में नही होती है।

नये गैट समझौते के कारण यद्यपि कस्टम दरो में काफी कमी आ गयी है। आयात की जानेवाली वस्तु पर आयातकर्ता को कस्टम का भुगतान करना होता है। गैट समझौते पर हस्ताक्षर करने वाला देश भी स्वीकृत सीमा तक ऊँची दरें लगा सकता है। इसके अतिरिक्त जहाँ पर भी एक देश की सरकार को राशिपातन का शक हो, तो आयात पर ऊँची प्रतिगामी दरें लगा सकती है। इसके अतिरिक्त स्थानीय कर भी लगाये जा सकते हैं। विभिन्न सरकारें देशी व्यापार की के लिए मात्रात्मक प्रतिबंध लगा देती है। जो वस्तुएँ मात्रात्मक प्रतिबन्धों में आती है उनका आयात सरकार से लाइसेंस लेकर ही किया जा सकता है।

घरेलू विपणन में जहाँ राजनैतिक व्यवस्था एक ही होती है, वही अन्तराष्ट्रीय विपणन में फर्म को जिन देशों से व्यापारिक व्यवहार स्थापित करना होता है उसकी राजनैतिक व्यवस्था का बारीकी से अध्ययन करना होता है।

5.9. अंतरराष्ट्रीय विपणन : आवश्यकता एवं महत्व

आर्थिक उदारीकरण, निजीकरण तथा ग्लोबलाइजेशन के साथ अंतरराष्ट्रीय विपणन की आवश्यकता एवं महत्व तेजी से बढ़ा है। ली एडलर का मत है कि निम्नलिखित कारको ने अन्तराष्ट्रीय विपणन के अवसरों को ज्यादा व्यापक बना दिया है।

1. शहरीकरण में वृद्धि
2. अविकसित या विकासशील देशो का तीव्र विकास की ओर तेजी से अग्रसर होना।
3. जीवन स्तर में वृद्धि।
4. उपभोक्ता क्रयण शक्ति एवं ज्ञान में वृद्धि।
5. उपभोक्ता इच्छाओं में सतत वृद्धि।

टपेस्ट्रा ने अंतरराष्ट्रीय विपणन के प्रति आकर्षण के निम्नलिखित कारण बतलाये है।

1. एक फर्म का उत्पाद घरेलू बाजार में जीवन चक्र की अन्तिम अवस्था में हो सकता है जबकि विदेशी बाजारों में उसके बिकने की व्यापक सम्भावनायें हो जाती है।
2. कुछ उत्पाद पंक्तियों के सम्बन्ध में घरेलू बाजार की तुलना में विदेशी बाजारों मे कम प्रतिस्पर्धा हो सकती है। अत: लाभ उठाने हेतु अंतरराष्ट्रीय विपणन को अपनाया जा सकता है।
3. यदि किसी फर्म के पास अतिरिक्त क्षमता है तो वह विदेशी बाजारो में अनुकूल मार्जिन पर उसका उत्पादन एवं विपणन कर सकती है।

4. विश्व बाजार में प्रवेश की सदैव व्यापक एवं लाभप्रद सम्भावनाएँ विद्यमान रहती है। उदाहरण के लिए अमेरिका अपने 90 प्रतिशत उत्पादों एवं सेवाओं को अमेरिकी बाजार की अपेक्षा विश्व के अन्य बाजारों में लाभप्रद रूप से बेचता है।

अंतरराष्ट्रीय विपणन की आवश्यकता के प्रमुख कारण निम्नलिखित है।

1. प्रतिस्पर्धा में वृद्धि के कारण एक व्यवसायिक फर्म अन्य राष्ट्रो में उत्पाद के विक्रय की सम्भावनाओं को तलाशने हेतु अंतरराष्ट्रीय विपणन का सहारा ले सकती है।
2. यदि उत्पाद अप्रचलनता के स्तर तक आ पहुंचा है तो अन्य राष्ट्रो में उसके विक्रय की सम्भावना को तलाश जा सकता है।
3. एक फर्म अपनी क्षमता के पूर्ण उपयोग एवं विस्तार हेतु अन्तराष्ट्रीय विपणन की अपना सकती है।
4. बढ़ती हुई मांग एवं क्रय शक्ति के मद्दे नजर एक फर्म अंतरराष्ट्रीय विपणन को अपना सकती है।
5. विभिन्न राष्ट्रो में उपलब्ध व्यवसायिक प्रेरणाओं का लाभ उठाने हेतु भी एक फर्म अन्तराष्ट्रीय विपणन को अपनाती है।

5.10. महत्व

(I) **राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के दृष्टिकोण से अंतरराष्ट्रीय विपणन का महत्व** – राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के दृष्टि से अंतरराष्ट्रीय विपणन के महत्व को निम्नलिखित शीर्षको में वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. **तीव्र आर्थिक विकास** – आर्थिक विकास की ऊँची दरों का सीधा सम्बन्ध निर्यातो के ऊँची दरो से है। इससे स्पष्ट है कि जो देश तीव्र गति से आर्थिक विकास करना चाहते है उन्हें अपने निर्यातों को बढ़ाना होगा। निर्यातो से देश को बहुमूल्य विदेशी मुद्रा की प्राप्ति होती है। इसका उपयोग प्राथमिकता के क्रम में देश की अर्थव्यवस्था लिए आवश्यक सयन्त्र, मशीने, उपकरण मंगाने के लिए किया जाता है। खाद्यान्नो का उत्पादन बढ़ाने के लिए मूल्यवान कृषि उपकरणों व उर्वरको का आयात कर कृषि उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है। अत: यह स्पष्ट है कि देश की अर्थव्यवस्था के विकास में निर्यात विपणन एक गतिशील घटक का कार्य करता है।
2. **प्राकृतिक संसाधनो का लाभदायक उपयोग** – निर्यात विपणन को बढ़ाकर एक देश अपने यहाँ विद्यमान प्राकृतिक संसाधनो का लाभदायक उपयोग कर सकता है। निर्यातो से विदेशी मुद्रा अर्जित कर अपने देश में अनेक प्रकार के उद्योग स्थापित किये जा सकते है। इससे अनेक प्रकार के खनिजो तथा वनो से प्राप्त सम्पदाओं का कुशलता से उपयोग निर्यात विपणन में किया जा सकता है।
3. **आयतों का भुगतान** – देश के विकास हेतु विकासशील देशो की सरकारें औद्योगिक वातावरण का निर्माण करती है। इसके लिए बड़ी मात्रा में पूँजीगत उपकरणो, कच्चे माल, आवश्यक तकनीकी

जानकारी का आयात करना आवश्यक होता है। विकासशील देशो के आयातों में तेल व पेट्रोलियम उत्पादों की काफी आवश्यकता होती है।

इस स्थिति से निपटने का एकमात्र विकल्प यही हे कि देश में अधिकाधिक निर्यात-अधिमुखी उद्योग स्थापित किये जाये। अपने निर्यात को बढ़ाकर बहुमूल्य विदेशी मुद्रा देश की सरकार को उपहार में दे सकते है। जिससे बढ़े हुए आयातो का भुगतान करने में सरकार को सहायता मिलती है।

4. **रोजगार के अवसरो में वृद्धि** – विदेशी बाजारो मे निर्यातो को बढ़ाने के लिए जहाँ एक ओर निर्यात-अधिमुखी इकाइयों की विभिन्न क्षेत्रों में स्थापना होती है वही दूसरी ओर विद्यमान फर्म अपने उत्पादन स्तर को बढ़ाती है। इससे रोजगार के नये अवसरों का सृजन होता है। निर्यात विपणन से भी बेरोजगारी की समस्या को सुलझाया जा सकता है। निर्यात विपणन के नये-नये क्षेत्रों का पता लगाकर रोजगार के अवसरो को बढ़ाया जा सकता है।
5. **राष्ट्रीय आय में निर्यातो की भूमिका** – देश की राष्ट्रीय आय में भी निर्यातो की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सुव्यवस्थित निर्यात विपणन से इसे अच्छे स्तर तक बढ़ाया जा सकता है।
6. **जीवन स्तर में वृद्धि** – निर्यात विपणन देशवासियों के जीवन स्तर को उन्नत करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकता है। निर्यात विपणन से जो बहुमूल्य विदेशी मुद्रा अर्जित की जाए उसका उपयोग ऐसी वस्तुओं के आयात में किया जा सकता है। जो देश की जनता को अच्छा जीवन स्तर प्रदान करें। इसके साथ ही निर्यात विपणन में जहाँ व्यक्तिगत फर्मों को लाभ होता है वहीं अनेक रोजगार के अवसरों का भी सृजन होने से देशवासियों के आय में वृद्धि होती है।

(II) **व्यक्तिगत फर्म के दृष्टिकोण से महत्व** – अंतरराष्ट्रीय विपणन से न केवल देश की अर्थव्यवस्था लाभान्वित होती है बल्कि देश में विद्यमान व नयी स्थापित होने वाली फर्मों को भी अनेक लाभ प्राप्त होते है। व्यक्तिगत फर्म के लिए अन्तराष्ट्रीय विपणन के महत्व का निम्नलिखित शीर्षको में वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. **लाभदायक विक्रय परिमाण** – निर्यात विपणन के द्वारा एक अपने लाभदायक विक्रय परिमाण में वृद्धि कर सकती है। देशी विक्रय के लिए भिन्न मूल्यो वाले उत्पादो व विदेशी बाजारों में विक्रय करने के लिए भिन्न मूल्यों व किस्मों की वस्तुओं का निर्माण किया जा सकता है। ऐसे विदेशी बाजार, जो कीमत के प्रति संवेदनशील नही है उनके लिए भी पृथक उत्पादों का निर्माण कर प्रतियोगिता के उत्पादों से पर्याप्त विभिन्नीकरण करके फर्म अपने विक्रय परिमाण को बड़ी सीमा तक लाभप्रद बना सकती है।
2. **देशी बाजारो में प्रतियोगिता** – प्रत्येक देश में विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन हेतु एक ओर विद्यमान फर्मे अपने उत्पादन स्तर को बढ़ा रही है तो दूसरी ओर नवीन फर्मे प्रवेश करती जा रही है। इस कारण

देशी बाजारों में प्रतियोगिता कठिन होती जा रही है। निर्यात बाजारों में प्रतियोगिता के रूप व स्तर का स्पष्ट अन्तर है। वहाँ कीमत प्रतियोगिता नही होकर किस्म व प्रभावों की प्रतियोगिता है। जैसे – इन्जीनियरिंग उत्पादो के अंतरराष्ट्रीय बाजारों में व्यापक प्रतियोगिता होते हुए भी भारतीय निर्यातक फर्मों ने अच्छी मात्रा में लाभदायक विक्रय किया है।

3. **प्रबन्धकीय चातुर्य के विकास में सहायता** – घरेलू विपणन जितना सरल है, उसकी तुलना में निर्यात विपणन अत्यन्त ही चुनौतीपूर्ण है। निर्यात विपणन में एक फर्म दो स्तरो पर कड़ी प्रतियोगिता का सामना करना पड़ता है। निर्यात विपणन प्रबन्धक व कर्मचारियों को नित्य नयी चुनौतीयों, समस्याओं व परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। विदेशी फर्मे विक्रय को बढ़ाने के लिए क्या-क्या उपाय काम में ला रही है, उनके विक्रय की अपील किस बिन्दु पर केन्द्रित है, इसकी जानकारी प्राप्त कर वे अपने विपणन कार्यक्रम में भी परिवर्तन करते हैं।
4. **उत्पाद अप्रचलनता** – प्रत्येक उत्पाद का अपना जीवन चक्र होता है। उत्पाद जो देशी बाजारों में अप्रचलित हो जाते है उनकी बिक्री के लिए विदेशी बाजारों में अवसर विद्यमान रहते है। अनेक ऐसे उत्पाद है जो विकसित देशो में अप्रचलन की अवस्था में पहुँच चुके हैं पर विकासशील देशो में उन्हे आसानी से बेचा जा सकता है। अनेक विकसित देशो की सेना में जिन हथियारों को उपयोग से निकाल दिया जाता है उन हथियारों को विकासशील देश खुशी-खुशी ले लेते है। इससे स्पष्ट है जो उत्पाद देशी बाजारों मे अप्रचलित हो चुके है, उसका निर्यात ऐसे देशो में करके फर्म लाभ कमा सकती है जहाँ अभी भी इसके विक्रय अवसर विद्यमान है।
5. **बढ़ती हुई क्रय शक्ति** – अनेक देश गुलामी से आजाद हुए। इन देशो में स्वयं की सरकारें है। कल्याणकारी राज्य की भूमिका का निर्वाह करते हुए विभिन्न शासन व्यवस्था ने अपने देश की अर्धव्यवस्था को मजबूत आधार प्रदान किया है। इससे उत्पादन में वृद्धि हुई हैं और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हुई है।

   व्यक्तिगत फर्मे इस बढ़ी हुई आय से उत्पन्न क्रय शक्ति में वृद्धि का पूरा लाभ उठा सकती है। जिन वस्तुओं की मांग में वृद्धि हुई है, उसका उत्पादन करके निर्यात विपणन के द्वारा व्यक्तिगत फर्मे इस स्थिति का पूर्ण विदोहन कर सकती है।
6. **उपक्रम का विकास** – नियोजित अर्थव्यवस्था वाले देशो की सरकारें अपने आयातो में कमी लाने के लिए कई प्रकार के प्रतिबन्ध लगाती हे। उपक्रम यदि विदेशी मुद्रा का अर्जन निर्यातो से करता है तो उसके कुछ भाग को वह आवश्यक मशीनों आदि के आयात पर व्यय कर सकता है। इस कारण फर्में अपने निर्यात विक्रय को अधिकाधिक बढ़ा कर बहुमूल्य विदेशी मुद्रा अर्जित कर सकती है। इसके एक भाग का उपयोग ये उपक्रम आवश्यक मशीनो, उपकरणों, कच्चा माल तथा तकनीकी जानकारी

के आयात में कर अपने उपक्रम का आधारभूत विस्तार करने में सक्षम हो सकते है। इस विकास का देशी व निर्यात विपणन में नये सिरे से लाभ उठा सकते है।

(III) अन्य दृष्टियो से महत्व

अन्य कोई दृष्टियों से भी इसका महत्व है जो इस प्रकार है –

1. **अंतरराष्ट्रीय सहयोग** – निर्यात विपणन से अंतरराष्ट्रीय सहयोग की भावना भी जन्म लेती है। विकसित देशों द्वारा विभिन्न देशों के आयात के लिए विभिन्न देशों के अभ्यंश तय कर दिये जाते है। जैसे अमेरिका व पश्चिमी देशो ने सूती कपड़ो के आयातों के लिए विभिन्न देशों के लिए अभ्यंश तय किये है। भारत का भी अपना अभ्यंश तय है। इस तय किये गये अभ्यंश की सीमा तक भारतीय निर्यातक इन देशों को सूती वस्त्रो का निर्यात कर सकते है। इस प्रकार की व्यवस्था से निर्यात विपणन अंतरराष्ट्रीय सहयोग में वृद्धि करता है।
2. **राजनैतिक शान्ति में सहायता** – अनेक देश ऐसे अनेक राष्ट्रो को विभिन्न वस्तुओं व सेवाओं का निर्यात करते है, जिनका राजनैतिक विचारधारा के धरातल पर निकट का भी सम्बन्ध नहीं है। रूस व अमेरिका की राजनैतिक विचारधारा सर्वथा भिन्न है फिर भी रूस अमेरिका से अनाज का आयात करता है। भारत भी अनेक देशों को निर्यात करता है। इससे कुछ सीमा तक राजनैतिक शान्ति में सहायता मिलती है।

   इस प्रकार अंतरराष्ट्रीय विपणन से देश की अर्थव्यवस्था को तो अनेक प्रकार के लाभ मिलते ही है साथ ही व्यक्तिगत फर्म को भी अनेक लाभ प्राप्त होते हैं।

5.11. अंतरराष्ट्रीय विपणन में चुनौतियाँ एवं समस्याएँ

अंतरराष्ट्रीय विपणन में अनेक प्रकार की समस्याएँ एवं चुनौतियाँ उत्पन्न होती है। कोटलर का मत है कि ‘अनेक बड़ी कम्पनियाँ विदेशी बाजार की बजाय घरेलू बाजार में ही विपणन कार्य ज्यादा पसन्द करती है यदि वह बाजार यथेष्ट रूप से विशाल है। ऐसी फर्मो के प्रबन्धकों को अन्य भाषाओं एवं कानूनों को सीखने, विभिन्न मुद्राओं में व्यवहार करने राजनैतिक तथा कानूनी अनिश्चितताओं का सामना करने तथा विभिन्न ग्राहक आवश्यकताओं के अनुरूप अपने उत्पाद को ढालने की आवश्यकता नही होती है। स्वदेशी विपणन ज्यादा सुरक्षित तथा आसान होता है।’ अन्तराष्ट्रीय विपणन के बारे में अन्य तथ्य महत्वपूर्ण है जिनकी ओर कम्पनियो का ध्यान अकार्षित हो रहा है।

1. ग्लोबल फर्मो द्वारा प्रस्तुत बेहतर एवं कम कीमत वाला उत्पाद कम्पनी के घरेलू बाजार पर आक्रमण कर सकता है। कम्पनी अपने घरेलू बाजार में इन प्रतिस्पर्द्धियो का मुकाबला करने को सोच सकते है।

2. कम्पनी इस बात को खोज सकती हे कि घरेलू बाजार की अपेक्षा कुछ विदेशी बाजारों में लाभ की ज्यादा सम्भावना है या वे ज्यादा लाभ प्रस्तुत करते है।
3. बड़े पैमाने पर लाभो को प्राप्त करने के लिए कम्पनी को बड़ी संख्या में उपभोक्ताओं की आवश्यकता होती है।
4. कम्पनी किसी भी एक बाजार पर अपनी निर्भरता को कम करने की सोच सकती है।
5. कम्पनी के उपभोक्ता विदेश में जा रहे है तथा उन्हें अंतरराष्ट्रीय सेवाओं की आवश्यकता है।

नेल्सन एवं नेल्सन ने अन्तराष्ट्रीय विपणन में असफलता के निम्नलिखित कारण बताये हैं।

1. बाजार के द्वारा उत्पादो को अपनाने में असफलता।
2. उचित अनुक्रम में बाजार विदोहन में असफलता।
3. सम्भावित लाभदायक बाजार में प्रवेश करने में असफलता
4. विदेशी बाजार में भाषाओं की भिन्नता को सही रूप मे समझने में असफलता।
5. विज्ञापन में भिन्नता के समझ के कारण असफलता।
6. कीमत एवं गुणवत्ता के संदर्भ में उपभोक्ताओ की प्रकृति जानने में असफलता।
7. प्रतिस्पर्द्धी अर्थव्यवस्था के सिद्धान्त को सही रूप में समझने को असफलता।

समस्या – अंतरराष्ट्रीय विपणन में अनेक समस्याएँ सम्मिलित है जो इस प्रकार है।

1. अंतरराष्ट्रीय विपणन में हुए एक तरा विकास को विश्व के अधिकतर देश अपनाने हेतु तैयार नही है।
2. विकासशील देश तेजी से विकास की प्रक्रिया को अपना रहे हैं तथा अन्तराष्ट्रीय स्तर पर अपनी क्षमता एवं योग्यता सिद्ध करने हेतु तत्पर है। इन राष्ट्रो की 'स्व-स्फूर्त अर्थव्यवस्था' बनने की आकांक्षा अंतरराष्ट्रीय व्यापार एवं विपणन में बाधायें उपस्थित कर सकती है।
3. अनेक राष्ट्रो ने अपने आयात-निर्यात के नियमन एवं नियंत्रण हेतु निश्चित प्रक्रिया एवं नियम बनाये है जो स्वतन्त्र आयात-निर्यात में बाधाएँ उत्पन्न करते है।

   इस प्रकार अंतरराष्ट्रीय विपणन में भाषा, संस्कृति, विदेशी बाजार से पहचान का आभाव राजनैतिक एवं कानूनी बाधाएँ, विपणन शोध से सम्बद्ध सूचनाओं का आभाव अनुचित प्रतिस्पर्धा आदि प्रमुख समस्याएँ है। अन्तराष्ट्रीय विपणन हेतु प्रबन्धक को विदेशी बाजारों से बेहतर रूप से परिचित होना चाहिए तथा उसकी सीमाओं एवं मान्यताओं का ज्ञान होना चाहिए।

   कोटलर ने अंतरराष्ट्रीय विपणन में निम्न प्रमुख चुनौतियां बतायी हैं

   1. **विशाल विदेशी ऋणग्रस्तता** – विश्व के अनेक विकासशील तथा छोटि देश विशाल विदेशी ऋण से ग्रस्त है जिनके कारण कुछ राष्ट्रो के लिए ब्याज का भुगतान करना भी कठिन हो रहा है। इन देशों में इण्डोनेशिया, मैक्सिको तथा रुस प्रभुत्व है।

2. **अस्थायी सरकारें** – विश्व के अनेक देश उच्च ऋणग्रस्त उच्च मुद्रा स्फीति तथा व्यापक बेरोजगारी से ग्रस्त है जिसका परिणाम अस्थायी सरकारे है। यह प्रवृत्ति विदेशी फर्मो को राष्ट्रीयकरण, सीमित लाभ तथा स्वत्वहरण जेसी जोखिमो में डालती हैं तथा अंतरराष्ट्रीय विपणन में व्यापक बाधायें उत्पन्न होती है।
3. **विदेशी विनिमय समस्या** – उच्च ऋणग्रस्तता तथा आर्थिक एवं राजनैतिक अस्थिरता एक देश की मुद्रा के मूल्य में कमी लाती हे। विदेशी फर्मे लाभ स्वत्वहरण अधिकार के साध सख्त मुद्रा में भुगतान चाहती है लेकिन अनेक बाजारों में यह विकल्प उपलब्ध नही होता।
4. **तटकर तथा अन्य व्यापार बाधायें** – प्राय: सरकारें अपने उद्योगों के संरक्षण हेतु उच्च तटकर लगाती है। वे अदृश्य व्यापार बाधाओं का भी सहारा लेती है, जैसे महत्वपूर्ण अनुमतियों एवं निरीक्षणों में धीरे-धीरे कमी लाना तथा महगें उत्पाद समायोजन की मागें करना।
5. **भ्रष्टाचार** – विश्व के सभी राष्ट्रो में सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था में भ्रष्टाचार का प्रमुख स्थान ग्रहण कर चुका है। विशेषत: आर्थिक क्षेत्र में इसका व्यापक बोलबाला देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए विदेशी भ्रष्टाचार व्यवहार अधिनियम 1977 के तहत अमेरिकी प्रबन्धको पर रिश्वत लेने या देने पर प्रतिबन्ध है, लेकिन अन्य देशों के प्रतिस्पर्द्धियों पर इस प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं है।
6. **टेक्नोलोजिकल चोरी** – एक कम्पनी जिसके संयंत्र विदेशों में स्थापित है, सदैव इस बात से विदेशी प्रबन्धको से चिंतित रहती है कि उसके उत्पाद को किस प्रकार बनाया जाना हे तथा प्रतिस्पर्धा का किस प्रकार मुकाबला किया जाना है। मशीनरी, दवा, इलेक्ट्रानिक्स तथा रसायन उद्योगों में व्यापक रूप से ऐसा देखा जा सकता है।
7. **उच्च उत्पाद लागत एवं सम्प्रेषण अनुकूलन** – एक कम्पनी, जो विदेशी बाजारों में प्रवेश करने जा रही है के लिए प्रत्येक विदेशी बाजार का बारीकी से अध्ययन आवश्यक है जो उसके आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक वातावरण से निकटतम रूप से संबंधित है तथा उसके उत्पाद के अपनाने से सम्बन्धित है। साथ ही प्रत्येक बाजार की रुचियों से परिचित होना भी आवश्यक है।
8. **सीमा परिवर्तन** – विपणन में राष्ट्रीय सीमायें भी अहम् होती हैं, क्योंकि ये देश की सीमा के भीतर रहने वाले व्यक्तियों के आर्थिक व्यवहार को निरुपित करती है तथा क्रयण व्यवहार में अहम् भूमिका निभाती है। सीमाओं में परिवर्तन का आशय है कि विपणनकर्ताओं के लिए लक्ष्य गतिशील हो रहें है।

5.12. सारांश

सामान्य अर्ध में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सम्पन्न की जाने वाली विपणन क्रियाओं को 'अंतरराष्ट्रीय विपणन' कहा जाता है। ऐसा विपणन देश की सीमाओं के बाहर किया जाता है जिसमें सामाजिक तथा तकनीकी तत्व महत्वपूर्ण है। प्रत्येक राष्ट्र की अपनी भाषा, संस्कृति, परम्पराएँ कानून एवं सभ्यता होती है जो एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र को पृथक करती है ये भिन्नताएँ ही अंतरराष्ट्रीय विपणन हेतु पृथक प्रबन्ध एवं संगठन की आवश्यकता को सृजित करती है। ग्लोबलाइजेशन, आर्थिक उदारीकरण, निजीकरण, इन्टरनेट, ई मार्केटिंग, आउटसोर्सिंग तथा बेंचमार्किंग ने अंतरराष्ट्रीय विपणन के महत्व एवं भूमिका को और ज्यादा व्यापक बना दिया है।

5.13. अभ्यासार्थ प्रश्न

1. अंतरराष्ट्रीय विपणन की परिभाषा दीजिए। यह स्वदेशी विपणन से किस प्रकार भिन्न है?
2. अंतरराष्ट्रीय विपणन के महत्व एवं क्षेत्र को बताइए।
3. घरेलू विपणन तथा अंतरराष्ट्रीय विपणन में समानताएँ एवं भिन्नताएँ बताइए।
4. एक अंतरराष्ट्रीय विपणनकर्ता विपणन मिश्रण को किस प्रकार निरूपित करता है जो एक विदेशी बाजार के विपणन वातावरण के अनुरूप होता है?
5. अंतरराष्ट्रीय विपणन की प्रमुख क्रियाओं का वर्णन कीजिए।

5.14. संदर्भ ग्रंथ सूची

1. जैन एस. सी., विपणन प्रबंध, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2012।
2. मालवीय, एस. के., विपणन प्रबंध, प्रयाग पुस्तक भवन, हलाहाबाद, 2009।
3. अग्रवाल आर. सी. एवं कोठारी, एन. एम., विपणन के सिद्धान्त, एस. बी. पी. डी. पब्लिसिंग हाउस, आगरा, 2012-13।